



# रत्नकरण्ड- श्रावकाचार

- समन्तभद्राचार्य

nikkyjain@gmail.com  
Date : 30-09-18

---

## Index

---

गाथा / सूत्र	विषय
001)	मंगलाचरण
002)	आचार्य की प्रतिज्ञा
003)	धर्म का लक्षण
सम्यग्दर्शन-अधिकार	
004)	सम्यग्दर्शन
005)	आप्त का लक्षण
006)	वीतराग का लक्षण
008)	आगम का लक्षण
009)	शास्त्र का लक्षण
010)	गुरु का लक्षण
011)	निःशंकित अंग
012)	निःकाङ्क्षित अंग
013)	निर्विचिकित्सा अंग
014)	अमूढदृष्टि अंग
015)	उपगूहन अंग
016)	स्थितिकरण अंग
017)	वात्सल्य अंग
018)	प्रभावना अंग
019-020)	आठ अंगधारी के नाम
021)	अंगहीन सम्यक्त्व व्यर्थ है
022)	लोक मूढ़ता
023)	देव मूढ़ता
024)	अब सम्यग्दर्शन के स्वरूप में पाखण्डि मूढ़ता का स्वरूप दिखाते हुए कहते हैं-
025)	आठमद के नाम
026)	मद करने से हानि
027)	पाप त्याग का उपदेश
028)	सम्यग्दर्शन की महिमा
029)	धर्म और अधर्म का फल
030)	सम्यग्दृष्टि कुदेवादिक को नमन ना करे
031)	सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता
032)	सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र की असम्भवता
033)	मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ
034)	श्रेय और अश्रेय का कथन
035)	सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान
036)	सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं
037)	सम्यग्दृष्टि जीव इंद्र पद पाते हैं
038)	सम्यग्दृष्टि ही चक्रवर्ती होते हैं
039)	सम्यग्दृष्टि ही तीर्थकर होते हैं
040)	सम्यग्दृष्टि ही मोक्ष-पद प्राप्त करते हैं
041)	उपसंहार

## सम्यग्ज्ञान-अधिकार

042)	सम्यग्ज्ञान का लक्षण
043)	प्रथमानुयोग
044)	करणानुयोग
045)	चरणानुयोग
046)	द्रव्यानुयोग

## सम्यक-चारित्र-अधिकार

047)	चारित्र की आवश्यकता
048)	चारित्र कब होता है?
049)	चारित्र का लक्षण
050)	चारित्र के भेद और उपासक
051)	विकल चारित्र के भेद

## अणुव्रत-अधिकार

052)	अणुव्रत का लक्षण
053)	अहिंसा अणुव्रत
054)	अहिंसा अणुव्रत के अतिचार
055)	सत्याणुव्रत
056)	सत्याणुव्रत के अतिचार
057)	अचौर्याणुव्रत
058)	अचौर्याणुव्रत के अतिचार
059)	ब्रह्मचर्य अणुव्रत
060)	ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार
061)	परिग्रह परिमाण अणुव्रत
062)	परिग्रह परिमाण अणुव्रत के अतिचार
063)	पंचाणु व्रत का फल
064)	पंचाणुव्रत में प्रसिद्ध नाम
065)	पांच पाप में प्रसिद्ध नाम
066)	श्रावक के आठ मूलगुण

## गुणव्रत-अधिकार

067)	गुणव्रतों के नाम
068)	दिग्व्रत का लक्षण
069)	मर्यादा की विधि
070)	दिग्व्रत की मर्यादा के बाहर अणुव्रतों के महाव्रतपना
071)	सो कैसे ? उसका समाधान
072)	महाव्रत का लक्षण
073)	दिग्व्रत के अतिचार
074)	अनर्थदण्ड व्रत

075)	अनर्थदण्ड के भेद
076)	पापोपदेश का लक्षण
077)	हिंसादान अनर्थदण्ड
078)	अपध्यान अनर्थदण्ड
079)	दुःश्रुति अनर्थदण्ड
080)	प्रमादचर्या अनर्थदण्ड
081)	अनर्थदण्डव्रत के अतिचार
082)	भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत
083)	भोग-उपभोग के लक्षण
084)	सर्वथा त्याज्य पदार्थ
085)	अन्य त्याज्य पदार्थ
086)	व्रत का स्वरूप
087)	यम और नियम
088-89)	भोगोपभोग सामग्री
090)	भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार

## शिक्षाव्रत-अधिकार

091)	शिक्षाव्रत
092)	देशावकाशिक शिक्षाव्रत
093)	देशव्रत में मर्यादा की विधि
094)	देशव्रत में काल मर्यादा
095)	यह व्रत भी उपचार से महाव्रत है
096)	देशावकाशिक व्रत के अतिचार
097)	सामायिक शिक्षाव्रत
098)	समय शब्द की व्युत्पत्ति
099)	सामायिक योग्य स्थान
100)	व्रत के दिन सामायिक का उपदेश
101)	प्रातिदिन सामायिक का उपदेश
102)	सामायिक के समय मुनितुल्यता
103)	परीषह—उपसर्ग सहन का उपदेश
104)	सामायिक के समय चतन
105)	सामायिक के अतिचार
106)	प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत
107)	उपवास के दिन व्याज्या कार्य
108)	उपवास के दिन कर्तव्य
109)	प्रोषध और उपवास का लक्षण
110)	प्रोषधोपवासव्रत के अतिचार
111)	वैयावृत्य का लक्षण
112)	वैयावृत्य का दूसरा लक्षण
113)	दान का लक्षण
114)	दान का फल
115)	नवधा भक्ति का फल
116)	अल्पदान से महाफल

117)	दान के भेद
118)	वैयावृत्य में अर्हत पूजा
119)	दानों में प्रसिद्ध नाम
120)	पूजा का माहात्म्य
121)	वैयावृत्य के अतिचार

## सल्लेखना-अधिकार

122)	सल्लेखना का लक्षण
123)	सल्लेखना की आवश्यकता
124-125)	सल्लेखना की विधि और महाव्रत धारण का उपदेश
126)	स्वाध्याय का उपदेश
127)	भोजन के त्याग का क्रम
129)	सल्लेखना के पांच अतिचार
130)	सल्लेखना का फल
131)	मोक्ष का लक्षण
132)	मुक्तजीवों का लक्षण
133)	विकार का अभाव
134)	मुक्तजीव कहाँ रहते हैं ?
135)	सद्धर्म का फल

## श्रावकपद-अधिकार

136)	ग्यारह प्रतिमा
137)	दर्शन प्रतिमा
138)	व्रत प्रतिमा
139)	सामायिक प्रतिमा
140)	प्रोषध प्रतिमा
141)	सचित्त त्याग प्रतिमा
142)	रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा
143)	ब्रह्मचर्य प्रतिमा
144)	आरम्भ त्याग प्रतिमा
145)	परिग्रह त्याग प्रतिमा
146)	अनुमति त्याग प्रतिमा
147)	उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा
148)	श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है ?
149)	रत्नत्रय का फल
150)	इष्ट प्रार्थना

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नमः !!

श्रीमद्-भगवत्समन्तभद्राचार्य-देव-प्रणीत

# रत्नकरण्ड श्रावकाचार

मूल संस्कृत गाथा,  
प्रभाचंद्राचार्य कृत संस्कृत टीका और आदिमती माताजी कृत हिंदी टीका सहित

आभार :

## आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी

**अन्वयार्थ :** रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रन्थ के कर्ता आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी हैं। प्रतिभाशाली आचार्यों, समर्थ विद्वानों एवं पूज्य महात्माओं में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। आप समन्तांतभद्र थे - बाहर भीतर सब ओर से भद्र रूप थे। आप बहुत बड़े योगी, त्यागी, तपस्वी एवं तत्त्व ज्ञानी थे। आप जैन धर्म एवं सिद्धान्तों के मर्मज्ञ होने के साथ ही साथ तर्क व्याकरण छन्द अलंकार और काव्य-कोषादि ग्रन्थों में पूरी तरह निष्णात थे। आपको स्वामी पद से खास तौर पर विभूषित किया गया है। आप वास्तव में विद्वानों योगियों त्यागी-तपस्वियों के स्वामी थे।

**जीवनकाल :** आपने किस समय इस धरा को सुशोभित किया इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। कोई विद्वान आपको ईसा की तीसरी शताब्दी के बाद का बताते हैं तो कोई ईसा की सातवीं आठवीं शताब्दी का बताते हैं। इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्वर्गीय पंडित जुगल कशोर जी मुख्तार ने अपने विस्तृत लेखों में अनेकों प्रमाण देकर यह स्पष्ट किया है कि स्वामी समन्तभद्र तत्त्वार्थ सूत्र के कर्ता आचार्य उमास्वामी के पश्चात् एवं पूज्यपाद स्वामी के पूर्व हुए हैं। अतः आप असन्दिग्ध रूप से विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी के महान विद्वान थे। अभी आपके सम्बन्ध में यही विचार सर्वमान्य माना जा रहा है।

**जन्म स्थान :** पितृ कुल गुरुकुल - संसार की मोह ममता से दूर रहने वाले अधिकांश जैनाचार्यों के माता-पिता तथा जन्म स्थान आदि का कुछ भी प्रमाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। समन्तभद्र स्वामी भी इसके अपवाद नहीं हैं। श्रवणबेलगोला के विद्वान श्री दोर्बलजिनदास शास्त्री के शास्त्र भंडार में सुरक्षित आप्तमीमांसा की एक प्राचीन ताडपत्रीय प्रति के निम्नांकित पुष्प का वाक्य "इति श्री फणिमंडलालंकार स्योरगपुराधिपसूनोः श्री स्वामी समन्तभद्र मुनेः कुतौ आप्तमीमांसायाम्" से स्पष्ट है कि समन्तभद्र फणिमंडलान्तर्गत उरगपुर के राजा के पुत्र थे। इसके आधार पर उरगपुर आपकी जन्म भूमि अथवा बाल क्रीडा भूमि होती है। यह उरगपुर ही वर्तमान का "उरैयूर" जान पड़ता है। उरगपुर चोल राजाओं की प्राचीन राजधानी रही है। पुरानी त्रिचनापल्ली भी इसी को कहते हैं। आपके माता-पिता के नाम के बारे में कोई पता नहीं चलता है। आपका प्रारंभिक नाम शान्ति वर्मा था। दीक्षा के पहिले आपकी शिक्षा या तो उरैयूर में ही हुई अथवा कांची या मदुरा में हुई जान पड़ती है क्योंकि ये तीनों ही स्थान उस समय दक्षिण भारत में विद्या के मुख्य केन्द्र थे। इन सब स्थानों में उस समय जैनियों के अच्छे-अच्छे मठ भी मौजूद थे। आपकी दीक्षा का स्थान कांची या उसके आसपास कोई गांव होना चाहिये। आप कांची के दिगम्बर साधु थे "कांच्यां नग्राटकोअहं"।

**पितृ कुल की तरह समन्तभद्र स्वामी के गुरुकुल का भी कोई स्पष्ट लेख नहीं मिलता है। और न ही आपके दीक्षा के नाम का ही पता चल पाया है। आप मूलसंघ के प्रधान आचार्य थे। श्रवणबेलगोल के कुछ शिलालेखों से इतना पता चलता है कि आप श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली, उनके शिष्य चन्द्रगुप्त मुनि के वंशज पद्मनन्दि अपर नाम कोन्ड कुन्द मुनिराज उनके वंशज उमास्वाति की वंश परम्परा में हुये थे (शिलालेख नम्बर ४०)**

**मुनि जीवन और आपत् काल :** बड़े ही उत्साह के साथ मुनि धर्म का पालन करते हुए जब 'मुउवकहल्ली' ग्राम में धर्म ध्यान सहित मुनि जीवन व्यतीत कर रहे थे और अनेक दुर्द्धर तपश्चरण द्वारा आत्मोन्नति के पथ पर बढ़ रहे थे उस समय असाता वेदनीय कर्म के प्रबल उदय से आपको 'भस्मक' नाम का महारोग हो गया था। मुनि चर्या में इस रोग का शमन होना असंभव जान कर आप अपने गुरु के पास पहुंचे और उनसे रोग का हाल कहा तथा सल्लेखना धारण करने की आज्ञा चाही। गुरु महाराज ने सब परिस्थिति जानकर उन्हें कहा कि सल्लेखना का समय नहीं आया है और आप द्वारा वीर शासन कार्य के उद्धार की आशा है। अतः जहाँ पर जिस भेष में रहकर रोगशमन के योग्य तृप्ति भोजन प्राप्त हो वहाँ जाकर उसी वेष

को धारण कर लो । रोग उपशान्त होने पर फिर से जैन दीक्षा धारण करके सब कार्यों को संभाल लेना । गुरु की आज्ञा लेकर आपने दिगम्बर वेष का त्याग किया । आप वहाँ से चलकर कांची पहुँचे और वहाँ के राजा के पास जाकर शिवभोग की विशाल अन्न राशि को शिवपिण्डी को खिला सकने की बात कही । पाषाण निर्मित शिवजी की पिण्डी साक्षात् भोग ग्रहण करे इससे बढ़कर राजा को और क्या चाहिये था । वहाँ के मन्दिर के व्यवस्थापक ने आपको मन्दिर जी में रहने की स्वीकृति दे दी । मन्दिर के किवाड बन्द करके वे स्वयं विशाल अन्नराशि को खाने लगे और लोगों को बता देते थे कि शिवजी ने भोग ग्रहण कर लिया । शिव भोग से उनकी व्याधि धीरे-धीरे ठिक होने लगी और भोजन बचने लगा । अन्त में गुप्तचरों से पता लगा कि ये शिव भक्त नहीं है । इससे राजा बहुत क्रोधित हुआ और इन्हें यथार्थता बताने को कहा । उस समय समन्तभद्र ने निम्न श्लोक में अपना परिचय दिया ।

कांच्यां नग्राटकोअहं मलमलिनतनुर्लाबुशे पाण्डुपिण्ड  
पुण्ड्रोण्डे शाक्य भिक्षुः दशपुरनगरे मिष्टभोजी परित्राट ।  
वाराणस्यामभूवं भुवं शशधरधवलः पाण्डुरांगस्तपस्वी  
राजन् यस्याअस्ति शक्तिःस वदतु-पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥

कांची में मलिन वेषधारी दिगम्बर रहा, लाम्बुस नगर में भस्म रमाकर शरीर को श्वेत किया, पुण्डोण्ड में जाकर बौद्ध भिक्षु बना, दशपुर नगर में मिष्ट भोजन करने वाला सन्यासी बना, वाराणसी में श्वेत वस्त्रधारी तपस्वी बना । राजन् आपके सामने दिगम्बर जैनवादी खड़ा है, जिसकी शक्ति हो मुझ से शास्त्रार्थ कर ले ।

राजा ने शिव मूर्ति को नमस्कार करने का आग्रह किया । समन्तभद्र कवि थे । उन्होंने चौबीस तीर्थकरों का स्तवन शुरू किया । जब वे आठवें तीर्थकर चन्द्रप्रभु का स्तवन कर रहे थे, तब चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति प्रकट हो गई । स्तवन पूर्ण हुआ । यह स्तवन स्वयंभूस्तोत्र के नाम से प्रसिद्ध है । यह कथा ब्रह्म नेमिदत्त कथा कोष के आधार पर है ।

जिनशासन के अलौकिक दैदीप्यमान सूर्य : देश में जिस समय बौद्धादिकों का प्रबल आतंक छाया हुआ था और लोग उनके नैरात्मवाद, शून्यवाद, क्षणिकवादादि सिद्धान्तों से संतुष्ट थे, उस समय दक्षिण भारत में आपने उदय होकर जो अनेकान्त एवं स्याद्वाद का डंका बजाया वह बड़े ही महत्व का है एवं चिरस्मरणीय है । आपको जिनशासन का प्रणेता तक लिखा गया है । आपके परिचय के सम्बन्ध में निम्न पद्य है ।

"आचार्योअहं कविरहमहं वादिराट पण्डितोअहं  
दैवज्ञोअहं भिषगहमहं मान्त्रिकस्तान्त्रिककोअहम ।  
राजन्नस्यां जलधिवलया मे खलायामिलाया  
माज्ञासिद्धः किमिति बहुना सिद्धसारस्वतोअहम् ॥

मैं आचार्य हूँ, कवि हूँ, शास्त्रार्थियों में श्रेष्ठ हूँ, पण्डित हूँ, ज्योतिष हूँ, वैद्य हूँ, कवि हूँ, मान्त्रिक हूँ, तान्त्रिक हूँ, हे राजन् इस सम्पूर्ण पृथ्वी में मैं आज्ञासिद्ध हूँ । अधिक क्या कहूँ, सिद्ध सारस्वत हूँ ।

शुभचन्द्राचार्य ने आपको 'भारत भूषण ' लिखा है आप बहुत ही उत्तमोत्तम गुणों के स्वामी थे फिर भी कवित्व गमकत्व वादित्व और वाग्मित्र नामक चार गुण आप में असाधारण कोटि की योग्यता वाले थे जैसा कि आज से ग्यारह सौ वर्ष पहिले के विद्वान भगवज्जिनसेनाचार्य ने निम्न वाक्य से आदिपुराण में स्मरण किया है ।

कवीनां गमकानां च वादिनां वाग्मिनामपि ।  
यशः सामन्त भद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥४४॥

यशोधर चरित्र के कर्ता महाकवि वादिराज सूरि ने आपको उत्कृष्ट काव्य माणिक्यों का रोहण (पर्वत) सूचित किया है । अलंकर चिन्ता मणि में अजित सेनाचार्य ने आपको कवि कुंजर मुनि वद्य और निजानन्द लिखा है । वरांग चरित्र में श्री वर्धमान सूरि ने आपको 'महाकवीश्वर' और 'सुतर्क शास्त्रामृत सागर' बताया है । ब्रह्म अजित ने हनुमच्चरित्र में आपको भव्यरूप कुमुदों को प्रकुल्लित करने वाला चन्द्रमा लिखा है तथा साथ में यह भी प्रकट किया है कि वे 'दुर्वादियों' की वादरूपी खाज (खुजली) को मिटाने के लिये अद्वितीय महौषधि थे । इसके अलावा भी श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में आपको 'वादीभव त्रांकुश सुक्तिजाल स्फुटरत्नदीप' वादिसिंह, अनेकान्त जयपताका आदि आदि अनेकों विशेषणों से स्मरण किया गया है ।

आपका वाद क्षेत्र संकुचित नहीं था । आपने उसी देश में अपने वाद की विजय दुंदुभि नहीं बजाई जिसमें वे उत्पन्न हुये थे बल्कि सारे भारत वर्ष को अपने वाद का लीला स्थल बनाया था । करहाटक नगर में पहुंचने पर वहाँ के राजा के द्वारा पूँछे जाने पर आपने अपना पिछला परिचय इस प्रकार दिया है ।



पूर्व पाटिलपुत्र मध्यनगरे भेरि मयाताडिता  
पश्चान्मालवसिन्धु टुक्क विषये कांऽचीपुरे वैदिशे ।  
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहु भटं विद्योत्कटं संकटं  
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥

हे राजन् सबसे पहिले मैंने पाटलीपुत्र नगर में शास्त्रार्थ के लिये भेरी बजवाई फिर मालव, सिन्धु, ढक्क, कांची आदि स्थानों पर जाकर भेरी ताडित की । अब बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों से परिपूर्ण इस करहाटक नगर में आया हूँ । मैं तो शास्त्रार्थ की इच्छा रखता हुआ सिंह के समान घूमता फिरता हूँ । 'हिस्ट्री ऑफ कन्नडीज लिटरेचर' के लेखक मिस्टर एडवर्ड पी. राइस ने समन्तभद्र को तेजपूर्ण प्रभावशाली वादी लिखा है और बताया है कि वे सारे भारत वर्ष में जैनधर्म का प्रचार करने वाले महान प्रचारक थे । उन्होंने वाद भेरी बजने का दस्तूर का पूरा लाभ उठाया और वे बड़ी शक्ति के साथ जैन धर्म के स्याद्वाद सिद्धान्त को पुष्ट करने में समर्थ हुये हैं । उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आपने अनेकों स्थानों पर वाद भेरी बजवाई थी और किसी ने उसका विरोध नहीं किया । इस सम्बन्ध में स्वर्गीय पंडित श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार लिखते हैं कि 'इस सारी सफलता का कारण उनके अन्तःकरण की शुद्धता, चारित्र की निर्मलता एवं अनेकान्तात्मक वाणी का ही महत्व था उनके वचन स्याद्वाद न्याय की तुला में तुले होते थे और इसीलिए उन पर पक्षपात का भूत सवार नहीं होता था । वे परीक्षा प्रधानी थे ।

बहुमूल्य रचनाएँ -  
स्वामी समन्तभद्र द्वारा विरचित निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं -

१. स्तुति विद्या (जिनशतक)
२. युक्त्यनुशासन
३. स्वयंभूस्तोत्र
४. देवागम (आप्तमीमांसा) स्तोत्र
५. रत्नकरण्ड श्रावकाचार

अर्हदगुणों की प्रतिपादक सुन्दर-सुन्दर स्तुतियाँ रचने की उनकी बड़ी रुचि थी । उन्होंने अपने ग्रन्थ स्तुति विद्या में "सुस्तुत्या व्यसनं" वाक्य द्वारा अपने आपको स्तुतियाँ रचने का व्यसन बतलाया है । स्वयंभूस्तोत्र, देवागम और युक्त्यनुशासन आपके प्रमुख स्तुति ग्रंथ हैं । इन स्तुतियों में उन्होंने जैनागम का सार एवं तत्त्व ज्ञान को कूट-कूट कर भर दिया है । देवागम स्तोत्र में सिर्फ आपने ११४ श्लोक लिखे हैं । इस स्तोत्र पर अकलंकदेव ने अष्टशती नामक आठ सौ श्लोक प्रमाण वृत्ति लिखी जो बहुत ही गूढ़ सूत्रों में है । इस वृत्ति को साथ लेकर श्री विद्यानन्दाचार्य ने 'अष्ट सहस्री' टीका लिखी जो आठ हजार श्लोक परिमाण है । इससे यह स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ कितने अधिक अर्थ गौरव को लिये हुए है । इसी ग्रंथ में आचार्य ने एकान्तवादियों को स्वपर बैरी बताया है । "एकान्तग्रह रक्तेषुनाथ स्वपरवैरिषु ॥८॥

इन ग्रन्थों का हिन्दी अर्थ सहित प्रकाशन हो चुका है । उपरोक्त ग्रन्थों के अलावा आपके द्वारा रचित निम्न ग्रन्थों के उल्लेख मिलते हैं जो उपलब्ध नहीं हो पाये हैं -

१. जीवसिद्धि
२. तत्वानुशासन
३. प्राकृत व्याकरण
४. प्रमाणपदार्थ
५. कर्मप्राभृत टीका
- और ६. गन्धहस्ति महाभाष्य ।

महावीर रचामी के पश्चात् सैकड़ों ही महात्मा-आचार्य हमारे यहाँ हुये हैं उनमें से किसी भी आचार्य एवं मुनिराजों के विषय में यह उल्लेख नहीं मिलता है कि वे भविष्य में इसी भारत वर्ष में तीर्थकर होंगे । स्वामी समन्तभद्र के सम्बन्ध में यह उल्लेख अनेक शास्त्रों में मिलता है । इससे इन के चारित्र का गौरव और भी बढ़ जाता है ।

---

**!! नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!**

**ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः  
कामदं मोक्षदं चैव ॐ काराय नमो नमः ॥१॥**

**अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका  
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥**



अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया  
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥३॥

॥ श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं  
श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार नामधेयं, अस्य मूलाग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां  
वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्रीसमन्तभद्राचार्यदेव विरचितं

॥ श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी  
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥  
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं  
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

+ मंगलाचरण -

नमः श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने  
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

अन्वयार्थ : जिन्होंने [निर्धूत कलिलात्मने] सम्पूर्ण कर्म कलंक को धोकर अपनी आत्मा को शुद्ध कर लिया है । [यद्विद्या]  
जिनके केवलज्ञान रूपी [दर्पणायते] दर्पण में [सालोकानां त्रिलोकानां] तीनों लोक और आलोक स्पष्ट झलकते हैं उन  
[नमः श्री वर्धमानाय] तीर्थकर श्री वर्धमान स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

प्रभाचन्द्राचार्य :

श्रीसमन्तभद्रस्वामी रत्नानां रक्षणोपायभूतरत्नकरण्डकप्रख्यं सम्यग्दर्शनादि-रत्नानां पालनोपायभूतं रत्नकरण्डकाख्यं शास्त्रं  
कर्तुकामो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं फलमभिलषन्निष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह --

नमो नमस्कारोऽस्तु । कस्मै ? श्रीवर्धमानाय अन्तिमतीर्थकराय तीर्थकरसमुदायाय वा । कथं ? अव--समन्तादृद्धं  
परमातिशयप्राप्तं मानं केवलज्ञानं यस्यासौ वर्धमानः । अवाप्योरल्लोपः इत्यवशब्दाकारलोपः । श्रिया बहिरंगयाऽन्तरंगया च  
समवसरणान्तचतुष्टयलक्षणयोपलक्षितो वर्धमानः श्रीवर्धमान इति व्युत्पत्तेः, तस्मै । कथंभूताय ? निर्धूतकलिलात्मने निर्धूतं  
स्फोटितं कलिलं ज्ञानावरणादिरूपं पापमात्मन आत्मानां वा भव्यजीवानां येनासौ निर्धूतकलिलात्मा तस्मै । यस्य विद्या  
केवलज्ञानलक्षणा । किं करोति ? दर्पणायते दर्पण इवात्मानमाचरति । केषां ? त्रिलोकानां त्रिभुवनानां । कथंभूतानां ?  
सालोकानाम् अलोकाकाशसहितानाम् । अयमर्थः- यथा दर्पणो निजेन्द्रियगोचरस्य मुखादेः प्रकाशकस्तथा  
सालोकत्रिलोकानां तथाविधानां तद्विद्या प्रकाशिकेति । अत्र च पूर्वार्द्धेन भगवतः सर्वज्ञतोपायः, उत्तरार्द्धेन च सर्वज्ञतोक्ता ॥१॥

आर्यिका-आदिमति :

यहाँ वर्धमान शब्द के दो अर्थ किये हैं -- एक तो अन्तिम तीर्थकर वर्धमान स्वामी और दूसरा वृषभादि चौबीस तीर्थकरों का  
समुदाय । प्रथम अर्थ तो वर्धमान अन्तिम तीर्थकर प्रसिद्ध ही है और द्वितीय अर्थ में वर्धमान शब्द की व्याख्या इस प्रकार  
है- 'अव समन्ताद् ऋद्धं परमातिशयप्राप्तमानं केवलज्ञानं यस्यासौ' जिनका केवलज्ञान सब ओर से परम अतिशय को प्राप्त है  
। इस प्रकार इस अर्थ में वर्धमान शब्द सिद्ध होता है । किन्तु 'अवाप्योरल्लोपः' इस सूत्र से अव और अपि उपसर्ग के अकार  
का विकल्प से लोप होता है- व्याकरण के इस नियमानुसार 'अव' उपसर्ग के अकार का लोप हो जाने से वर्धमान शब्द सिद्ध  
हो जाता है । श्रिया- श्री का अर्थ लक्ष्मी होता है । लक्ष्मी भी अन्तरंग लक्ष्मी और बहिरंग लक्ष्मी, इस प्रकार दो भेद रूप है ।

समवसरणरूप लक्ष्मी बहिरंग लक्ष्मी है और अनन्त चतुष्टयरूप अन्तरंग लक्ष्मी कहलाती है । इस प्रकार श्री वर्धमान शब्द का अर्थ वृषभादि चौबीस तीर्थकर होता है, उनके लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।

जिन अन्तिम तीर्थकर वर्धमान स्वामी अथवा वृषभतीर्थकरादि चौबीस तीर्थकरों को नमस्कार किया है, उनमें क्या विशेषता है इस बात को बतलाते हुए कहा है -- **निर्धूतकलिलात्मने** अर्थात् जिनकी आत्मा से ज्ञानावरणादि कर्मरूप कलिलपापों का समूह नष्ट हो गया है, अथवा जिन्होंने अन्य भव्यात्माओं के कर्म-कलंक को नष्ट कर दिया है । जब यह जीव अपने दोषों का नाश कर देता है, तभी उसमें सर्वज्ञता प्रकट होती है और तभी वह हितोपदेश देने का अधिकारी होता है । इसलिये दूसरी विशेषता बतलाते हुए कहा है कि -- **यद्विद्या सालोकानां त्रिलोकानां दर्पणायते** अर्थात् जिनकी केवलज्ञानरूप विद्या अलोकाकाश सहित तीनों लोकों को प्रकाशित करने के लिये दर्पण के समान है । यथा -- मनुष्य को अपना मुख अपनी चक्षु इन्द्रिय से नहीं दिखता उसी प्रकार जो पदार्थ इन्द्रिय गोचर नहीं हैं उन्हें केवलज्ञान दिखा देता है अर्थात् केवलज्ञान में त्रिकालवर्ती सभी पदार्थ झलकते हैं ।

यहां श्लोक के पूर्वार्ध में भगवान् की सर्वज्ञता का उपाय बतलाया है और उत्तरार्ध में सर्वज्ञता का निरूपण किया गया है ।

+ आचार्य की प्रतिज्ञा -

## देशयामि समीचीनं, धर्म कर्म-निबर्हणम् संसारदुःखतः सत्त्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥

**अन्वयार्थ :** मैं **[कर्म-निवर्हणम्]** कर्मों का विनाश करने वाले उस **[समीचीनं]** श्रेष्ठ धर्म को **[देशयामि]** कहता हूँ **[यो]** जो **[सत्त्वान्]** जीवों को **[संसारदुःखतः]** संसार के दुःखों से निकालकर **[उत्तमे सुखे]** स्वर्ग-मोक्षादिक के उत्तम सुख में **[धरति]** धारण करता है - पहुँचा देता है ॥२॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथ तन्मस्कारकरणानन्तरं किं कर्तुं लग्नो भवानित्याह --

**देशयामि** कथयामि । कं ? **धर्म** । कथंभूतं ? **समीचीनम्** अबाधितं तदनुष्ठातृणामिह परलोके चोपकारकम् । कथं तं तथा निश्चितवन्तो भवन्त इत्याह **कर्मनिबर्हणं** यतो धर्मः संसारदुःखसम्पादककर्मणां निबर्हणो विनाशकस्ततो यथोक्तविशेषणविशिष्टः । अमुमेवार्थं व्युत्पत्तिद्वारेणास्य समर्थयमानः संसारेत्याद्याह संसारे चतुर्गतिके दुःखानि शरीरमानसादीनि तेभ्यः **सत्त्वान्** प्राणिन उद्धृत्य यो **धरति** स्थापयति । क ? **उत्तमे सुखे** स्वर्गापवर्गादि प्रभवे सुखे स धर्म इत्युच्यते ॥२॥

**आर्यिका-आदिमति :**

ग्रन्थकर्ता श्री समन्तभद्रस्वामी प्रतिज्ञावाक्य कहते हैं कि मैं उस अबाधित श्रेष्ठ धर्म का कथन करता हूँ जो जीवों का इस लोक में और परलोक में उपकार करने वाला है तथा संसार के समस्त दुःख देने वाले कर्मों का नाशक है । इन विशेषणों से विशिष्ट यह धर्म है । इसी अर्थ का व्युत्पत्ति द्वारा समर्थन करते हुए कहते हैं- जो जीवों को चतुर्गतिरूप संसार में होने वाले शारीरिक, मानसिक एवं आगन्तुक आदि दुःखों से निकालकर स्वर्ग और मोक्ष के उत्तम सुख में धारण करता है उस समीचीन धर्म का कथन करता हूँ ।

**पं-सदासुखदास :**

संसार में 'धर्म' ऐसा नाम तो समस्त लोक कहता है, परन्तु 'धर्म' शब्द का अर्थ तो इस प्रकार है - जो नरक-तिर्यचादि गतियों में परिभ्रमण-रूप दुःखों से आत्मा को छुड़ाकर उत्तम, आत्मीक, अविनाशी, अतीन्द्रिय, मोक्ष सुख में धर दे, वह धर्म है । ऐसा धर्म मोल (पैसा के बदले में) नहीं आता है, जो धन खर्च करके दान-सन्मानादि द्वारा ग्रहण कर ले; किसी का दिया नहीं मिलता है, जो सेवा-उपासना द्वारा प्रसन्न करके ले लिया जाय; मंदिर, पर्वत, जल, अग्नि, देवमूर्ति, तीर्थक्षेत्रादि में नहीं रखा है, जो वहाँ जाकर ले आयें; उपवास, व्रत, कायक्लेशादि तप से भी नहीं मिलता तथा शरीरादि कृश करने से भी नहीं मिलता है । देवाधिदेव के मंदिर में उपकरण-दान, मण्डल-पूजन आदि करके; घर छोड़कर वन-श्मशान आदि में निवास करने से तथा परमेश्वर के नाम-जाप आदि करके भी धर्म नहीं मिलता है ।

'धर्म' तो आत्मा का स्वभाव है । पर-द्रव्यों में आत्मबुद्धि छोड़कर अपने ज्ञाता दृष्टारूप स्वभाव का श्रद्धान, अनुभव (ज्ञान) और ज्ञायक स्वभाव में ही प्रवर्तनरूप जो आचरण है, वह धर्म है । जब उत्तम-क्षमादि दशलक्षण-रूप अपने आत्मा का परिपालन तथा रत्नत्रय-रूप और जीवों की दया-रूप अपने आत्मा की परिणति होगी, तब अपना आत्मा आप ही धर्म-रूप

हो जायगा । परद्रव्य, क्षेत्र, कालादिक तो निमित्त मात्र हैं । जिस समय यह आत्मा रागादिरूप परिणति छोड़कर वीतराग-रूप हुआ दिखाई देता है तभी मंदिर, प्रतिमा, तीर्थ, दान, तप, जप समस्त ही धर्मरूप हैं; और यदि अपना आत्मा उत्तम क्षमादिरूप, वीतरागता-रूप, सम्यग्ज्ञान-रूप नहीं होता है; तो बाहर कहीं भी धर्म नहीं होगा । यदि शुभराग होगा तो पुण्यबंध होगा; और यदि अशुभ राग द्वेष, मोह होगा तो पापबन्ध होगा । जहाँ शुद्ध श्रद्धान-ज्ञान-आचरण स्वरूप धर्म है वहाँ बंध का अभाव है । बंध का अभाव होने पर ही उत्तम सुख होता है ।

+ धर्म का लक्षण -

**सद्-दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदुः  
यदीय-प्रत्यनी-कानि, भवन्ति भवपद्धतिः ॥३॥**

**अन्वयार्थ :** [धर्मेश्वरा:] धर्म के स्वामी जिनेन्द्र देव [सद्-दृष्टिज्ञानवृत्तानि] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को [धर्म] धर्म [विदुः] कहते हैं और [यदीय] उसके [प्रत्यनीकानि] विपरीत मिथ्याज्ञान, मिथ्यदर्शन, मिथ्या चारित्र [भवपद्धति] संसार मार्ग [भवन्ति] होते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथैवंविधधर्मस्वरूपतां कानि प्रतिपद्यन्त इत्याह --

दृष्टिश्च तत्त्वार्थश्रद्धानं, ज्ञानं च तत्त्वार्थप्रतिपत्तिः, वृत्तं चारित्रं पापक्रियानिवृत्तिलक्षणम् । सन्ति समीचीनानि च तानि दृष्टिज्ञानवृत्तानि च । **धर्म** उक्तस्वरूपम् । **विदुः** वदन्ति प्रतिपादयन्ते । के ते ? **धर्मेश्वराः** रत्नत्रयलक्षणधर्मस्य ईश्वराः अनुष्ठातृत्वेन प्रतिपादकत्वेन च स्वामिनो जिननाथाः । कुतस्तान्येव धर्मो न पुनर्मिथ्यादर्शनादीन्यपीत्याह-यदीयेत्यादि । येषां सद्दृष्ट्यादीनां सम्बन्धीनि यदीयानि तानि च तानि प्रत्यनीकानि च प्रतिकूलानि मिथ्यादर्शनादीनि **भवन्ति** सम्पद्यन्ते । का ? **भवपद्धतिः** संसारमार्गः । अयमर्थः :- यतः सम्यग्दर्शनादिप्रतिपक्षभूतानि मिथ्यादर्शनादीनि संसारमार्गभूतानि । अतः सम्यग्दर्शनादीनि स्वर्गापवर्गसुखसाधकत्वाद्धर्मरूपाणि सिद्ध्यन्तीति ॥३॥

**आर्यिका-आदिमति :**

तत्त्वार्थश्रद्धान्तरूप दर्शन, तत्त्वों की याथात्म्यप्रतिपत्तिरूप ज्ञान और पापक्रियानिवृत्तिरूप चारित्र इस रत्नत्रयरूप धर्म के स्वयं आराधक तथा दूसरे जीवों को उसका उपदेश देने वाले होने से जिनेन्द्र भगवान् धर्म के ईश्वर कहलाते हैं । उन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को ही धर्म कहा है क्योंकि इन तीनों की एकता ही जीवों को संसार के दुःखों से निकालकर मोक्ष के उत्तम सुख में पहुँचा देती है । इन सम्यग्दर्शनादि तीनों से विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीनों संसार-भ्रमण के मार्ग हैं । तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शनादि के प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादि संसार के ही मार्ग हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि रत्नत्रय ही स्वर्ग और मोक्ष का साधक होने से धर्मरूप है ।

**पं-सदासुखदास :**

जो अपना और अन्य द्रव्यों का सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण है वह संसार परिभ्रमण से छुड़ाकर उत्तम-सुख में धरनेवाला धर्म है; और अपना व अन्य द्रव्यों का असत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण है वे संसार के घोर अनन्त-दुखों में डुबोनेवाले हैं -- ऐसा वीतराग भगवान कहते हैं; हम अपनी रूचि से कल्पित नहीं कह रहे हैं ।

# सम्यग्दर्शन-अधिकार

+ सम्यग्दर्शन -

# श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागमतपोभूताम् त्रिमूढापोढ-मष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शन-मस्मयम् ॥४॥

**अन्वयार्थ :** [परमार्थानाम्] परमार्थभूत [आप्तागमतपोभूताम्] आप्त, आगम और मुनि का [त्रिमूढापोढम्] तीन मूढ़ता रहित [अष्टाङ्गं] आठ अंग से सहित, [अस्मयम्] आठ प्रकार के मदों से रहित [श्रद्धानं] श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन कहलाता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तत्र सम्यग्दर्शनस्वरूपं व्याख्यातुमाह --

सम्यग्दर्शनं भवति । किम् ? श्रद्धानं रुचिः । केषां ? आप्तागमतपोभूतां वक्ष्यमाणस्वरूपाणाम् । न चैवं षड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थानां श्रद्धानमसङ्गृहीतमित्याशङ्कनीयम् आगमश्रद्धानादेव तच्छ्रद्धानसङ्ग्रहप्रसिद्धेः । अबाधितार्थप्रतिपादकमाप्तवचनं ह्यागमः । तच्छ्रद्धाने तेषां श्रद्धानं सिद्धमेव । किंविशिष्टानां तेषाम् ? परमार्थानां परमार्थभूतानां न पुनर्बौद्धमत इव कल्पितानाम् । कथम्भूतं श्रद्धानम् ? अस्मयं न विद्यते वक्ष्यमाणो ज्ञानदर्पाद्यष्टप्रकारः स्मयो गर्वो यस्य तत् । पुनरपि किंविशिष्टम् ? त्रिमूढापोढं त्रिभिर्मूढैर्वक्ष्यमाणलक्षणैरपोढं रहितं यत् । अष्टाङ्गं अष्टौ वक्ष्यमाणानि निःशङ्कितत्वादीन्यङ्गानि स्वरूपाणि यस्य ॥४॥

**आर्यिका-आदिमति :**

आप्त-देव, आगम-शास्त्र, तपोभूत-गुरु का जो आगम में स्वरूप बतलाया है, उन आप्त, आगम और तपोभूत का उसी रूप से दृढ़ श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है । आप्त, आगम, साधु का लक्षण आगे कहा जाएगा ।

यहाँ कोई शङ्का करे कि अन्य शास्त्रों में तो छह द्रव्य, सात तत्त्व तथा नौ पदार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है, परन्तु यहाँ आचार्य ने देव-शास्त्र-गुरु की प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहकर अन्य शास्त्रों में कथित लक्षण का संग्रह नहीं किया है, तो इसका समाधान यह है कि आगम के श्रद्धान से ही छह द्रव्य, सात तत्त्व और नौ पदार्थों के श्रद्धानरूप लक्षण का संग्रह हो जाता है । क्योंकि अबाधितार्थप्रतिपादकमाप्तवचनं ह्यागमः अबाधित अर्थ का कथन करने वाले जो आप्त के वचन हैं वे ही आगम हैं । इसलिए आगम के श्रद्धान से ही छह द्रव्यादिक का श्रद्धान संगृहीत हो जाता है । वे आप्त, आगम, गुरु परमार्थभूत हैं किन्तु बौद्धमत के द्वारा कल्पित सिद्धान्त परमार्थभूत नहीं हैं । वास्तव में ज्ञान, पूजा, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर इन आठ मदों से रहित लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता और गुरुमूढ़ता से रहित और निःशङ्कित, निःकाङ्क्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना इन आठ अङ्गों से सहित श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन कहलाता है । आठ अङ्गों, आठ मदों और तीन मूढ़ताओं का लक्षण आगे कहेंगे ।

**पं-सदासुखदास :**

सत्यार्थ आप्त, आगम व गुरु का तिन मूढ़ता रहित, निःशंकित आदि अष्ट अंग सहित और अष्टमद रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ।

यहाँ कोई प्रश्न करता है - आगम में तो सप्त तत्त्व, नव पदार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है, यहाँ पर वह क्यों नहीं कहा ?

उसका समाधान – निर्दोष बाधा रहित आगम के उपदेश बिना सप्त तत्त्वों का श्रद्धान कैसे होगा ? निर्दोष आप्त के बिना सत्यार्थ आगम कैसे प्रगट होगा ? इसलिए तत्त्वों के भी श्रद्धान का मूल-कारण सत्यार्थ आप्त ही है ।

+ आप्त का लक्षण -

## आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

**अन्वयार्थ :** जो [दोषेण] दोष [उत्सन्न] रहित होने से वीतराग, [सर्वज्ञेन] सर्व के ज्ञाता होने से सर्वज्ञ और हित के उपदेशक होने से हितोपदेशी हैं, अतः [आगमेन] आगम के [ईशिना] ईश्वर हैं, वे ही [नियोगेन] नियम से [आप्तेन] आप्त [भवितव्यं] होते हैं । [नान्यथा] अन्य प्रकार से / इन गुणों से रहित [ह्याप्तता] आप्त नहीं [भवेत्] हो सकते हैं ॥५॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तत्र सदृशनिविष्टतयोक्तस्याप्तस्य स्वरूपं व्याचिख्यासुराह --

**आप्तेन भवितव्यं नियोगेन** निश्चयेन नियमेन वा । किं विशिष्टेन ? **उत्सन्नदोषेण** नष्टदोषेण । तथा **सर्वज्ञेन** सर्वत्र विषयेऽशेषविशेषतः परिस्फुटपरिज्ञानवता नियोगेन भवितव्यम् । तथा **आगमेशिना** भव्यजनानां हेयोपादेयतत्त्वप्रतिपत्तिहेतुभूतागमप्रतिपादकेन नियमेन भवितव्यम् । कुत एतदित्याह -- **नान्यथा ह्याप्तता भवेत् हि** यस्मात् अन्यथा उक्तविपरीतप्रकारेण, आप्तता न भवेत् ॥५॥

### आर्यिका-आदिमति :

जिनके क्षुधा-तृषादि शारीरिक तथा रागद्वेषादिक दोष नष्ट हो गये हैं तथा जो समस्त पदार्थों को उनकी विशेषताओं सहित स्पष्ट जानते हैं तथा जो आगम के ईश हैं अर्थात् जिनकी दिव्यध्वनि सुनकर गणधर द्वादशांगरूप शास्त्र की रचना करते हैं, इस प्रकार जो भव्य जीवों को हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान कराने वाले आगम के मूलकर्ता हैं वे ही आप्त-सच्चे देव हो सकते हैं, यह निश्चित है, क्योंकि जिनमें ये विशेषताएँ नहीं हैं, वे सच्चे देव नहीं हो सकते ।

### पं-सदासुखदास :

जो स्वयं ही दोषों सहित हो वह अन्य जीवों को निराकूल, सुखी, निर्दोष कैसे करेगा ? जो क्षुधा की बाधा, तृषा की बाधा, काम, क्रोधादिक दोषों सहित हो वह तो महादुखी है, उसके ईश्वरपना कैसे होगा ? जो निरन्तर भयवान होकर शस्त्र आदि ग्रहण किये रहे उसके शत्रु विद्यमान हैं, वह निराकूल कैसे होगा ? जिसके द्वेष, चिंता, खेदादि निरन्तर रहें वह सुखी नहीं होता । जो कामी, रागी हो वह तो निरन्तर अन्य के वश रहता है; उसे स्वाधीनता नहीं है; पराधीनता से सच्चा वक्तापना बनता नहीं है । जो मद के वशीभूत हो, निन्दा के वशीभूत हो, उसके सच्चा ज्ञातापना नहीं हो सकता है । जो जन्म-मरण सहित है उसके संसार परिभ्रमण का अभाव नहीं हुआ, संसारी ही है; उसके भी सच्चा आप्तपना नहीं बनता । इसलिये जो निर्दोष हो उसी को सत्यार्थ-पने द्वारा आप्त-पना बनता है । रागी-द्वेषी तो अपना और पर का राग-द्वेष पुष्ट करने-रूप वचन ही कहता है । यथार्थ वक्ता-पना तो वीतरागी को ही सम्भव है ।

यदि सर्वज्ञ नहीं होते तो इंद्रियों के आधीन ज्ञानवाला पहले हो गए राम, रावण, आदि उन्हें कैसे जानेगा ? दूरवर्ती जो मेरु पर्वत, स्वर्ग, नरक परलोकादि को कैसे जानेगा ? और सूक्ष्म परमाणु इत्यादि को कैसे जानेगा ?

इन्द्रियजनित ज्ञान तो स्थूल, विद्यमान, अपने सन्मुख पदार्थों ही को स्पष्ट नहीं जानता है । इस संसार में पदार्थ तो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि अनन्त हैं और एक ही समय में सभी अपनी भिन्न-भिन्न परिणति-रूप परिणमते हैं । इसलिये एक समयवर्ती अनन्त पदार्थों की भिन्न-भिन्न अनन्त ही पर्यायें होती हैं । इंद्रिय-जनित ज्ञान तो क्रमवर्ती स्थूल पुद्गल की अनेक समयों में हुई जो एक स्थूल पर्याय है, उसे जानने-वाला है । अनेक पदार्थों की अनेक पर्यायें प्रति-समय हो रही हैं । जो एक समय-वर्ती सभी पर्यायों को हो जानने में समर्थ नहीं है, तो जो अनन्त-काल बीत गया और अनन्त-काल आयेगा, उसकी अनन्तानन्त पर्यायों को वह इंद्रिय-जनित ज्ञान कैसे जान सकेगा ? इसलिये सर्व त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों को युगपत् (एक-साथ) जानने में समर्थ ऐसे सर्वज्ञ ही के आप्त-पना सम्भव है; और जो परम हितोपदेशक हो वही आप्त है । ये तीन गुण जिसमें हो वही देव है ।

यद्यपि अर्हन्तदेव मनुष्य पर्याय को धारण किये मनुष्य हैं, तो भी ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों के नाश से प्रगट हुआ जो अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-वीर्य, अनन्त-सुख-रूप निज स्वभाव, उसमें रमण करने से, कर्मों को जीतने से, अप्रमाण (अतुल) शरीर की कांति प्रगट होने से, अनन्त आनन्द और सुख में मग्न होने से तथा इंद्रादि समस्त देवों द्वारा स्तुति योग्य होने से, अनन्त ज्ञान-दर्शन स्वभाव द्वारा समस्त लोकालोक में व्याप्त होने से, अनन्त शक्ति प्रगट होने से अन्य देवों और मनुष्यों से भिन्न असाधारण आत्मा के रूप द्वारा शोभायमान है । इसलिये मनुष्य पर्याय में ही अपने अनन्त-ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख आदि गुणों के प्रगट होने के कारण इन्हें देवाधि-देव कहते हैं ।

यहाँ कोई प्रश्न करता है - आप्त के तीन लक्षण (गुण) क्यों कहे ? एक निर्दोष कहने से ही उसमें समस्त गुण (लक्षण) आ जाते ?

उससे कहते हैं - निर्दोषपना तो पुद्गल (परमाणु), धर्म, अधर्म, आकाश और कालादि में भी है । इनके अचेतनपना होने से क्षुधा, तृषा, राग-द्वेषादि भी नहीं है । अतः निर्दोषपना कहने से इनके आप्तपना का प्रसंग आ जाता । आप्त निर्दोष तो होता ही है, सर्वज्ञ भी होता है । यदि निर्दोष और सर्वज्ञ -- ये दो ही आप्त के गुण कहें तो भगवान सिद्धों के भी आप्तपना का प्रसंग आ जाता, तब सच्चे उपदेश का अभाव आ जाता । इसलिये निर्दोष, सर्वज्ञ और परम हितोपदेशकता इन तीन गुणों सहित देवाधिदेव परम औदारिक शरीर में स्थित भगवान सर्वज्ञ वीतराग अरहन्त को ही आप्तपना है, ऐसा निश्चय करना योग्य है ।



## क्षुत्पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक-भयस्मयाः न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

**अन्वयार्थ :** [क्षुत्] भूख, [पिपासा] प्यास, [जरा] बुढ़ापा, [आतंक] रोग/व्याधि, जन्म, [अन्तक] मरण, भय, [स्मयाः] मद, राग, द्वेष, मोह, रोग, [च] चिन्ता, निद्रा, आश्चर्य, अरति, पसीना और खेद ये अठारह दोष [यस्या] जिनमें [न] नहीं हैं [स] उसे ही [आप्तः] आप्त [प्रकीर्त्यते] कहते हैं ॥६॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथ के पुनस्ते दोषा ये तत्रोत्सन्ना इत्याशङ्क्याह --

**क्षुच्च** बुभुक्षा । पिपासा च तृषा । जरा च वृद्धत्वम् । आतङ्कश्च व्याधिः । जन्म च कर्मवशाच्चतुर्गतिभूतपत्तिः । अन्तकश्च मृत्युः । भयं चेहपरलोकात्राणागुप्तिमरणवेदनाऽऽकस्मिकलक्षणम् । स्मयश्च जातिकुलादिदर्पः रागद्वेषमोहाः प्रसिद्धाः । च शब्दाच्चिन्ताऽरतिनिद्राविस्मयमदस्वेदखेदा गृह्यन्ते । एतेऽष्टादशदोषा यस्य न सन्ति स आप्तः **प्रकीर्त्यते** प्रतिपाद्यते । ननु चाप्तस्य भवेत् क्षुत्, क्षुदभावे आहारादौ प्रवृत्त्यभावाद्देहस्थितिर्न स्यात् । अस्ति चासौ, तस्मादाहारसिद्धिः । तथाहि भगवतो देहस्थितिराहारपूर्विका, देहस्थितित्वादस्मदादिदेहस्थितिवत् । जैनेनोच्यते -- अत्र किमाहारमात्रं साध्यते कवलाहारो वा ? प्रथमपक्षे सिद्धसाधनता **आसयोगकेवलिन आहारिणो जीवा** इत्यागमाभ्युपगमात् । द्वितीयपक्षे तु देवदेहस्थित्याव्यभिचारः । देवानां सर्वदा कवलाहाराभावेऽप्यस्याः सम्भवात् । अथ मानसाहारात्तेषां तत्र स्थितिस्तर्हि केवलिनां कर्मनोकर्माहारात्सास्तु । अथ मनुष्यदेहस्थितित्वादस्मदादिवत्साततपूर्विका इष्यते तर्हि तद्वदेव तद्देहे सर्वदा निःस्वेदत्वाद्यभावः स्यात् । अस्मदादावनुपलब्धस्यापि तदतिशयस्य तत्र सम्भवे भुक्त्यभावलक्षणोऽप्यतिशयः किं न स्यात् । किं च अस्मदादौ दृष्टस्य धर्मस्य भगवति सम्प्रसाधने तज्ज्ञानस्येन्द्रियजनितत्वप्रसङ्गः । तथाहि भगवतो ज्ञानमिन्द्रियजं ज्ञानत्वात् अस्मदादिज्ञानवत् । अतो भगवतः केवलज्ञानलक्षणातीन्द्रियज्ञानासम्भवात् सर्वज्ञत्वाय दत्तो जलाञ्जलिः । ज्ञानत्वाविशेषेऽपि तज्ज्ञानस्यातीन्द्रियत्वे देहस्थितित्वाऽविशेषेऽपि तद्देहस्थितेरकवलाहारपूर्वत्वं किं न स्यात् । वेदनीयसद्भावात्तस्य बुभुक्षोत्पत्तेर्भोजनादौ प्रवृत्तिरित्युक्तिरनुपपन्ना मोहनीयकर्मसहायस्यैव वेदनीयस्य बुभुक्षोत्पादने सामर्थ्यात् । **भोक्तुमिच्छा बुभुक्षा** सा मोहनीयकर्मकार्यत्वात् कथं प्रक्षीणमोहे भगवति स्यात् ? अन्यथा रिरंसाया अपि तत्र प्रसङ्गात् कमनीयकामिन्यादिसेवाप्रसक्तेरीश्वरादेस्तस्याविशेषाद्वीतरागता न स्यात् । विपक्षभावनावशाद्रागादीनां हान्यतिशयदर्शनात् केवलिनि तत्परमप्रकर्षप्रसिद्धेर्वीतरागतासम्भवे भोजनाभावपरमप्रकर्षोपि तत्र किं न स्यात्, तद्भावनातो भोजनादावपि हान्यतिशयदर्शनाविशेषात् । तथाहि एकस्मिन् दिने योऽनेकवारान् भुङ्क्ते, कदाचित् विपक्षभावनावशात् स एव पुनरेकवारं भुङ्क्ते । कश्चित् पुनरेकदिनाद्यन्तरितभोजनः, अन्यः पुनः पक्षमाससंवत्सराद्यन्तरितभोजन इति । किं च बुभुक्षापीडानिवृत्तिर्भोजनरसास्वादानाद्भवेत् तदास्वादनं चास्य रसनेन्द्रियात् केवलज्ञानाद्वा ? रसनेन्द्रियाच्चेत् मतिज्ञानप्रसङ्गात् केवलज्ञानाभावः स्यात् । केवलज्ञानाच्चेत् किं भोजनेन ? दूरस्थस्यापि त्रैलोक्योदरवर्तिनोरसस्य परिस्फुटं तेनानुभवसम्भवात् । कथं चास्य केवलज्ञानसम्भवो भुञ्जानस्य श्रेणीतः पतितत्वं प्रमत्तगुणस्थानवर्तित्वात् । अप्रमत्तो हि साधुराहार कथामात्रेणापि प्रमत्तो भवति । नार्हन्भुञ्जानोऽपीति महच्चित्रम् । अस्तु तावज्ज्ञानसम्भवः तथाप्यसौ केवलज्ञानेन । पिशिताद्यशुद्धद्रव्याणि पश्यन् कथं भुञ्जीत अन्तरायप्रसङ्गात् । गृहस्था अप्यल्पसत्त्वास्तानि पश्यन्तोऽन्तरायं कुर्वन्ति, किं पुनर्भगवाननन्तवीर्यस्तत्रकुर्यात् । तदकरणे वा तस्य तेभ्योऽपि हीनसत्त्वप्रसङ्गात् । क्षुत्पीडासम्भवे चास्य कथमनन्तसौख्यं स्यात् यतोऽनन्तचतुष्टयस्वामिताऽस्य । नहि सान्तरायस्यानन्तता युक्ता ज्ञानवत् । न च बुभुक्षा पीडैव न भवतीत्यभिधातव्यम् **क्षुधासमा नास्ति शरीरवेदना** इत्यभिधानात् । तदलमतिप्रसङ्गेन प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुमुदचन्द्रे च प्रपञ्चतः प्ररूपणात् ॥६॥

**आर्यिका-आदिमति :**

क्षुधा-भूख, पिपासा-प्यास, जरा-बुढ़ापा, वात-पित्त-कफ के विकार से उत्पन्न रोग, कर्मों के उदय से चारों गतियों में उत्पत्ति का होना जन्म है । अन्तक-मृत्यु, इहलोक-भय, परलोक-भय, अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और आकस्मिक भय ये सात भय हैं । जाति कुलादि के गर्व को स्मय-अहंकार कहते हैं । इष्ट वस्तु के प्रति प्रीति राग है, अनिष्ट वस्तु में अप्रीति का होना द्वेष है, शरीरादिक पर-वस्तुओं में ममकार बुद्धि का होना मोह कहलाता है । श्लोक में आये हुए च शब्द से चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, मद, स्वेद और खेद इन सात दोषों का ग्रहण होता है । इष्टवस्तु का वियोग होने पर उसे प्राप्त करने के लिए मन में जो विकलता होती है, उसे चिन्ता कहते हैं । अप्रिय वस्तु का समागम होने पर जो अप्रसन्नता होती है, वह अरति है । निद्रा का अर्थ प्रसिद्ध है । इसके पाँच भेद हैं- निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि । आश्चर्यरूप परिणाम को विस्मय कहते हैं । नशा को मद कहते हैं, पसीना को स्वेद कहते हैं और थकावट को खेद कहते हैं, ये सब मिलकर अठारह दोष कहलाते हैं । ये दोष जिनमें नहीं पाये जाते हैं, वे ही आप्त कहलाते हैं ।

यहाँ शङ्काकार कहता है कि आप्त के क्षुधा की बाधा होती है, क्योंकि भूख के अभाव में आहारादिक में प्रवृत्ति नहीं होगी और आहारादिक में प्रवृत्ति न होने से शरीर की स्थिति नहीं रह सकेगी । किन्तु आप्त के शरीर की स्थिति रहती है । अतः

उससे आहार की भी सिद्धि हो जाती है। यहाँ पर निम्न प्रकार का अनुमान होता है -- केवली भगवान् की शरीर-स्थिति आहारपूर्वक होती है क्योंकि वह शरीर स्थिति है, हमारी शरीर-स्थिति के समान। जिस प्रकार हम छद्मस्थों का शरीर आहार के बिना स्थिर नहीं रहता, उसी प्रकार आप्त भगवान् का शरीर भी आहार के बिना स्थिर नहीं रह सकता। अतः उनके आहार अवश्य होता है और जब आहार है तो क्षुधा का मानना भी अनिवार्य होगा ?

इस शंका के उत्तर में जैनाचार्य कहते हैं कि आप आप्त भगवान् के आहार मात्र सिद्ध कर रहे हो या कवलाहार ? प्रथम पक्ष में सिद्ध-साधनता दोष आता है, क्योंकि सयोग केवली पर्यन्त तक के सभी जीव आहारक हैं ऐसा आगम में स्वीकार किया है। और दूसरे पक्ष में देवों की शरीरस्थिति के साथ व्यभिचार आता है क्योंकि देवों के सर्वदा कवलाहार का अभाव होने पर भी शरीर की स्थिति देखी जाती है। यदि कोई यह कहे कि देवों के मानसिक आहार होता है उससे उनके शरीर की स्थिति देखी जाती है तो उसका उत्तर यह है कि केवली भगवान् के भी कर्म तथा नोकर्म आहार होता है, उससे उनके शरीर की स्थिति रह सकती है। यदि यहाँ यह कहा जावे कि आप्त का शरीर हमारे शरीर के समान ही तो मनुष्य का शरीर है इसलिए जिस प्रकार हमारा शरीर आहार के बिना नहीं टिक सकता उसी प्रकार आप्त का शरीर भी आहार के बिना नहीं ठहर सकता। इसका उत्तर यह है कि यदि आहार की अपेक्षा आप्त भगवान् के शरीर से हमारे शरीर की तुलना की जाती है, तो जिस प्रकार केवली भगवान् के शरीर में पसीना आदि का अभाव है उसी प्रकार हम छद्मस्थों के शरीर में भी पसीना आदि का अभाव होना चाहिए, क्योंकि मनुष्यशरीरत्वरूप हेतु दोनों में विद्यमान है। इसके उत्तर में यदि यह कहा जाए कि हमारे शरीर में वह अतिशय नहीं पाया जाता, जिससे कि पसीना आदि का अभाव हो, परन्तु केवली भगवान् के तो वह अतिशय पाया जाता है जिसके कारण उनके शरीर में पसीना आदि नहीं होता, तो इसका उत्तर यह है कि जब केवली भगवान् के पसीना आदि के अभाव का अतिशय माना जाता है, तब भोजन के अभाव का अतिशय क्यों नहीं हो सकता ?

दूसरी बात यह है कि जो धर्म हम छद्मस्थों में देखा जाता है, वह यदि भगवान् में भी सिद्ध किया जाता है तो जिस प्रकार हम लोगों का ज्ञान इन्द्रियजनित है उसी प्रकार भगवान् का ज्ञान भी इन्द्रियजनित मानना चाहिए। इसके लिए निम्न प्रकार का अनुमान किया जाता है- 'भगवते ज्ञानमिन्द्रियजं ज्ञानत्वात् अस्मदादिज्ञानवत्' भगवान् का ज्ञान इन्द्रियजनित है, क्योंकि वह ज्ञान है हमारे ज्ञान के समान। इस अनुमान से अरहन्त भगवान् के केवलज्ञानरूप अतीन्द्रियज्ञान असम्भव हो जाएगा और तब सर्वज्ञता के लिए जलाञ्जलि देनी पड़ेगी। यदि यह कहा जाए कि हमारे और उनके ज्ञान में ज्ञानत्व की अपेक्षा समानता होने पर भी उनका ज्ञान अतीन्द्रिय है तो इसका उत्तर यह है कि हमारे और उनके शरीरस्थिति की समानता होने पर भी उनकी शरीरस्थिति बिना कवलाहार के क्यों नहीं हो सकती ?

अरहन्त भगवान् के असातावेदनीय का उदय रहने से बुभुक्षा-भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है, इसलिए भोजनादि में उनकी प्रवृत्ति होती है, यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जिस वेदनीय के साथ मोहनीय कर्म सहायक रहता है, वही बुभुक्षा के उत्पन्न करने में समर्थ होता है। भोजन करने की इच्छा को बुभुक्षा कहते हैं। वह बुभुक्षा मोहनीय कर्म का कार्य है। अतः जिनके मोह का सर्वथा क्षय हो चुका है, ऐसे अरहन्त भगवान् के वह कैसे हो सकती है? यदि ऐसा न माना जाएगा तो फिर रिरंसा-रमण करने की इच्छा भी उनके होनी चाहिए। और उसके होने पर सुन्दर स्त्री आदि के सेवन का प्रसङ्ग भी आ जाएगा। उसके आने पर अरहन्त भगवान् की वीतरागता की समाप्त हो जाएगी। यदि यह कहा जाए कि विपरीत भावनाओं के वश से रागादिक की हीनता का अतिशय देखा जाता है अर्थात् रागादिक के विरुद्ध भावना करने से रागादिक में हास देखा जाता है। केवली भगवान् के रागादिक की हानि अपनी चरम सीमा को प्राप्त है, इसलिए उनकी वीतरागता में बाधा नहीं आती ? इसका उत्तर यह है कि यदि ऐसा है तो उनके भोजनाभाव की परम प्रकर्षता क्यों नहीं हो सकती, क्योंकि भोजनाभाव की भावना से भोजनादिक में भी हास का अतिशय देखा जाता है। जैसे जो पुरुष एक दिन में अनेक बार भोजन करता है, वही पुरुष कभी विपरीत भावना के वश से एक बार भोजन करता है। कोई पुरुष एक दिन के अन्तर से भोजन करता है और कोई पुरुष पक्ष, मास तथा वर्ष आदि के अन्तर से भोजन करता है।

दूसरी बात यह भी है कि अरहन्त भगवान् के जो बुभुक्षा-सम्बन्धी पीड़ा होती है और उसकी निवृत्ति भोजन के रसास्वादन से होती है, तो यहाँ पूछना यह है कि वह रसास्वादन उनके रसना इन्द्रिय से होता है या केवलज्ञान से ? यदि रसना इन्द्रिय से होता है, ऐसा माना जाए तो मतिज्ञान का प्रसङ्ग आने से केवलज्ञान का अभाव हो जाएगा। इस दोष से बचने के लिए यदि केवलज्ञान से रसास्वाद माना जाए तो फिर भोजन की आवश्यकता ही क्या है, क्योंकि केवलज्ञान के द्वारा तो तीन लोक के मध्य में रहनेवाले दूरवर्ती रस का भी अच्छी तरह अनुभव हो सकता है। एक बात यह भी है कि भोजन करने वाले अरहन्त के केवलज्ञान हो भी कैसे सकता है, क्योंकि भोजन करते समय वे श्रेणी से पतित होकर प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती हो जायेंगे। जब अप्रमत्तविरत साधु आहार की कथा करने मात्र से प्रमत्त हो जाता है, तब अरहन्त भगवान् भोजन करते हुए भी प्रमत्त न हों, यह बड़ा आश्चर्य है। अथवा केवलज्ञान मान भी लिया जाय तो भी केवलज्ञान के द्वारा मांस आदि अशुद्ध द्रव्यों को देखते हुए वे कैसे भोजन कर सकते हैं ? क्योंकि अन्तराय का प्रसङ्ग आता है। अल्पशक्ति के धारक गृहस्थ भी जब मांसादिक को देखते हुए अन्तराय करते हैं तब अनन्तवीर्य के धारक अरहन्त भगवान् क्या अन्तराय नहीं करेंगे ? यदि नहीं करते हैं तो उनमें भी हीनशक्ति का प्रसङ्ग आता है। यदि अरहन्त भगवान् के क्षुधा सम्बन्धी पीड़ा होती है तो उनके अनन्त सुख किस प्रकार हो सकता है? जबकि वे नियम से अनन्त-चतुष्टय के स्वामी होते हैं। जो अन्तराय से सहित है, उसके ज्ञान



के समान सुख की अनन्तता नहीं हो सकती। अर्थात् जिस प्रकार अन्तराय सहित ज्ञान में अनन्तता नहीं होती, उसी प्रकार अन्तराय सहित अरहन्त के सुख में अनन्तता नहीं हो सकती।

'क्षुधा पीड़ा ही नहीं है' ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लोक में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'क्षुधासमा नास्ति शरीरवेदना' क्षुधा के समान दूसरी कोई शरीर पीड़ा नहीं है। इस विषय को यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है क्योंकि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र में विस्तार से इसका निरूपण किया गया है।

## परमेष्ठी परंज्योतिः विरागो विमलः कृती सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः, सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

**अन्वयार्थ :** वह आप्त परमेष्ठी, [परंज्योतिः] केवलज्ञानी, [विरागः] वीतराग, विमल, [कृती] कृतकृत्य, सर्वज्ञ, [अनादिमध्यान्तः] आदि, मध्य तथा अन्त से रहित, [सार्वः] सर्वहितकर्ता और [शास्ता] हितोपदेशक [उपलाल्यते] कहा जाता है -- ये सब आप्त के नाम हैं।

**पं-सदासुखदास :**

परमेष्ठी अर्थात् परमइष्ट। इन्द्रादिकों के द्वारा वंदनीय जो परमात्म-स्वरूप में ठहरा है वह परमेष्ठी है। परमेष्ठी और कैसा होता है? अन्तरंग तो घातिया कर्मों के नाश से प्रगट हुआ है। अनन्त-ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य-स्वरूप अपना जो निर्विकार, अविनाशी,

परमात्म स्वरूप उसमें स्थित है; और बाह्य में इन्द्रादिक असंख्यात देवों द्वारा वन्द्य-मान, समोशरण सभा के बीच में तीन पीठिकाओं के ऊपर, दिव्य सिंहासन में चार अंगुल अधर, चौंसठ चमरों सहित विराजमान, तीन छत्र आदि दिव्य संपत्ति से विभूषित, इन्द्रादिक देव और मनष्यों आदि निकट-भव्यों को धर्मोपदेश-रूप अमृत का पान कराता हुआ, जन्म-जरा-मरण के दुखों का निराकरण करता हुआ विराजमान हैं; ऐसे भगवान आप्त को परमेष्ठी कहते हैं।

जो कर्मों की आधीनता से इंद्रियों के काम-भोग आदि विषयों में तथा विनाशीक संपदा-रूप राज्य-संपदा में मग्न होकर स्त्रियों के आधीन होकर विषयों की तपन सहित रह रहे हैं उनको परमेष्ठी-पना संभव ही नहीं है।

जो **परंज्योति** हैं; जिसके परं अर्थात् आवरण रहित, ज्योति अर्थात् अतीन्द्रिय अनन्त-ज्ञान में लोक-अलोकवर्ती समस्त पदार्थ अपने त्रिकालवर्ती अनन्त-गुण पर्यायों के साथ युगपत् प्रतिबिम्बित हो रहे हैं; ऐसे भगवान परम ज्योति-स्वरूप आप्त हैं। अन्य जो इन्द्रिय-जनित ज्ञान से अल्प-क्षेत्रवर्ती वर्तमान स्थूल पदार्थों को क्रम-क्रम से जानता है उसे परं-ज्योति कैसे कहा जा सकता है?

जिसे मोहनीय कर्म का नाश होने से समस्त पर-द्रव्यों में राग-द्वेष का अभाव होने से वांछारहित परम वीतरागता प्रगट हुई है, वह वास्तु का सच्चा स्वरूप जान लेने पर किसमें राग करेगा और किसमें द्वेष करेगा? जैसा वास्तु का स्वभाव है कैसा राग द्वेष रहित जानता है; ऐसा विराग नाम सहित अरहन्त ही आप्त है। जो कामी-विषयों में आसक्त, गीत-नृत्य-वाद्यों में आसक्त, जगत की स्त्रियों को लुभाने में, बैरियों को मारकर लोगों में अपना शुरपना प्रगट करने की इच्छा सहित है उसको विराग-पना संभव नहीं है।

जिनका काम, क्रोध, मान, माया, लोभादि भावमल नष्ट हो गया है; ज्ञानावरणादि कर्ममल नष्ट हो गया है; मूत्र, पुरीष, पसेव, वात, पित्तादि शरीरमल नष्ट हो गया है; निगोदिया जीवों से रहित, छाया रहित, कांति युक्त, क्षुधा, तृषा, रोग, निद्रा, भय, विस्मय आदि रहित परम ओदारिक शरीर में विराजमान वे भगवान आप्त अरहन्त ही विमल हैं। अन्य जो काम, क्रोध आदि मलों सहित हैं वे विमल नहीं हैं।

जिन्हें कुछ करना बाकी नहीं रहा, जो शुद्ध अनन्त ज्ञानादिमय अपने स्वरूप को प्राप्त होकर व्याधि-उपाधि रहित कृत-कृत्य हुए वे भगवान आप्त ही **कृती** हैं; अन्य तो जन्म-मरण आदि सहित; चक्र, आयुध, त्रिशूल, गदा आदि सहित; कनक-कामिनी में आसक्त; भोजन-पान, काम-भोगादिक की लालसा सहित; शत्रुओं को मारने की आकुलता सहित हैं वे कृती नहीं हैं।

जो इंद्रियादि परद्रव्यों की सहायता रहित, युगपत् समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को, क्रमरहित, प्रत्यक्ष जानते हैं, वे भगवान आप्त ही सर्वज्ञ हैं; अन्य जो इंद्रियाधीन-ज्ञान सहित हैं, वे सर्वज्ञ नहीं हैं।

जिनका जीव, द्रव्य की अपेक्षा तथा ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य गुणों की अपेक्षा आदि, मध्य, अन्त नहीं है इसलिये **अनादिमध्यान्त** हैं। दूसरे अर्थ में - भगवान आप्त अनादिकाल से हैं और कभी अन्त को प्राप्त नहीं होंगे इसलिये अनादिमध्यान्त हैं। जिनके मत में आप्त का जन्म-मरण, जीव का नवीन उत्पन्न होना तथा जीव के ज्ञानादि गुण नवीन उत्पन्न होना मानने हैं, उनमें अनादिमध्यान्त नहीं बनता है।

जिनके वचन व काय की प्रवृत्ति समस्त जीवों के हित के लिये ही होती है, वे भगवान् आप्त **सार्व** कहलाते हैं। अन्य जो काम, क्रोध, संग्राम आदि हिंसा प्रधान समस्त पापों द्वारा स्वपर के अहित में प्रवर्तन करते हैं, कराते हैं, उनको ऐसा नाम ही संभव नहीं है।

इस प्रकार आठ विशेषण सहित सार्थक नामों द्वारा **शास्ता** जो आप्त उसका असाधारण स्वरूप कहा है। 'शास्तीति शास्ता' इसका निरुक्ति अर्थ ऐसा है -- जो निकट भव्य शिष्य हैं उन्हें जो हित की शिक्षा देवे वह शास्ता कहलाता है।

+ आगम का लक्षण -

## अनात्मार्थं विना रागैः, शास्ता शास्ति सतो हितम् ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शा-न्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

**अन्वयार्थ :** [शास्ता] आप्त भगवान् [विना रागैः] राग के बिना [अनात्मार्थ] अपना प्रयोजन न होने पर भी [सतो] समीचीन-भव्य जीवों को [हितं] हित का उपदेश देते हैं क्योंकि [शिल्पी] बजाने वाले के [कर] हाथ के [स्पर्शान्] स्पर्श से शब्द करता हुआ [मुरजः] मृदंग [किं] क्या [अपेक्षते] अपेक्षा रखता है ? कुछ भी नहीं ॥८॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

सम्यग्दर्शनविषयभूताप्तस्वरूपमभिधायेदानीन्तद्विषयभूतागमस्वरूपमभिधातुमाह --

**शास्ता** आप्तः । **शास्ति** शिक्षयति । कान् ? **सतः** अविपर्ययस्तादित्वेन समीचीनान्भव्यान् । किं शास्ति ? **हितं** स्वर्गादितत्साधनं च सम्यग्दर्शनादिकम् । किमात्मनः किञ्चित्फलमभिलषन्नसौशास्तीत्याह -- **अनात्मार्थं** न विद्यते आत्मनोऽर्थः प्रयोजनं यस्मिन्शासनकर्मणि परोपकारमेवासौ तान्शास्ति । **परोपकाराय सतां हि चेष्टितम्** इत्यभिधानात् । स तथा शास्तीत्येतत्कुतोऽवगतमित्याह **विनारागैः** यतो लाभ-पूजा-ख्यात्यभिलाषालक्षणपरैरगैर्विनाशास्तिततोऽनात्मार्थं शास्तीत्यवसीयते । अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थमाह- ध्वनन्नित्यादि । शिल्पिकरस्पर्शाद्वादककराभिधातान्मुरजोनदतो ध्वनन्किमात्मार्थङ्किञ्चिदपेक्षते ? नैवापेक्षते । अयमर्थः :- यथामुरजः परोपकारार्थमेवविचित्राशब्दान्करोतितथासर्वज्ञः शास्त्रप्रणयनमिति ॥८॥

**आर्यिका-आदिमति :**

अरहन्त भगवान् विपर्ययादि दोषों से रहित श्रेष्ठ भव्य जीवों को दिव्यध्वनि के द्वारा स्वर्गादिक तथा उनके साधनरूप सम्यग्दर्शनादिक का उपदेश देते हैं, किन्तु वे अपने लिए किञ्चित् भी फलाभिलाषा-रूप राग नहीं रखते हैं तथा उस उपदेश में उनका स्वयं का भी कोई प्रयोजन नहीं रहता । मात्र परोपकार के लिए उनकी दिव्य वाणी की प्रवृत्ति होती है । कहा भी है -- 'परोपकाराय सतां हि चेष्टितम्' अर्थात् सत् पुरुषों की चेष्टा परोपकार के लिए ही होती है । राग तथा निजी प्रयोजन के बिना आप्त कैसे उपदेश देते हैं ? इसका दृष्टान्त द्वारा समर्थन करते हुए कहते हैं कि जैसे शिल्पी के हाथ के स्पर्श से बजनेवाला, मनुष्य के हाथ की चेष्टा से शब्द करता हुआ मृदंग क्या कुछ चाहता है? कुछ नहीं चाहता । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मृदंग परोपकार के लिए अनेक प्रकार के शब्द करता है, उसी प्रकार आप्त भगवान् भी परोपकार के लिए ही दिव्यध्वनि के माध्यम से उपदेश देते हैं ।

+ शास्त्र का लक्षण -

## आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यम्-दृष्टेष्ट-विरोधकम् तत्त्वोपदेश-कृत्सार्व-शास्त्रं-कापथ-घट्टनम् ॥९॥

**अन्वयार्थ :** [शास्त्रं] वह शास्त्र सर्वप्रथम [आप्तोपज्ञम्] आप्त भगवान् के द्वारा कहा हुआ है, [अनुल्लङ्घ्यम्] अन्य वादियों के द्वारा जो अखण्डनीय है, [अदृष्टेष्टविरोधकम्] प्रत्यक्ष तथा अनुमानादि के विरोध से रहित है, [तत्त्वोपदेशकृत्] तत्त्वों का उपदेश करने वाला है, [सार्व] सबका हितकारी है और [कापथघट्टनम्] मिथ्यामार्ग का निराकरण करनेवाला है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

कीदृशान्तच्छास्त्रयत्नेनप्रणीतमित्याह --

**आप्तोपज्ञं** सर्वज्ञस्य प्रथमोक्तिः । **अनुल्लङ्घ्यं** यस्मात्तदाप्तोपज्ञं तस्मादिन्द्रादीनामनुल्लङ्घ्यमादेयं । कस्मात् ? तदुपज्ञत्वेन तेषामनुल्लङ्घ्यं यतः । **अदृष्टेष्टविरोधकं** दृष्टं प्रत्यक्षं, इष्टमनुमानादि, न विद्यते दृष्टेष्टाभ्यां विरोधो यस्य । तथाविधमपि कुतस्तत्सिद्धमित्याह- **तत्त्वोपदेशकृत्** यतस्तत्त्वस्य च सप्तविधस्य जीवादिवस्तुनो यथावस्थितस्वरूपस्य वा

उपदेशकृत्यथावत्प्रतिदेशकं ततो दृष्टेष्टविरोधकं ? एवंविधमपिकस्मादवगतम् ? यतः **सार्व** सर्वेभ्यो हितं सार्वमुच्यते तत्कथं यथावत्तत्स्वरूपप्ररूपणमन्तरेणघटते । एतदप्यस्य कुतो निश्चितमित्याह -- **कापथघट्टनं** यतः कापथस्य कुत्सितमार्गस्य मिथ्यादर्शनादर्घट्टननिराकारकं सर्वज्ञप्रणीतं शास्त्रं ततस्तत्सार्वमिति ॥९॥

### आर्थिका-आदिमति :

'आप्तोपज्ञं' वह शास्त्र सर्वप्रथम आप्त के द्वारा जाना गया है एवं आप्त के द्वारा ही कहा गया है । इसलिए इन्द्रादिक देव उसका उल्लंघन नहीं करते, किन्तु श्रद्धा से उसे ग्रहण करते हैं । कुछ प्रतियों में 'तस्मादितरवादिनामनुल्लंघ्य' यह पाठ भी है । इसके अनुसार अन्य वादियों के द्वारा उल्लंघन करने योग्य नहीं है । 'अदृष्टेष्टविरोधकम्' इष्ट का अर्थ प्रत्यक्ष तथा अदृष्ट का अर्थ अनुमानादि परोक्ष प्रमाणों को ग्रहण किया है । (यहां अर्थ सही प्रतीत नहीं हो रहा है । -शिखर) आप्त के द्वारा प्रणीत शास्त्र इन प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणों के विरोध से रहित है । तथा जीव अजीवादि सात प्रकार के तत्त्वों का उपदेश करने वाला है । अथवा अपने-अपने यथार्थ स्वरूप से सहित छह द्रव्यों का उपदेश करने वाला है । 'सर्वेभ्यो हितं सार्व' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सब जीवों का हित करने वाला है, यह यथावत् स्वरूप के बिना घटित नहीं हो सकता । और कुत्सित-खोटा मार्ग जो कि मिथ्यादर्शनादिक हैं उनका निराकरण करने वाला है । शास्त्र की ये सभी विशेषताएँ आप्तप्रणीत होने पर ही सिद्ध हो सकती हैं ॥९॥

+ गुरु का लक्षण -

## विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

**अन्वयार्थ :** [विषयाशावशातीतः] जो पंचेंद्रिय के विषयों की आशा से रहित हैं, [निरारम्भः] सम्पूर्ण आरम्भ और [अपरिग्रहः] परिग्रह से रहित निग्रन्थ दिगम्बर हैं, [ज्ञानध्यानतपोरक्तः] सदा ही ज्ञान, ध्यान और तप में अनुरागी हैं [सः] वे ही [तपस्वी] तपस्वी साधु [प्रशस्यते] प्रशंसनीय / सच्चे गुरु हैं ॥१०॥

### प्रभाचन्द्राचार्य :

अथेदानींश्रद्धानगोचरस्यतभोभूतः स्वरूपमप्ररूपयन्नाह --

विषयेषुस्रग्वनितादिष्वाशाआकाङ्क्षातस्यावशमधीनता । तदतीतोविषयाकाङ्क्षारहितः । **निरारम्भः** परित्यक्तकृष्यादिव्यापारः । **अपरिग्रहो** बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहितः । **ज्ञानध्यानतपोरक्त** ज्ञानध्यानतपांस्येवरत्नानियस्य एतद्गुणविशिष्टेयः स तपस्वी गुरुः **प्रशस्यते** श्लाघ्यते ॥१०॥

### आर्थिका-आदिमति :

जिनके स्पर्शनादिक पञ्चेन्द्रिय के विषयभूत माला तथा स्त्री आदि विषयों की आकाङ्क्षा सम्बन्धी अधीनता नष्ट हो गई है अर्थात् जो पूर्णरूपेण इन्द्रिय-विजयी हैं। तथा जिन्होंने खेती आदि व्यापार का परित्याग कर दिया है और जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित हैं, तथा ज्ञान ध्यान और तप ही जिनके श्रेष्ठ रत्न हैं, उन्हीं में जो सदैव लीन रहते हैं वे तपस्वी-गुरु प्रशंसनीय होते हैं ।

### पं-सदासुखदास :

जो रसना इंद्रिय का लम्पटी हो, अनेक प्रकार के रसों के स्वाद की इच्छा के वशीभूत हो रहा हो, कर्ण-इन्द्रिय के वशीभूत हो, अपना यश-प्रशंसा सुनने का इच्छुक हो, अभिमानी हो; नेत्रों द्वारा सुन्दर रूप, महल, मन्दिर, बाग, वन, ग्राम, आभूषण वस्त्रादि देखने का इच्छुक हो; कोमल-शय्या--कोमल उच्चासन के ऊपर सोने-बैठने का इच्छुक हो, सुगन्ध आदि ग्रहण करने का इच्छुक हो, विषयों का लम्पटी हो सो ऐसा गुरु दूसरों को विषयों से छुड़ाकर वीतराग मार्ग में नहीं लगा सकता; वह तो सराग मार्ग में ही लगाकर संसार समुद्र में डुबो देगा ।

इसलिये जो विषयों की आशा के वशीभूत नहीं ऐसा गुरु ही आराधन, वंदन योग्य है । जिसे विषयों में अनुराग हो वह तो आत्मज्ञान रहित बहिरात्मा है, गुरु कैसे होगा ? जिसके त्रस-स्थावर जीवों के धात का आरंभ होता हो, उसे पाप का भय नहीं है, पापी के गुरुपना कैसे सम्भव है ?

जो चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह तथा दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह सहित हो, वह गुरु कैसे हो सकता है ? परिग्रही तो स्वयं ही संसार में फंस रहा है, वह अन्य जीवों का उद्धार करनेवाला गुरु कैसे होगा ?

+ निःशंकित अंग -

## इदमेवे-दृशमेव, तत्त्वं नान्यत्र चान्यथा इत्यकम्पायसाम्भोवत्, सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥११॥

**अन्वयार्थ :** [तत्त्वं] तत्त्व [इदम्] यह [एव] ही है, [ईदृशम्] ऐसा [एव] ही है, [अन्यत्] अन्य [न] नहीं है और [अन्यथा] अन्य प्रकार भी [न] नहीं है [इति] इस तरह आप्त, आगम, गुरु के विषय में [आयसाम्भोवत्] तलवार की धार पर रखे हुए जल के सदृश [अकम्पा] अचलित [रुचिः] श्रद्धान करना और [सन्मार्गे] मोक्ष—मार्ग में संशय रहित रुचि का होना [असंशया] निःशंकित अंग है ॥११॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानीमुक्तलक्षणदेवागमगुरुविषयस्यसम्यग्दर्शनस्यनिःशङ्कितत्वगुणस्वरूपम्प्ररूपयन्नाह --

**रुचिः** सम्यग्दर्शनम्। **असंज्ञया** (यहां असंशया शब्द होना चाहिये ।) निशङ्कितत्वधर्मोपेता । किंविशिष्टा सती ? **अकम्पा** निश्चला । किंवत् ? **आयसाम्भोवत्** अयसि भवमायसं तच्च तदम्भश्च पानीयं तदिव तद्वत्खड्गादिगतपानीयवदित्यर्थः क साकम्पेत्याह -- **सन्मार्गे** संसारसमुद्रोत्तरणार्थं सद्भिर्मृग्यते अन्वेष्यते इति सन्मार्गम् आप्तागमगुरुप्रवाहस्तस्मिन्केनोल्लेखेनेत्याह- **इदमेवाप्तागमतपस्विलक्षणं तत्त्वम्** । **ईदृशमेव** उक्तप्रकारेणैव लक्षणेन लक्षितम् । **नान्यत्** एतस्मान्निर्गन्तं न । **न चान्यथा** उक्ततल्लक्षणादन्यथा परपरिकल्पितलक्षणेन लक्षितं, **न च** नैव तद्घटते इत्येवमुल्लेखेन ॥११॥

**आर्यिका-आदिमति :**

रुचि का अर्थ सम्यग्दर्शन अथवा श्रद्धा है । श्रद्धा, रुचि, स्पर्श, प्रतीति ये सब सम्यग्दर्शन के नामान्तर हैं। जिस प्रकार तलवार आदि पर चढ़ाया गया लोहे का पानी-धार निश्चल-अकम्प होती है, उसी प्रकार सन्मार्ग में 'संसारसमुद्रोत्तरणार्थं सद्भिर्मृग्यते अन्वेष्यते इति सन्मार्गः आप्तागमगुरुप्रवाहः तस्मिन्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार संसाररूप समुद्र के पार होने के लिए सत्पुरुषों के द्वारा जिसकी खोज की जाय वह सन्मार्ग कहलाता है, इस तरह सन्मार्ग का अर्थ आप्त-आगम और गुरु परम्परा का प्रवाह है एवं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य है । उस सन्मार्ग के विषय में आप्त, आगम, तपस्वी अथवा जीवादि पदार्थों का स्वरूप यही है, ऐसा ही है, अन्य नहीं है, अन्य प्रकार भी नहीं है ऐसी जो निश्चल-अकम्प प्रतीति है, श्रद्धा है, वह सम्यग्दर्शन का निःशङ्कितत्व अंग कहलाता है। उक्त लक्षण से अन्य परवादियों के द्वारा कल्पित लक्षण सम्यक् नहीं है क्योंकि अन्य वादियों के द्वारा माने गये आप्त-आगम-गुरु में समीचीन लक्षण नहीं पाये जाते हैं ।

+ निःकाक्षित अंग -

## कर्मपरवशे सान्ते, दुःखैरन्तरितोदये पापबीजे सुखेऽनास्था, श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥१२॥

**अन्वयार्थ :** [कर्मपरवशे] कर्मों के आधीन, [सान्ते] अन्त-सहित / नश्वर, [दुःखैः] दुःखों से [अंतरितोदये] बाधित, [च] और [पापबीजे] पाप के कारण ऐसे [सुखे] सांसारिक-सुखों में [अनास्था] अरुचिपूर्ण [श्रद्धानं] श्रद्धान को [अनाकाङ्क्षणा] निःकाक्षित अंग [स्मृता] कहते हैं ॥१२॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानींनिष्काङ्क्षितत्वगुणसम्यग्दर्शनेदर्शयन्नाह --

**अनाकाङ्क्षणास्मृता** निष्काङ्क्षितत्वंनिश्चितम् । कासौ ? **श्रद्धा** । कथम्भूता ? **अनास्था** नविद्यतेआस्थाशाश्वतबुद्धिर्यस्याम् । अथवानआस्थाअनास्थात । स्यान्तयावाश्रद्धाअनास्थाश्रद्धासाचाप्यनाकाङ्क्षणेतिस्मृता । कअनास्थाऽरुचिः ? **सुखे** वैषयिके । कथम्भूते ? **कर्मपरवशे** कर्मायत्ते । तथा **सान्ते** अन्तेनविनाशेनसहवर्तमानेतथा **दुःखैरन्तरितोदये** दुःखैर्मानसशारीरैरन्तरितोदयः प्रादुर्भावोयस्य । तथा **पापबीजे** पापोत्पत्तिकारणे ॥१२॥

**आर्यिका-आदिमति :**

अनास्था-श्रद्धा की व्याख्या दो प्रकार से की है। **न विद्यते आस्था शाश्वतबुद्धिर्यस्यां सा अनास्था** जिसमें नित्यपने की बुद्धि नहीं है इस प्रकार अनास्था को श्रद्धा का विशेषण बनाया है । इस पक्ष में अनास्था और श्रद्धा इन दोनों पदों को समास रहित



ग्रहण किया है। दूसरे पक्ष में न आस्था अनास्था तस्यां वा श्रद्धा अनास्था श्रद्धा अरुचिरित्यर्थः अरुचि में अथवा अरुचि के द्वारा होने वाली श्रद्धा। पञ्चेन्द्रिय विषय सम्बन्धी सुख कर्मों के अधीन हैं, विनाश से सहित हैं, इनका उदय मानसिक तथा शारीरिक दुःखों से मिला हुआ है तथा पाप का कारण है, अशुभ कर्मों का बन्ध कराने में निमित्त है, ऐसे सुख में शाश्वत बुद्धि से रहित श्रद्धा करना वह सम्यग्दर्शन का निःकाङ्क्षितत्व अङ्ग कहलाता है।

+ निर्विचिकित्सा अंग -

## स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते निर्जुगुप्सा गुणप्रीति-मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥

अन्वयार्थः [स्वभावतः] स्वभाव से [अशुचौ] अपवित्र किन्तु [रत्नत्रय पवित्रिते] रत्नत्रय से पवित्र [काये] शरीर में [निर्जुगुप्सा] ग्लानि रहित [गुणप्रीतिः] गुणों से प्रेम करना निर्विचिकित्सा अंग [मता] माना गया है ॥१३॥

प्रभाचन्द्राचार्यः

सम्प्रतिनिर्विचिकित्सागुणसम्यग्दर्शनस्यप्ररूपयन्नाह --

निर्विचिकित्सतामता अभ्युपगता। कासौ ? निर्जुगुप्सा विचिकित्साभावः। क ? काये। किंविशिष्टे ? स्वभावतोऽशुचौ स्वरूपेणापवित्रिते। इत्थम्भूतेऽपिकाये रत्नत्रयपवित्रिते रत्नत्रयेणपवित्रितेपूज्यतांनीते। कुतस्तथाभूतेनिर्जुगुप्साभवतीत्याह - गुणप्रीतिः यतोऽगुणेन-रत्नत्रयाधारभूत-मुक्तिसाधकत्वलक्षणेन-प्रीतिर्मनुष्य-शरीरमेवेदं-मोक्षसाधकंनान्यद्देवादि-शरीर-मित्यनुरागः। ततस्तत्रनिर्जुगुप्सेति ॥१३॥

आर्यिका-आदिमतिः

निर्गता विचिकित्सा यस्मात् सः निर्विचिकित्सः, तस्य भावो निर्विचिकित्सा विचिकित्सा ग्लानि को कहते हैं। जो ग्लानि से रहित है वह निर्विचिकित्स है। उसका जो भाव है, वह निर्विचिकित्सता है। मानव का यह शरीर स्वभाव से ही अपवित्र है। क्योंकि माता-पिता के रज-वीर्य-रूप अशुद्ध धातु से निर्मित होने के कारण अपवित्र है। किन्तु यह अपवित्र शरीर भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र-रूप रत्नत्रय के द्वारा पवित्रता, पूज्यता को प्राप्त कराया जाता है। ऐसे शरीर में रत्नत्रय-रूप गुण के कारण प्रीति होती है। क्योंकि यह मनुष्य का शरीर ही रत्नत्रय की आधार-भूत मुक्ति का साधक बनता है। अन्य देवतादिक का शरीर मोक्ष का साधक नहीं हो सकता। इस विशिष्ट गुण के कारण गुणों में जो ग्लानि रहित प्रीति होती है, वह निर्विचिकित्सा नामक अंग है।

+ अमूढदृष्टि अंग -

## कापथे पथि दुःखानां, कापथस्थेऽपि सम्मतिः असम्पृक्ति-रनुत्कीर्ति-रमूढा-दृष्टिरुच्यते ॥१४॥

अन्वयार्थः [दुःखानां] दुःखों के [पथि] मार्ग स्वरूप [कापथे] मिथ्या-दर्शनादि-रूप कुमार्ग में [कापथस्थेऽपि] और कुमार्ग में स्थित जीव में [असम्मतिः] मानसिक सम्मति से रहित [अनुत्कीर्तिः] वाचनिक प्रशंसा से रहित और [असम्पृक्तिः] शारीरिक संपर्क से रहित है, वह (सम्यग्दृष्टि का) [अमूढादृष्टिः] अमूढदृष्टि अंग [उच्यते] कहा जाता है ॥१४॥

प्रभाचन्द्राचार्यः

अधुनासद्दर्शनस्यामूढदृष्टित्वगुणम्प्रकाशयन्नाह --

अमूढादृष्टिरपमूढत्वगुणविशिष्टसम्यग्दर्शनम्। का ? असम्मतिः नविद्यतेमनसासम्मतिः श्रेयः साधनतयासम्मननंयत्रदृष्टौ। क ? कापथे कुत्सितमार्गेमिथ्यादर्शनादौ। कथम्भूते ? पथि मार्गे। केषां ? दुःखानाम्। नकेवलन्तत्रैवासम्मतिरपितु कापथस्थेऽपि मिथ्यादर्शनाद्याधारेऽपिजीवे तथा असम्पृक्तिः नविद्यतेसम्पृक्तिः कायेननखच्छोटिकादिनाअङ्गुलिचालनेनशिरोधूननेनवाप्रशंसायत्र अनुत्कीर्तिः नविद्यतेउत्कीर्तिरुत्कीर्तनंवाचासंस्तवनंयत्र। मनोवाक्कायैर्मिथ्यादर्शनादीनान्तद्वताञ्चाप्रशंसाकरणमूढसम्यग्दर्शनमित्यर्थः॥ १४॥

आर्यिका-आदिमतिः

**कुत्सितः पन्था कापथः तस्मिन् कापथे** कापथ का अर्थ खोटा मार्ग-कुमार्ग होता है। मिथ्यादर्शनादि संसार-भ्रमण के मार्ग होने से कुत्सितमार्ग कहलाते हैं। ऐसे कुमार्ग में अथवा कुमार्ग में स्थित मिथ्यादर्शनादि के आधार-भूत जीव के विषय में मन से ऐसी सम्मति नहीं करना कि यह कल्याण का मार्ग है। तथा शरीर से / नखों से चुटकी बजाकर, अङ्गुलियाँ चलाकर अथवा मस्तक हिलाकर उसकी प्रशंसा नहीं करना, तथा वचन से भी उसका संस्तवन नहीं करना, इस प्रकार मन-वचन-काय के द्वारा मिथ्यादर्शनादि की और उसके धारण करने वाले की प्रशंसा नहीं करना सम्यग्दर्शन का अमूढदृष्टि गुण है।

+ उपगूहन अंग -

## स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य, बालाशक्तजनाश्रयाम् वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति, तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥१५॥

**अन्वयार्थ :** [स्वयं शुद्धस्य] स्वभाव से पवित्र [मार्गस्य] रत्नत्रय रूप मार्ग की [बालाशक्तजनाश्रयाम्] अज्ञानी तथा असमर्थ जनों के आश्रय से होने वाली [वाच्यतां] निन्दा को [यत्] जो [प्रमार्जन्ति] परमार्जित / दूर करते हैं, [तत्] उनके उपगूहन अंग [वदन्ति] कहते हैं ॥१५॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथोपगूहनगुणन्तस्यप्रतिपादयन्नाह-

तदुपगूहनंवदन्तियत्प्रमार्जन्तिनिराकुर्वन्तिप्रच्छादयन्तीत्यर्थः । काम् ? **वाच्यतान्दोषम्** । कस्य ? **मार्गस्य** रत्नत्रयलक्षणस्य । किंविशिष्टस्य ? **स्वयंशुद्धस्य** स्वभावतोनिर्मलस्य । कथम्भूताम् ? **बालाशक्तजनाश्रयां** बालोऽज्ञः अशक्तोव्रताद्यनुष्ठानेऽसमर्थः सचासौजनश्चसआश्रयोयस्याः । अयमर्थः- हिताहितविवेकविकलंव्रताद्यनुष्ठानेऽसमर्थजनमाश्रित्यागतस्यरत्नत्रयेतद्वतिवादोषस्ययत्प्रच्छादनन्तदुपगूहनमिति ॥१५॥

**आर्यिका-आदिमति :**

रत्नत्रयरूप मोक्ष का मार्ग स्वभाव से ही निर्मल-पवित्र है। परन्तु कदाचित् अज्ञानी अथवा व्रताचरण करने में असमर्थ मनुष्यों के द्वारा यदि कोई दोष उत्पन्न होता है या अपवाद होता है तो सम्यग्दृष्टि उसका निराकरण करते हैं, उसके दोषों को छिपाते हैं, प्रकट नहीं करते। उनके इस प्रकार के व्यवहार को उपगूहन अङ्ग कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जो हित और अहित के विवेक से रहित है ऐसे अज्ञानी जीव को बाल कहते हैं तथा बाल्यावस्था, वृद्धावस्था या रुग्णतावश निर्दोष व्रत-अनुष्ठानादि के परिपालन में असमर्थ है उसे अशक्त कहते हैं। ऐसे बाल और अशक्त मनुष्यों के आश्रय से रत्नत्रय और उसके धारक पुरुषों में उत्पन्न दोषों का प्रच्छादन करना सम्यग्दृष्टि का परम कर्तव्य है।

+ स्थितिकरण अंग -

## दर्शनाच्चरणाद्वापि, चलतां धर्मवत्सलैः प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः, स्थितिकरणमुच्यते ॥१६॥

**अन्वयार्थ :** [धर्मवत्सलैः] धर्म-स्नेही जनों के द्वारा [दर्शनात्] सम्यग्दर्शन से [वा] अथवा सम्यक् चारित्र से [अपि] भी [चलताम्] विचलित होते हुए पुरुषों का [प्रत्यवस्थापनम्] फिर से पहले की तरह स्थित किया जाना [प्राज्ञैः] विद्वानों के द्वारा [स्थितिकरणम्] स्थितिकरण अंग [उच्यते] कहा जाता है ॥१६॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथस्थितिकरणगुणंसम्यग्दर्शनस्यदर्शयन्नाह --

**स्थितिकरणम्** अस्थितस्यदर्शनादेश्चलितस्यस्थितिकरणंस्थितिकरणमुच्यते । कैः ? प्राज्ञैस्तद्विचक्षणैः । किन्तत् ? **प्रत्यवस्थापनं** दर्शनादौपूर्ववत्पुनरप्यवस्थापनम् । केषाम् ? **चलताम्** । कस्मात् ? दर्शनाच्चरणाद्वापि । कैस्तेषाम्प्रत्यवस्थापनम् ? **धर्मवत्सलैः** धर्मवात्सल्ययुक्तैः ॥१६॥

**आर्यिका-आदिमति :**

स्थितिकरण में जो 'च्चि' प्रत्यय हुआ है वह 'अभूततद्भाव' अर्थ में हुआ है। इसलिए 'अस्थितस्य दर्शनादेश्चलितस्य स्थितिकरणं स्थितिकरणं' अर्थात् दर्शनादि से चलायमान होते हुए पुरुष को फिर से उसी व्रत में स्थित कर देना स्थितिकरण अङ्ग है। कोई जीव बाह्य आचरण का यथायोग्य पालन करता हुआ भी श्रद्धा से भ्रष्ट हो जाता है तथा कोई दृढ़ श्रद्धानी होता

हुआ भी शारीरिक अशक्तता या प्रमादादि के कारण बाह्य आचरण से भ्रष्ट है । कोई जीव तीव्र पाप के कारण श्रद्धान-आचरण दोनों से भ्रष्ट है । धर्म में प्रेम रखने वाले जनों को चाहिए कि वे उन्हें फिर से उसी व्रतादि में स्थित करें । यह सम्यग्दर्शन का स्थितीकरण अंग है ।

+ वात्सल्य अंग -

## स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव-सनाथापेतकैतवा प्रतिपत्ति-यथायोग्यं, वात्सल्यमभिलष्यते ॥१७॥

**अन्वयार्थ :** [स्वयूथ्यान्प्रति] सहधर्मिजनों के प्रति जो हमेशा ही [अपेतकैतवा] छल कपट रहित होकर [सद्भाव-सनाथा] सद्भावना रखते हुए प्रीति करना और [यथायोग्यं] यथा योग्य उनके प्रति [प्रतिपत्तिः] विनय भक्ति आदि भी करना [वात्सल्यम्] वात्सल्य अंग [अभिलष्यते] कहा जाता है ॥१७॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथवात्सल्यगुणस्वरूपन्दर्शनेप्रकटयन्नाह-

वात्सल्यंसधर्मिणिस्नेहः । **अभिलष्यते** प्रतिपाद्यते । कासौ ? **प्रतिपत्तिः** पूजाप्रशंसादिरूपा । कथम् ? **यथायोग्यं** योग्यानतिक्रमेण-अञ्जलिकरणाभिमुख-गमन-प्रशंसा-वचनोपकरण-सम्प्रदानादि-लक्षणा । कान्प्रति ? **स्वयूथ्यान्** जैनान्प्रति । कथम्भूता ? **सद्भावसनाथा** सद्भावेनावक्रतया-सहिताचित्त-पूर्विकेत्यर्थः । अतएव **अपेतकैतवा** अपेतविनष्टङ्कैतवंमायायस्याः ॥१७॥

**आर्यिका-आदिमति :**

**स्वस्य यूथः स्वयूथः तस्मिन् भवाः स्वयूथ्यास्तान्** अपने सहधर्मी बन्धुओं के समूह में रहने वालों को स्वयूथ्य कहते हैं । इन सहधर्मियों के प्रति सद्भावना सहित अर्थात् सरलभाव से मायाचार रहित, यथायोग्य - हाथ-जोड़ना, सम्मुख-जाना, प्रशंसा के वचन कहना तथा योग्य उपकरण आदि देकर जो आदर सत्कार किया जाता है, वह वात्सल्य-गुण कहलाता है । **वत्सलस्य भावः कर्म वा वात्सल्यम्** वात्सल्य का अर्थ सहधर्मी भाइयों के प्रति धार्मिक स्नेह का होना ।

+ प्रभावना अंग -

## अज्ञानतिमिरव्याप्ति-मपाकृत्य यथायथम् जिनशासनमाहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

**अन्वयार्थ :** [अज्ञान] अज्ञानरूपी [तिमिर] अंधकार के [व्याप्तिम्] विस्तार को [अपाकृत्य] दूर कर [यथायथम्] अपनी शक्ति के अनुसार [जिनशासनमाहात्म्य] जिनशासन के माहात्म्य का [प्रकाशः] प्रकाश फैलाना [प्रभावना] प्रभावना-अंग [स्यात्] है ॥१८॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथप्रभावनागुणस्वरूपन्दर्शनस्यनिरूपयन्नाह-

**प्रभावना** स्यात् । कासौ ? **जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः** । जिनशासनस्य-माहात्म्य-प्रकाशस्तुतपोज्ञानाद्यतिशयप्रकटीकरणम् । कथम् ? **यथायथं** स्रपन-दान-पूजा-विधान-तपोमन्त्र-तन्त्रादिविषये-आत्मशक्त्यनतिक्रमेण । किङ्कृत्वा ? **अपाकृत्य** निराकृत्य । काम् ? **अज्ञानतिमिरव्याप्तिं** जिनमतात्परेषांयत्प्रपनदानादिविषयेऽज्ञानमेवतिमिरमन्धकारान्तस्यव्याप्तिम्रसरम् ॥१८॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जैनशासन के माहात्म्य का प्रकाशन एवं उसके तप-ज्ञानादि का अतिशय प्रकट करना चाहिये तथा जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों में अभिषेक, दान, पूजा, विधान, तप, मन्त्र-तन्त्रादि के विषय में अपनी आत्मशक्ति को न छिपाकर इनके विषय में जो अज्ञानरूप अन्धकार फैल रहा है, उसको दूर करते हुए तप-ज्ञानादि का अतिशय प्रकट करना प्रभावना अङ्ग कहलाता है ।



**तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतिः स्मृता  
उदायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥१९॥  
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः  
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गताः ॥२०॥**

**अन्वयार्थ :** [तावत्] क्रम से [प्रथमे] प्रथम अङ्ग में [अञ्जनचौरः] अञ्जन चोर, [ततः] तदनन्तर द्वितीय अंग में [अनन्तमतीः] अनन्तमती [स्मृता] स्मृत है, [तृतीये] तृतीय अङ्ग में [उदायनः] उदायन नाम का राजा, [तुरीये] चतुर्थ अङ्ग में रेवती रानी [मता] मानी गई है । तदनन्तर पञ्चम अङ्ग में जिनेन्द्रभक्त सेठ, उसके बाद छठे अङ्ग में वारिषेण राजकुमार, उसके बाद सप्तम और अष्टम अङ्ग में विष्णुकुमार मुनि और वज्रकुमार मुनि [लक्ष्यताम्] प्रसिद्धि को [गताः] प्राप्त हुए हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानीमुक्तनिःशङ्कितत्वाद्यष्टगुणानां मध्ये कः केन गुणेन प्रधानतया प्रकटित इति प्रदर्शयन् श्लोकद्वयमाह --

क्रमवाची, सम्यग्दर्शनस्य हि निःशङ्कितत्वादीन्यष्टाङ्गान्युक्तानि तेषु मध्ये प्रथमे निःशङ्कितत्वेऽङ्गस्वरूपे तावल्लक्ष्यतां दृष्टान्ततां गतोऽञ्जनचौरः स्मृतो निश्चितः । द्वितीयेऽङ्गे निष्काङ्कितत्वे ततोऽञ्जनचोरादन्यानन्तमतिर्लक्ष्यतां गता मता । तृतीयेऽङ्गे निर्विचिकित्सत्वे उदायनो लक्ष्यतां गतो मतः । तुरीये चतुर्थेऽङ्गे अमूढदृष्टित्वे रेवती लक्ष्यतां गता मता । ततस्तेभ्यश्चतुर्थोऽन्यो जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठी उपगूहने लक्ष्यतां गतो मतः । ततो जिनेन्द्रभक्तात् परो वारिषेणः स्थितीकरणे लक्ष्यतां गतो मतः । विष्णुश्च विष्णुकुमारो व्रजनामा च वज्रकुमारः शेषयोर्वात्सल्य-प्रभावनयोर्लक्ष्यतां गतौ मतौ । गता इति बहुवचननिर्देशो दृष्टान्तभूतोक्तात्मव्यक्तिबहुत्वापेक्षया ॥१९-२०॥

तत्र निःशङ्कितत्वेऽञ्जनचोरो दृष्टान्ततां गतोऽस्य कथा-

यथा- धन्वन्तरविश्वलोमौ सुकृत कर्मवशादमितप्रभविद्युत्प्रभदेवौ संजातौ चान्योन्यस्य धर्मपरीक्षणार्थमत्रायातौ । ततो यमदग्निस्ताभ्यां तपसश्चालितः । मगधदेशे राजगृहनगरे जिनदत्तश्रेष्ठी कृतोपवासः कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ श्मशाने कायोत्सर्गेण स्थितो दृष्टः । ततोऽमितप्रभदेवेनोक्तं दूरे तिष्ठन्तु मदीया मुनयोऽमुं गृहस्थं ध्यानाच्चालयेति, ततो विद्युत्प्रभदेवेनानेकधा कृतोपसर्गोपि न चलितो ध्यानात् । ततः प्रभाते मायामुपसंहृत्य प्रशस्य चाकाशगामिनी विद्या दत्ता तस्मै, कथितं च तवेयं सिद्धाऽन्यस्य च पञ्चनमस्कारार्चनारानुविधिना सेत्स्यतीति । सोमदत्तपुष्पवटुकेन चैकदा जिनदत्तश्रेष्ठी पृष्ठः- क्व भवान् प्रातरेवोत्थाय व्रजतीति । तेनोक्तमकृत्रिमचैत्यालयवन्दनाभक्तिं कर्तुं व्रजामि । ममेत्थं विद्यालाभः संजात इति कथिते तेनोक्तं मम विद्यां देहि येन त्वया सह पुष्पादिकं गृहीत्वा वन्दनाभक्तिं करोमीति । ततः श्रेष्ठिना तस्योपदेशो दत्तः । तेन च कृष्णचतुर्दश्यां श्मशाने वटवृक्षपूर्वशाखायामष्टोत्तरशतपादं दर्भशिक्यं बन्धयित्वा तस्य तले तीक्ष्णसर्वशस्त्राण्यध्वमुखानि धृत्वा गन्धपुष्पादिकं दत्वा शिक्यमध्ये प्रविश्य षष्ठोपवासेन पञ्चनमस्कारानुच्चार्य छुरिकयैकैकं पादं छिन्दताऽधो जाज्वल्यमानप्रहरणसमूहमालोक्य भीतेन तेन सञ्चिन्तितं- यदि श्रेष्ठिनो वचनमसत्यं भवति तदा मरणं भवतीति शङ्कितमना वारं वारं चतनोत्तरणं करोति । एतस्मिन् प्रस्तावे प्रजापालस्य राज्ञः कनकाराज्ञीहारं दृष्ट्वाञ्जनसुन्दर्या विलासिन्या रात्रावागतोञ्जनचोरो भणितः । यदि मे कनकाराज्ञ्याहारं ददासि तदा भर्ता त्वं, नान्यथेति । ततो गत्वा रात्रौ हारं चोरयित्वाऽञ्जनचोर आगच्छन् हारोद्योतेन ज्ञातोऽङ्गरक्षैः कोट्टपालैश्च ध्रियमाणो हारं त्यक्त्वा प्रणश्य गतः वटतले वटुकं दृष्ट्वा तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा निःशङ्कितेन तेन विधिनैकवारेण सर्वशिक्यं छिन्नं शस्त्रोपरि पतितः सिद्ध्या विद्यया भणितं- ममादेशं देहीति । तेनोक्तं- जिनदत्तश्रेष्ठिपाश्वे मां नयेति । ततः सुदर्शनमेरुचैत्यालये जिनदत्तस्याग्रे नीत्वा स्थितः । पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा तेन भणितं- यथेयं सिद्धा भवदुपदेशेन तथा परलोकसिद्धावप्युपदेहीति । ततश्चारणमुनिसन्निधौ तपो गृहीत्वा कैलासे केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतः ॥ १॥

निःकाङ्क्षितत्वेऽनन्तमतीदृष्टान्तोऽस्याः कथा ।

अङ्गदेशे चम्पानगर्या राजा वसुवर्धनो राज्ञी लक्ष्मीमती श्रेष्ठी प्रियदत्तस्तद्भार्या अङ्गवती पुत्र्यनन्तमती । नन्दीश्वराष्ट्रम्यां श्रेष्ठिना धर्मकीर्त्याचार्यपादमूलेऽष्टदिनानि ब्रह्मचर्यं गृहीतम् । क्रीडयाऽनन्तमती च ग्राहिता । अन्यदा सम्प्रदानकालेऽनन्तमत्योक्तं- तात! मम त्वया ब्रह्मचर्यं दापितमतः किं विवाहेन? श्रेष्ठिनोक्तं क्रीडया मया ते ब्रह्मचर्यं दापितम् । ननु तात! धर्मे व्रते का क्रीडा? ननु पुत्रि! नन्दीश्वराष्ट्रदिनान्येव व्रतं तव न सर्वदा दत्तम् । सोवाच ननु तात! तथा भट्टारकैरविवक्षितत्वादिति । इह जन्मनि परिणयने मम निवृत्तिरस्तीत्युक्त्वा सकलकलाविज्ञानशिक्षां कुर्वन्ती स्थिता । यौवनभरे चैत्रे निजोद्याने आन्दोलयन्ती विजयार्थं दक्षिणश्रेणिकिन्नरपुरविद्याधरराजेन कुण्डलमण्डितनाम्ना सुकेशीनिजभार्याया सह गगनतले गच्छता दृष्टा । किमनया विना जीवितेनेति संचिन्त्य भार्या गृहे धृत्वा शीघ्रमागत्य विलपन्ती तेन सा नीता । आकाशे गच्छता भार्या दृष्ट्वा भीतेन पर्णलघुविद्याः समप्रय महाटव्यां मुक्ता । तत्र च तां रुदन्तीमालोक्य भीमनाम्ना भिल्लराजेन निजपल्लिकायां नीत्वा प्रधानराज्ञीपदं तव ददामि मामिच्छेति भणित्वा रात्रावनिच्छतीं भोक्तुमारब्धा । व्रतमाहात्म्येन वनदेवतया तस्य ताडनाद्युपसर्गः कृतः । देवता

काचिदियमिति भीतेन तेनावसितसार्थपुष्पकनाम्नः सार्थवाहस्य समर्पिता। सार्थवाहो लोभं दर्शयित्वा परिणेतुकामो न तया वाञ्छितः। तेन चानीयायोध्याया कामसेनाकुट्टिन्याः समर्पिता, कथमपि वेश्या न जाता। ततस्तया सिंहराजस्य राज्ञो दर्शिता तेन च रात्रौ हठात् सेवितुमारब्धः। नगरदेवतया तद्रतमाहात्म्येन तस्योपसर्गः कृतः। तेन च भीतेन गृहान्निःसारिता। रुदती सखेदं सा कमलश्रीक्षांतिकया श्राविकेति मत्वाऽतिगौरवेण धृता। अथानन्तमतीशोकविस्मरणार्थं प्रियदत्तश्रेष्ठी बहुसहायो वन्दनाभक्तिं कुर्वन्नयोध्यायां गतो निजश्यालकजिनदत्तश्रेष्ठिनो गृहे संध्यासमये प्रविष्टो रात्रौ पुत्री हरणवार्तां कथितवान्। प्रभाते तस्मिन् वन्दनाभक्तिं कर्तुं गते अतिगौरवितप्राधूर्णकनिमित्तं रसवतीं कर्तुं गृहे चतुष्कं दातुं कुशला कमलश्रीक्षान्तिका श्राविका जिनदत्तभार्यया आकारिता। सा च सर्वं कृत्वा वसतिकां गता। वन्दनाभक्तिं कृत्वा आगतेन प्रियदत्तश्रेष्ठिना चतुष्कमालोक्यानन्तमतीं स्मृत्वा गह्वरितहृदयेन गद्गदितवचनेनाश्रुपातं कुर्वता भणितं- यया गृहमण्डनं कृतं तां मे दर्शयेति। ततः सा आनीता तयोश्च मेलापके जाते जिनदत्तश्रेष्ठिना च महोत्सवः कृतः। अनन्तमत्या चोक्तं तात! इदानीं मे तपो दापय, दृष्टमेकस्मिन्नेव भवे संसारवैचित्र्यमिति। ततः कमलश्रीक्षांतिकापाश्वरे तपो गृहीत्वा बहुना कालेन विधिना मृत्वा तदात्मा सहस्रारकल्पे देवो जातः ॥२॥

निर्विचिकित्सिते उद्दायनो दृष्टान्तोऽस्य कथा-

एकदा सौधर्मेन्द्रेण निजसभायां सम्यक्त्वगुणं व्यावर्णयता भरते वत्सदेशे रौरकपुरे उद्दायनमहाराजस्य निर्विचिकित्सितगुणः प्रशंसितस्तं परीक्षितुं वासवदेव उदुम्बरकुष्ठकुथितं मुनिरूपं विकृत्य तस्यैव हस्तेन विधिना स्थित्वा सर्वमाहारं जलं च मायया भक्षयित्वातिदुर्गन्धं बहुवमनं कृतवान्। दुर्गन्धभयात्रष्टे परिजने प्रतीच्छतो राज्ञस्तद्देव्याश्च प्रभावत्या उपरि छदितं, हाहा! विरुद्ध आहारो दत्तो मयेत्यात्मानं निन्दयतस्तं च प्रक्षालयतो मायां परिहृत्य प्रकटीकृत्य पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा प्रशस्य च तं स्वर्गं गतः। उद्दायनमहाराजो वर्धमानस्वामिपादमूले तपो गृहीत्वा मुक्तिं गतः। प्रभावती च तपसा ब्रह्मस्वर्गं देवो बभूव ॥३॥

अमूढदृष्टित्वे रेवतीदृष्टान्तोऽस्य कथा-

विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां मेघकूटे नगरे राजा चन्द्रप्रभः। चन्द्रशेखरपुत्राय राज्यं दत्वा परोपकारार्थं वन्दनाभक्त्यर्थं च कियतीविद्या दधानो दक्षिणमथुरायां गत्वा गुप्ताचार्यसमीपे क्षुल्लको जातः। तेनैकदा वन्दनाभक्त्यर्थमुत्तरमथुरायां चलितेन गुप्ताचार्यः पृष्ठः किं कस्य कथ्यते? भगवतोक्तं सुव्रतमुनेर्वन्दना वरुणराजमहाराज्ञीरिवत्या आशीर्वादश्च कथनीयः। त्रिपृष्ठेनापि तेन एतावदेवोक्तं। ततः क्षुल्लकेनोक्तं। भव्यसेनाचार्यस्यैकादशांगधारिणोऽन्येषां च नामापि भगवन् न गृह्णाति तत्र किंचित्कारणं भविष्यतीति सम्प्रधार्य तत्र गत्वा सुव्रतमुनेर्भट्टारकीयां वन्दनां कथयित्वा तदीयं च विशिष्टं वात्सल्यं दृष्ट्वा भव्यसेनवसतिकां गतः। तत्र गतस्य च भव्यसेनेन सम्भाषणमपि न कृतम्। कुण्डिकां गृहीत्वा भव्यसेनेन सह बहिर्भूमिं गत्वा विकुर्वणया हरितकोमलतृणाङ्कुरच्छत्रो मार्गोऽग्रे दर्शितः। तं दृष्ट्वा 'आगमे किलैते जीवाः कथ्यन्ते' इति भणित्वा तत्रारुचिं कृत्वा तृणोपरि गतः शौचसमये कुण्डिकायां जलं नास्ति तथा विकृतिश्च कापि न दृश्यतेऽतोऽत्र स्वच्छसरोवरे प्रशस्तमृत्तिकया शौचं कृतवान्। ततस्तं मिथ्यादृष्टिं ज्ञात्वा भव्यसेनस्याभव्यसेननाम कृतम्। ततोऽन्यस्मिन् दिने पूर्वस्यां दिशि पद्यासनस्थं चतुर्मुखं यज्ञोपवीतादयुपेतं देवासुरवन्द्यमानं ब्रह्मरूपं दर्शितम्। तत्र राजादयो भव्यसेनादयश्च जना गताः। रेवती तु कोऽयं ब्रह्मनाम देव इति भणित्वा लोकैः प्रेर्यमाणापि न गता। एवं दक्षिणस्यां दिशि गरुडारुढं चतुर्भुजं च गदाशङ्खादिधारकं वासुदेवरूपम्। पश्चिमायां दिशि वृषभारुढं सार्धचन्द्रजटाजूटगौरीगणोपेतं शङ्कररूपम्। उत्तरस्यां दिशि समवसरणमध्ये प्रातिहार्याष्टकोपेतं सुरनरविद्याधरमुनिवन्द्यमानं पर्यङ्कस्थितं तीर्थङ्करदेवरूपं दर्शितम्। तत्र च सर्वलोका गताः। रेवती तु लोकैः प्रेर्यमाणापि न गता नवैव वासुदेवाः, एकादशैव रुद्राः, चतुर्विंशतिरेव तीर्थङ्करा जिनागमे कथिताः। ते चातीताः कोऽप्ययं मायावीत्युक्ता स्थिता। अन्यदिने चर्याविलायां व्याधिक्षीणशरीरक्षुल्लकरूपेण रेवतीगृहप्रतोलीसमीपमार्गे मायामूच्छया पतितः। रेवत्या तमाकण्य भक्त्योत्थाय नीत्वोपचारं कृत्वा पथं कारयितुमारब्धः। तेन च सर्वमाहारं भुक्त्वा दुर्गन्धवमनं कृतम्। तदपनीय हा! विरूपकं मयाऽपथं दत्तमिति रेवत्या वचनमाकण्य तोषान्मायामुपसंहृत्य तां देवीं वन्दयित्वा गुरोराशीर्वादं पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा लोकमध्ये तु अमूढदृष्टित्वं तस्या उच्चैः प्रशस्य स्वस्थाने गतः। वरुणो राजा शिवकीर्तिपुत्राय राज्यं दत्वा तपो गृहीत्वा माहेन्द्रस्वर्गं देवो जातः। रेवत्यपि तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गं देवो बभूव ॥४॥

उपगूहने जिनेन्द्रभक्तो दृष्टान्तोऽस्य कथा-

सुराष्ट्रदेशे पाटलिपुत्रनगरे राजा यशोधरो राज्ञी सुसीमा पुत्रः सुवीरः सप्तव्यसनाभिभूतस्तथाभूततस्करपुरुषसेवितः। पूर्वदेशे गौडविषये ताम्रलिप्तनगर्या जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिनः सप्ततलप्रासादोपरि बहुरक्षकोपयुक्तपाश्वनाथप्रतिमाछत्रयोपरि विशिष्टतरानघ्रयवैडूर्यमणिं पारम्पर्येणाकण्य लोभात्तेन सुवीरेण निजपुरुषाः पृष्टाः तं मणिं किं कोऽप्यानेतुं शक्तोऽस्तीति। इन्द्रमुकुटमणिमप्यहमानयामीति गलगर्जितं कृत्वा सूर्यनामा चौरः कपटेन क्षुल्लको भूत्वा अतिकायक्लेशेन ग्रामनगरक्षोभं कुर्वणः क्रमेण ताम्रलिप्तनगरीं गतः। तमाकण्य गत्वाऽलोक्य वन्दित्वा सम्भाष्य प्रशस्य च क्षुभितेन जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिना नीत्वा पाश्वनाथदेवं दर्शयित्वा मायया अनिच्छन्नपि स तत्र मणिरक्षको धृतः। एकदा क्षुल्लकं पृष्ट्वा श्रेष्ठी समुद्रयात्रायां चलितो नगराद्बहिर्निर्गत्य स्थितः। स चौरक्षुल्लको गृहजनमुपकरणनयनव्यग्रं ज्ञात्वा अर्धरात्रे तं मणिं गृहीत्वा चलितः। मणितेजसा मार्गे कोट्टपालैर्दृष्टो धर्तुमारब्धः। तेभ्यः पलायितुमसमर्थः श्रेष्ठिन एव शरणं प्रविष्टो मां रक्ष रक्षेति चोक्तवान्। कोट्टपालानां कलकलमाकण्य पर्यालोच्य तं चौरं ज्ञात्वा दर्शनोपहासप्रच्छादनार्थं भणितं श्रेष्ठिना मद्बचनेन रत्नमनेनानीतमिति

विरूपकभवद्भिः कृतं यदस्य महातपस्विनश्चौरोद्घोषणा कृता। ततस्ते तस्य वचनं प्रमाणं कृत्वा गताः। स च श्रेष्ठिना रात्रौ निर्घाटितः। एवमन्येनापि सम्यग्दृष्टिना असमर्थाज्ञानपुरुषादागतदर्शनदोषस्य प्रच्छादनं कर्तव्यम् ॥५॥

स्थितिकरणे वारिषेणो दृष्टान्तोऽस्य कथा-

मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको राज्ञी चेलिनी पुत्री वारिषेणः उत्तमश्रावकः चतुर्दश्यां रात्रौ कृतोपवासः श्मसाने कायोत्सर्गेण स्थितः। तस्मिन्नेव दिने उद्यानिकायां गतया मगधसुन्दरीविलासिन्या श्रीकीर्तिश्रेष्ठिन्या परिहितो दिव्यो हारो दृष्टः। ततस्तं दृष्ट्वा किमनेनालङ्कारेण विना जीवितेनेति सञ्चिन्त्य शय्यायां पतित्वा सा स्थिता। रात्रौ समागतेन तदासक्तेन विद्युच्चरेणोक्तं प्रिये! किमेवं स्थितासीति। तयोक्तं श्रीकीर्तिश्रेष्ठिन्या हारं यदि मे ददासि तदा जीवामि त्वं च मे भर्ता नान्यथेति श्रुत्वा तां समुदीर्य अर्धरात्रे गत्वा निजकौशलेन तं हारं चोरयित्वा निर्गतः। तदुद्योतेन चौरोऽयमिति ज्ञात्वा गृहरक्षकैः कोट्टपालैश्च ध्रियमाणो पलायितुमसमर्थो वारिषेणकुमारस्याग्रे तं हारं धृत्वाऽदृश्यो भूत्वा स्थितः कोट्टपालैश्च तं तथालोक्य श्रेणिकस्य कथितं देव! वारिषेणश्च चौर इति। तं श्रुत्वा तेनोक्तं मूर्खस्यास्य मस्तकं गृह्यतामिति। मातङ्गेन योऽसिः शिरोग्रहणार्थं बाहितः स कठे तस्य पुष्पमाला बभूव। तमतिशयमाकण्य श्रेणिकेन गत्वा वारिषेणः क्षमां कारितः। लब्धाभयप्रदानेन विद्युच्चरचौरेण राज्ञो निजवृत्तान्ते कथिते वारिषेणो गृहे नेतुमारब्धः। तेन चोक्तं मया पाणिपात्रे भोक्तव्यमिति। ततोऽसौ सूरसेनमुनिसमीपे मुनिरभूत्। एकदा राजगृहसमीपे पलाशकूटग्रामे चर्यायां स प्रविष्टः। तत्र श्रेणिकस्य योऽग्निभूतिमन्त्री तत्पुत्रेण पुष्पडालेन स्थापितं, चर्यां कारयित्वा स सोमिल्लां निजभार्यां पृष्ट्वा प्रभुपुत्रत्वाद् बालसखित्वाच्च स्तोत्रं मार्गानुव्रजनं कर्तुं वारिषेणेन सह निर्गतः। आत्मनो व्याघुटनार्थं क्षीरवृक्षादिकं दर्शयन् मुहुर्मुहुर्वन्दनां कुर्वन् हस्ते धृत्वा नीतो विशिष्टधर्मश्रवणं कृत्वा वैराग्यं नीत्वा तपो ग्राहितोऽपि सोमिल्लां न विस्मरति। तौ द्वावपि द्वादशवर्षाणि तीर्थयात्रायां कृत्वा वर्धमानस्वामिसमवसरणं गतौ। तत्र वर्धमानस्वामिनः पृथिव्याश्च सम्बन्धिगीतं देवैर्गीयमानं पुष्पडालेन श्रुतम्। यथा-

'मङ्गलकुचेली दुम्मनी नहिं पविसिएण

कह जीवेसइ धणिय, घर उज्झंते हियएण ॥'

एतदात्मनः सोमिल्लायाश्च संयोज्य उत्कण्ठितश्चलितः। स वारिषेणेन ज्ञात्वा स्थिरीकरणार्थं निजनगरं नीतम्। चेलिन्या तौ दृष्ट्वा वारिषेणः किं चारित्राच्चलितः आगच्छतीति सञ्चिन्त्य परीक्षणार्थं सरागवीतरागे द्वे आसने दत्ते। वीतरागासने वारिषेणेनोपविश्योक्तं मदीयमन्तःपुरमानीयताम्। ततश्चेलिन्या महादेव्या द्वात्रिंशद्भार्याः सालङ्कारा आनीताः। ततः पुष्पडालो वारिषेणेन भणितः स्त्रियो मदीयं युवराजपदं च त्वं गृहाण। तच्छ्रुत्वा पुष्पडालो अतीव लज्जितः परं वैराग्यं गतः। परमार्थेन तपः कर्तुं लग्न इति ॥६॥

वात्सल्ये विष्णुकुमारो दृष्टान्तोऽस्य कथा-

अवन्तिदेशे उज्जयिन्यां श्रीवर्मा राजा, तस्य बलिर्बृहस्पतिः प्रह्लादो नमुचिश्चेति चत्वारो मन्त्रिणः। तत्रैकदा समस्तश्रुताधारो दिव्यज्ञानी सप्तशतमुनिसमन्वितोऽकम्पनाचार्य आगत्योद्यानके स्थितः। समस्तसंघश्च वारितः राजादिकेऽप्यागते केनापि जल्पनं न कर्तव्यमन्यथा समस्तसंघस्य नाशो भविष्यतीति। राज्ञा च धवलगृहास्थितेन पूजाहस्तं नगरीजनं गच्छन्तं दृष्ट्वा मन्त्रिणः पृष्टाः कायं लोकोऽकालयात्रायां गच्छतीति। तैरुक्तं क्षपणका बहवो बहिरुद्याने आयातास्तत्रायं जनो याति। वयमपि तान् द्रष्टुं गच्छाम इति भणित्वा राजापि तत्र मन्त्रिसमन्वितो गतः। प्रत्येके सर्वे वन्दिताः। न च केनापि आशीर्वादो दत्तः। दिव्यानुष्ठानेनातिनिस्पृहास्तिष्ठन्तीति सञ्चिन्त्य व्याघुटिते राज्ञि मन्त्रिभिर्दुष्टाभिप्रायरुपहासः कृतः। बलीवर्दा एते न किञ्चिदपि जानन्ति, मूखाः दम्भमौनेन स्थिताः। एवं ब्रुवाणैर्गच्छद्भिर्ग्रे चर्यां कृत्वा श्रुतसागरमुनिमागच्छन्तमालोक्योक्तं 'अयं तरुणबलीवर्दः पूर्णकुक्षिरागच्छति'। एतदाकण्य तेन ते राजाग्रेऽनेकान्तवादेन जिताः। अकम्पनाचार्यस्य चागत्य वार्ता कथिता। तेनोक्तं सर्वसंघस्त्वया मारितः यदि वादस्थाने गत्वा रात्रौ त्वेकाकी तिष्ठसि तदा संघस्य जीवितव्यं, तव शुद्धिश्च भवति। ततोऽसौ तत्र गत्वा कायोत्सर्गेण स्थितः। मन्त्रिभिश्चातिलज्जितैः क्रुद्धैः रात्रौ संघं मारयितुं गच्छद्भिस्तमेकं मुनिमालोक्य येन परिभवः कृतः स एव हन्तव्य इति पर्यालोच्य तद्विधार्थं युगपच्चतुर्भिः खड्गा उद्गूर्णा। कम्पितनगरदेवतया तथैव ते कीलिताः। प्रभाते तथैव ते सर्वलोकैर्दृष्टाः। रुष्टेन राज्ञा क्रमागता इति न मारिता गर्दभारोहणादिकं कारयित्वा देशान्निर्घाटिता। अथ कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे राजा महापद्मो राज्ञी लक्ष्मीमती पुत्रौ पद्मो विष्णुश्च। स एकदा पद्माय राज्यं दत्त्वा महापद्मो विष्णुना सह श्रुतसागर चन्द्राचार्यस्य समीपे मुनिर्जातः। ते च बलिप्रभृतय आगत्य पद्मराजस्य मन्त्रिणो जाताः। कुम्भपुरदुर्गे च सिंहबलो राजा दुर्गबलात् पद्ममण्डलस्योपद्रवं करोति। तद्ग्रहणचिन्तया पद्मं दुर्बलमालोक्य बलिनोक्तं किं देव! दौर्बल्ये कारणमिति। कथितं च राज्ञा। तच्छ्रुत्वा आदेशं याचयित्वा तत्र गत्वा बुद्धिमाहात्म्येन दुर्गं भङ्क्त्वा सिंहबलं गृहीत्वा व्याघुट्यागतः। तेन पद्मस्यासौ समर्पितः। देव! सोऽयं सिंहबल इति। तुष्टेन तेनोक्तं वाञ्छितं वरं प्रार्थयेति। बलिनोक्तं यदा प्रार्थयिष्यामि तदा दीयतामिति। अथ कतिपयदिनेषु विहरस्तेऽकम्पनाचार्यादयः सप्तशतयतयस्तत्रागताः। पुरक्षोभाद् बलिप्रभृतिभिस्तान् परिज्ञाय राजा एतद्भक्त इति पर्यालोच्य भयात्तन्मारणार्थं पद्मः पूर्ववरं प्रार्थितः सप्तदिनान्यस्माकं राज्यं देहीति। ततोऽसौ सप्तदिनानि राज्यं दत्त्वाऽन्तःपुरे प्रविश्य स्थितः। बलिना च आतापनगिरौ कायोत्सर्गेण स्थितान् मुनीन् वृत्यावेष्ट्य मण्डपं कृत्वा यज्ञः कर्तुमारब्धः। उच्छिष्टसराबच्छागादिजीवकलेवैर्धूमैश्च मुनीनां मारणार्थमुपसर्गः कृतः। मुनयश्च द्विविधसंन्यासेन स्थिताः। अथ मिथिलानगर्यामर्धरात्रे बहिर्विनिर्गतश्रुतसागरचन्द्राचार्येण आकाशे श्रवणनक्षत्रं



कम्पमानमालोक्यावधिज्ञानेन ज्ञात्वा भणितं महामुनीनां महानुपसर्गो वर्तते। तच्छ्रुत्वा पुष्पधरनाम्ना विद्याधरक्षुल्लकेन पृष्ठं भगवन्! क्व केषां मुनीनां महानुपसर्गो वर्तते? हस्तिनागपुरे अकम्पनाचार्यादीनां सप्तशतयतीनाम् उपसर्गः कथं नश्यति? धरणिभूषणगिरौ विष्णुकुमारमुनिर्विक्रियद्रुधिसम्पन्नस्तिष्ठति स नाशयति। एतदाकण्य तत्समीपे गत्वा क्षुल्लकेन विष्णुकुमारस्य सर्वस्मिन् वृत्तान्ते कथिते मम किं विक्रिया ऋद्धिरस्तीति सञ्चिन्त्य तत्परीक्षार्थं हस्तः प्रसारितः। स गिरिं भित्त्वा दूरे गतः। ततस्तां निर्णीय तत्र गत्वा पद्मराजो भणितः। किं त्वया मुनिनामुपसर्गः कारितः। भवत्कुले केनापीदृशं न कृतम्। तेनोक्तं किं करोमि मया पूर्वमस्य वरो दत्त इति। ततो विष्णुकुमारमुनिना वामनब्राह्मणरूपं धृत्वा दिव्यध्वनिना प्राध्ययनं कृतम्। बलिनोक्तं किं तुभ्यं दीयते। तेनोक्तं भूमेः पादत्रयं देहि। ग्रहिलब्राह्मण बहुतरमन्यत् प्रार्थयेति वारं वारं लोकैर्भण्यमानोऽपि तावदेव याचते। तता हस्तोदकादिविधिना भूमिपादत्रये दत्ते तेनैकपादो मेरौ दत्तो द्वितीयो मानुषोत्तरगिरौ तृतीयपादेन देवविमानादीनां क्षोभं कृत्वा बलिपृष्ठे तं पादं दत्त्वा बलिं बद्ध्वा मुनीनामुपसर्गो निवारितः। ततस्ते चत्वारोऽपि मन्त्रिणः पद्मस्य भयादागत्य विष्णुकुमारमुनेरकम्पनाचार्यादीनां च पादेषु लग्नाः। ते मन्त्रिणः श्रावकाश्च जाता इति ॥७॥

प्रभावनायां वज्रकुमारो दृष्टान्तोऽस्य कथा-

हस्तिनागपुरे बलराजस्य पुरोहितो गरुडस्तत्पुत्रः सोमदत्तः तेन सकलशास्त्राणि पठित्वा अहिच्छत्रपुरे निजमामसुभूतिपाश्वे गत्वा भणितं- माम्! मां दुर्मुखराजस्य दर्शयेत्। न च गर्वितेन तेन दर्शितः। ततो ग्रहिलो भूत्वा सभायां स्वयमेव तं दृष्ट्वा आशीर्वादं दत्त्वा सर्वशास्त्रकुशलत्वं प्रकाश्य मन्त्रिपदं लब्धवान्। तं तथाभूतमालोक्य सुभूतिमामो यज्ञदत्तां पुत्रीं परिणेतुं दत्तवान्। एकदा तस्या गर्भिण्या वर्षाकाले आम्रफलभक्षणे दोहलको जातः। ततः सोमदत्तेन तान्युद्यानवने अन्वेषयता यत्राम्रवृक्षे सुमित्राचार्यो योगं गृहीतवांस्तं नानाफलैः फलितं दृष्ट्वा तस्मात्तान्यादाय पुरुषहस्ते प्रेषितवान्। स्वयं च धर्मं श्रुत्वा निर्विण्णस्तपो गृहीत्वा आगममधीत्य परिणतो भूत्वा नाभिगिरौ आतपनेन स्थितः। यज्ञदत्ता च पुत्रं प्रसूता तं वृत्तान्तं श्रुत्वा बंधुसमीपगता। तस्य शुद्धिं ज्ञात्वा धृत्वा दुर्वचनानि दत्त्वा गृहं गता। अत्र प्रस्तावे दिवाकरदेवनामा विद्याधरोऽमरावतीपुर्याः पुरन्दरनाम्ना लघुभ्रात्रा राज्यान्निर्घाटितः। सकलत्रो मुनिं वन्दितुमायातः। तं बालं गृहीत्वा निजभार्यायाः समप्रय वज्रकुमार इति नाम कृत्वा गतः। स च वज्रकुमारः कनकनगरे विमलवाहननिजमैथुनिकसमीपे सर्वविद्यापारगो युवा च क्रमेण जातः। अथ गरुडवेगाङ्गवत्योः पुत्री पवनवेगा हेमन्तपर्वते प्रज्ञप्तिं विद्यां महाश्रमेण साधयन्ती पवनाकम्पित बदरीवज्रकण्टकेन लोचने विद्धा। ततस्तत्पीडया चलचित्ताया विद्या न सिद्ध्यति। ततो वज्रकुमारेण च तां तथा दृष्ट्वा विज्ञानेन कण्टक उद्धृतः। ततः स्थिरचित्तायास्तस्या विद्या सिद्धा। उक्तं च तया भवत्प्रसादेन एव विद्या सिद्धा, त्वमेव मे भर्तृत्युक्त्वा परिणीतः। वज्रकुमारेणोक्तं तात! अहं कस्य पुत्र इति सत्यं कथय, तस्मिन् कथिते मे भोजनादौ प्रवृत्तिरिति। ततस्तेन पूर्ववृत्तान्तः सर्वः सत्य एव कथितः। तमाकण्य निजगुरुं द्रष्टुं बन्धुभिः सह मथुरायां क्षत्रियगुहायां गतः। तत्र च सोमदत्तगुरोर्दिवाकरदेवेन वन्दनां कृत्वा वृत्तान्तः कथितः। समस्तबन्धून् महता कष्टेन विसृज्य वज्रकुमारो मुनिर्जातः। अत्रान्तरे मथुरायामन्या कथा- राजा पूतिगन्धो राज्ञी उर्विला। सा च सम्यग्दृष्टिरीव जिनधर्मप्रभावनायां रता। नन्दीश्वराष्टदिनानि प्रतिवर्षं जिनेन्द्ररथयात्रां त्रीन् वारान् कारयति। तत्रैव नगर्यां श्रेष्ठी सागरदत्तः श्रेष्ठिनी समुद्रदत्ता पुत्री दरिद्रा। मृते सागरदत्ते दरिद्रा परगृहे निक्षिप्तसिक्थानि भक्षयन्ती चर्यां प्रविष्टेन मुनिद्वयेन दृष्टा ततो लघुमुनिनोक्तं 'हा! वराकी महता कष्टेन जीवतीति।' तदाकण्य ज्येष्ठमुनिनोक्तं अत्रैवास्य राज्ञः पट्टराज्ञी वल्लभा भविष्यतीति। भिक्षां भ्रमता धर्मश्रीं वन्दकेन तद्वचनमाकण्य नान्यथा मुनिभाषितमिति सञ्चिन्त्य स्वविहारे तां नीत्वा मृष्टाहारैः पोषिता। एकदा यौवनभरे चैत्रमासे आन्दोलयन्तीं तां दृष्ट्वा राजा अतीव विरहावस्थां गतः। ततो मन्त्रिभिस्तां तदर्थं वन्दको याचितः। तेनोक्तं यदि मदीयं धर्मं राजा गृति तदा ददामीति। तत्सर्वं कृत्वा परिणीता। पट्टमहादेवी तस्य सातिवल्लभा जाता। फाल्गुननन्दीश्वर यात्रायामुर्विला रथयात्रा महारोपं दृष्ट्वा तया भणितं देव! मदीयो बुद्धरथोऽधुना पुर्यां प्रथमं भ्रमतु। राज्ञा चोक्तमेवं भवत्विति। तत उर्विला वदति 'मदीयो रथो यदि प्रथमं भ्रमति तदाहारे मम प्रवृत्तिरन्यथा निवृत्तिरिति' प्रतिज्ञां गृहीत्वा क्षत्रियगुहायां सोमदत्ताचार्यपाश्वे गता। तस्मिन् प्रस्तावे वज्रकुमारमुनेर्वन्दनाभक्त्यर्थमायाता दिवाकरदेवादयो विद्याधरास्तदीयवृत्तान्तं च श्रुत्वा वज्रकुमारमुनिना ते भणिताः। उर्विलायाः प्रतिज्ञारूढाया रथयात्रा भवद्भिः कर्तव्येति। ततस्तैर्बुद्धदासी रथं भक्त्वा नानाविभूत्या उर्विलाया रथयात्रा कारिता। तमतिशयं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा बुद्धदासी अन्ये च जना जिनधर्मरता जाता इति ॥२०॥

## आर्यिका-आदिमति :

सम्यग्दर्शन निःशङ्कितादि आठ अङ्गों से युक्त हैं, उन आठ अङ्गों में से पहले निःशङ्कित अङ्ग में अञ्जनचोर का दृष्टान्त निश्चित किया गया है। दूसरे निःकाङ्क्षित अङ्ग में अनन्तमती रानी, तीसरे निर्विचिकित्सा अङ्ग में उद्वायनराजा, चौथे अमूढदृष्टि अङ्ग में रेवती रानी, पाँचवें उपगूहन अङ्ग में जिनेन्द्रभक्त सेठ, छठे स्थितीकरण अङ्ग में वारिषेण, सातवें वात्सल्य अङ्ग में विष्णुकुमारमुनि और आठवें प्रभावना अङ्ग में वज्रकुमार मुनि प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

अञ्जन चोर की कथा

धन्वन्तरि और विश्वलोमा पुण्यकर्म के प्रभाव से अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ नाम के देव हुए और एक-दूसरे के धर्म की परीक्षा करने हेतु पृथिवीलोक पर आये। तदनन्तर उन्होंने यमदग्नि ऋषि को तप से विचलित किया। मगधदेश के राजगृह नगर में जिनदत्त नाम का सेठ उपवास का नियम लेकर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को श्मशान में कायोत्सर्ग से स्थित

था। उसे देखकर अमितप्रभ देव ने विद्युत्प्रभ से कहा कि हमारे मुनि तो दूर रहें, इस गृहस्थ को ही तुम ध्यान से विचलित कर दो। तदनन्तर विद्युत्प्रभ देव ने उस पर अनेक प्रकार के उपसर्ग किये, फिर भी वह ध्यान से विचलित नहीं हुआ। तदनन्तर प्रातःकाल अपनी माया को समेटकर विद्युत्प्रभ ने उसकी बहुत प्रशंसा की और उसे आकाशगामिनी विद्या दी। विद्या प्रदान करते समय उससे कहा कि तुम्हें यह विद्या सिद्ध हो चुकी है, दूसरे के लिए पञ्चनमस्कार मन्त्र की अर्चना और आराधना विधि से सिद्ध होगी। जिनदत्त के यहाँ सोमदत्त नाम का एक ब्रह्मचारी वटु रहता था, जो जिनदत्त के लिए फूल लाकर देता था। एक दिन उसने जिनदत्त सेठ से पूछा कि आप प्रातःकाल ही उठकर कहाँ जाते हैं? सेठ ने कहा कि मैं अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना भक्ति करने के लिए जाता हूँ। मुझे इस प्रकार से आकाशगामिनी विद्या का लाभ हुआ है, सेठ के ऐसा कहने पर सोमदत्त वटु ने कहा कि मुझे भी यह विद्या दो, जिससे मैं भी तुम्हारे साथ पुष्पादिक लेकर वन्दना भक्ति करूँगा। तदनन्तर सेठ ने उसके लिए विद्या सिद्ध करने की विधि बतलाई।

सोमदत्त वटु ने कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को श्मशान में वटवृक्ष की पूर्व दिशा वाली शाखा पर एक सौ आठ रस्सियों का मूँज का एक सींका बांधा। उसके नीचे सब प्रकार के पैसे शस्त्र ऊपर की ओर मुख कर रखे। पश्चात् गन्ध, पुष्प आदि लेकर सींके के बीच प्रविष्ट हो उसने बेला (दो दिन के उपवास) का नियम लिया। फिर पञ्चनमस्कार मन्त्र का उच्चारण कर छुरी से सींके की एक-एक रस्सी को काटने के लिए तैयार हुआ। परन्तु नीचे चमकते हुए शस्त्रों के समूह को देखकर वह डर गया तथा विचार करने लगा कि यदि सेठ के वचन असत्य हुए तो मरण हो जाएगा। इस प्रकार शंकित चित्त होकर वह सींके पर बार-बार चढ़ने और उतरने लगा।

उसी समय, राजगृही नगरी में एक अञ्जनसुन्दरी नाम की वेश्या रहती थी। एक दिन उसने कनकप्रभ राजा की कनका रानी का हार देखा। रात्रि को जब अञ्जन चोर उस वेश्या के यहाँ गया तब उसने कहा कि यदि तुम मुझे कनका रानी का हार लाकर दे सकते हो तो मेरे भ्रत्ता बन सकते हो, अन्यथा नहीं। तदनन्तर अञ्जन चोर रात्रि में हार चुराकर आ रहा था कि हार के प्रकाश से वह जान लिया गया। अङ्गरक्षकों और कोटपाल ने उसे पकड़ना चाहा, परन्तु वह हार छोड़कर भाग गया। वटवृक्ष के नीचे सोमदत्त वटुक को देखकर उसने उससे सब समाचार पूछे तथा उससे मन्त्र लेकर वह सींके पर चढ़ गया। उसने निःशंकित होकर उस विधि से एक ही बार में सींके की सब रस्सियाँ काट दीं। ज्यों ही वह शस्त्रों के ऊपर गिरने लगा त्यों ही विद्या सिद्ध हो गई। सिद्ध हुई विद्या ने उससे कहा कि मुझे आज्ञा दो। अञ्जन चोर ने कहा कि मुझे जिनदत्त सेठ के पास ले चलो। उस समय जिनदत्त सेठ सुदर्शन-मेरु के चैत्यालय में स्थित था। विद्या ने अञ्जन चोर को ले जाकर सेठ के आगे खड़ा कर दिया। अपना पिछला वृत्तान्त कहकर अञ्जन चोर ने सेठ से कहा कि आपके उपदेश से मुझे जिस प्रकार यह विद्या सिद्ध हुई है, उसी प्रकार परलोक की सिद्धि के लिए भी आप मुझे उपदेश दीजिए। तदनन्तर चारण ऋद्धिधारी मुनिराज के पास दीक्षा लेकर उसने कैलाश पर्वत पर तप किया और केवलज्ञान प्राप्त कर वहीं से मोक्ष प्राप्त किया।

### अनन्तमती की कथा

अङ्गदेश की चम्पानगरी में राजा वसुवर्धन रहते थे। उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। प्रियदत्त नाम का सेठ था, उसकी स्त्री का नाम अङ्गवती था और दोनों के अनन्तमती नाम की एक पुत्री थी। एक बार नन्दीश्वर-अष्टाह्निका पर्व की अष्टमी के दिन सेठ ने धर्मकीर्ति आचार्य के पादमूल में आठ दिन तक का ब्रह्मचर्य व्रत लिया। सेठ ने क्रीडावश अनन्तमती को भी ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया।

अन्य समय जब अनन्तमती के विवाह का अवसर आया, तब उसने कहा कि पिताजी! आपने तो मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, इसलिए विवाह से क्या प्रयोजन है? सेठ ने कहा- मैंने तो तुझे क्रीडावश ब्रह्मचर्य दिलाया था। अनन्तमती ने कहा कि व्रतरूप धर्म के विषय में क्रीड़ा क्या वस्तु है? सेठ ने कहा- पुत्रि! नन्दीश्वर पर्व के आठ दिन के लिए ही तुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, न कि सदा के लिए। अनन्तमती ने कहा कि पिताजी! भट्टारक महाराज ने तो वैसा नहीं कहा था। इस जन्म में मेरे विवाह करने का त्याग है। ऐसा कहकर वह समस्त कलाओं के विज्ञान की शिक्षा लेती हुई रहने लगी।

एक बार जब वह पूर्ण यौवनवती हो गई तब चैत्र मास में अपने घर के उद्यान में झूला झूल रही थी। उसी समय विजयार्थ पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित किन्नरपुर नगर में रहने वाला कुण्डलमण्डित नामक विद्याधरों का राजा अपनी सुकेशी नामक स्त्री के साथ आकाश में जा रहा था। उसने अनन्तमती को देखा। देखते ही वह विचार करने लगा कि इसके बिना जीवित रहने से क्या प्रयोजन है? ऐसा विचार कर वह अपनी स्त्री को तो घर छोड़ आया और शीघ्र ही आकर विलाप करती हुई अनन्तमती को हरण करके ले गया। जब वह आकाश में जा रहा था तब उसने अपनी स्त्री सुकेशी को वापस आते देखा। देखते ही वह भयभीत हो गया और उसने पर्णलघु विद्या देकर अनन्तमती को महाअटवी में छोड़ दिया। वहाँ उसे रोती देख भीम नाम भीलों का राजा अपनी वसतिका में ले गया और 'मैं तुम्हें प्रधान रानी का पद देता हूँ, तुम मुझे चाहो' ऐसा कहकर रात्रि के समय उसके न चाहने पर भी उपभोग करने को उद्यत हुआ। व्रत के माहात्म्य से वनदेवता ने भीलों के उस राजा की अच्छी पिटाई की। यह कोई देवी है, ऐसा समझकर भीलों का राजा डर गया और उसने वह अनन्तमती बहुत से बनिजारों के साथ ठहरे हुए पुष्पक नामक प्रमुख बनिजारे के लिए दे दी। प्रमुख बनिजारे ने लोभ दिखाकर विवाह करने की इच्छा की, परन्तु अनन्तमती ने उसे स्वीकृत नहीं किया। तदनन्तर वह बनिजारा उसे लाकर अयोध्या की कामसेना नाम की वेश्या को सौंप गया। कामसेना ने उसे वेश्या बनाना चाहा, पर वह किसी भी तरह वेश्या नहीं हुई। तदनन्तर उस वेश्या ने

सिंहाराज नामक राजा के लिए वह अनन्तमती दिखाई और वह राजा रात्रि में उसे बलपूर्वक सेवन करने के लिए उद्यत हुआ, परन्तु उसके व्रत के माहात्म्य से नगरदेवता ने राजा पर उपवास किया, जिससे डरकर उसने उसे घर से निकाल दिया।

खेद के कारण अनन्तमती रोती हुई बैठी थी कि कमलश्री नाम की आर्यिका ने 'यह श्राविका है' ऐसा मानकर बड़े सम्मान के साथ उसे अपने पास रख लिख। तदनन्तर अनन्तमती का शोक भुलाने के लिए प्रियदत्त सेठ बहुत से लोगों के साथ वन्दनाभक्ति करता हुआ अयोध्या गया और अपने साले जिनदत्त सेठ के घर संध्या के समय पहुँचा। वहाँ उसने रात्रि के समय पुत्री के हरण का समाचार कहा। प्रातःकाल होने पर सेठ प्रियदत्त तो वन्दना-भक्ति करने के लिए गये। इधर जिनदत्त सेठ की स्त्री ने अत्यन्त गौरवशाली पाहुने के निमित्त उत्तम भोजन बनाने और घर में चौक पूरने के लिए कमलश्री आर्यिका की श्राविका बुलाया। वह श्राविका सब काम करके अपनी वसतिका में चली गई। वन्दना-भक्ति करके जब प्रियदत्त सेठ वापिस आये, तब चौक देखकर उन्हें अनन्तमती का स्मरण हो आया। उनके हृदय पर गहरी चोट लगी। गद्गद वचनों से अश्रुपात करते हुए उन्होंने कहा कि जिसने यह चौक पूरा है, उसे मुझे दिखलाओ। तदनन्तर वह श्राविका बुलायी गई। पिता और पुत्री का मेल होने पर जिनदत्त सेठ ने बहुत भारी उत्सव किया। अनन्तमती ने कहा कि पिताजी! अब मुझे तप दिला दो। मैंने एक ही भव में संसार की विचित्रता देख ली है। तदनन्तर कमलश्री आर्यिका के पास दीक्षा लेकर उसने बहुत काल तप किया। अन्त में संन्यासपूर्वक मरण कर उसकी आत्मा सहस्रार स्वर्ग में देव हुई।

### उद्दयन राजा की कथा

एक बार अपनी सभा में सम्यग्दर्शन के गुणों का वर्णन करते हुए सौधर्मेन्द्र ने वत्स देश के रौरकपुर नगर के राजा उद्दयन महाराज के निर्विचिकित्सित गुण की बहुत प्रशंसा की। उसकी परीक्षा करने के लिए एक वासव नाम का देव आया। उसने विक्रिया से एक ऐसे मुनि का रूप बनाया, जिसका शरीर उदुम्बर कुष्ठ से गलित हो रहा था। उस मुनि ने विधिपूर्वक खड़े होकर उसी राजा उद्दयन के हाथ से दिया हुआ समस्त आहार और जल माया से ग्रहण किया। पश्चात् अत्यन्त दुर्गन्धित वमन कर दिया। दुर्गन्ध के भय से परिवार के सब लोग भाग गये, परन्तु राजा उद्दयन अपनी रानी प्रभावती के साथ मुनि की परिचर्या करता रहा। मुनि ने उन दोनों पर भी वमन कर दिया। 'हाय! हाय! मेरे द्वारा विरुद्ध आहार दिया गया है, इस प्रकार अपनी निन्दा करते हुए राजा ने मुनि का प्रक्षालन किया। अन्त में, देव अपनी माया को समेटकर असली रूप में प्रकट हुआ और पहले का सब समाचार कहकर तथा राजा की प्रशंसा कर स्वर्ग चला गया। उद्दयन महाराज वर्धमान स्वामी के पादमूल में तप ग्रहण कर मोक्ष गये और रानी प्रभावती तप के प्रभाव से ब्रह्म स्वर्ग में देव हुई।

### रेवती रानी की कथा

विजयार्थ पर्वत की दक्षिण श्रेणिसम्बन्धी मेघकूट नगर का राजा चन्द्रप्रभ अपने चन्द्रशेखर पुत्र के लिए राज्य देकर, परोपकार तथा वन्दना भक्ति के लिए कुछ विद्याओं को धारण करता हुआ दक्षिण मथुरा गया और वहाँ गुप्ताचार्य के समीप क्षुल्लक हो गया। एक समय वह क्षुल्लक, वन्दना-भक्ति के लिए उत्तर मथुरा की ओर जाने लगा। जाते समय उसने गुप्ताचार्य से पूछा कि क्या किसी से कुछ कहना है? भगवान् गुप्ताचार्य ने कहा कि सुव्रतमुनि को वन्दना और वरुणराजा की महारानी के लिए आशीर्वाद कहना। क्षुल्लक ने तीन बार पूछा फिर भी उन्होंने इतना ही कहा। तदनन्तर क्षुल्लक ने कहा कि वहाँ ग्यारह अंग के धारक भव्यसेनाचार्य तथा अन्य धर्मात्मा लोग भी रहते हैं, उनका आप नाम भी नहीं लेते हैं। उसमें कुछ कारण अवश्य होगा, ऐसा विचार कर क्षुल्लक उत्तर मथुरा गया। वहाँ जाकर उसने सुव्रतमुनि के लिए भट्टारक की वन्दना कही। सुव्रतमुनि ने परम वात्सल्यभाव दिखलाया। उसे देखकर वह भव्यसेन की वसतिका में गया। क्षुल्लक के वहाँ पहुँचने पर भव्यसेन ने उससे सम्भाषण भी नहीं किया। भव्यसेन शौच के लिए बाहर जा रहे थे, सो क्षुल्लक उनका कमण्डलु लेकर उनके साथ बाह्यभूमि गया और विक्रिया से उसने आगे ऐसा मार्ग दिखाया जो कि हरे-हरे कोमल तृणों के अङ्कुरों से आच्छादित था। उस मार्ग को देखकर क्षुल्लक ने कहा भी कि आगम में ये सब जीव कहे गये हैं। भव्यसेन आगम पर अरुचि-अश्रद्धा दिखाते हुए तृणों पर चले गये। क्षुल्लक ने विक्रिया से कमण्डलु का पानी सुखा दिया। जब शुद्धि का समय आया, तब कमण्डलु में पानी नहीं है तथा कहीं कोई विक्रिया भी नहीं दिखाई देती है, यह देख वे आश्चर्य में पड़ गये। तदनन्तर उन्होंने स्वच्छ सरोवर में उत्तम मिट्टी से शुद्धि की। इन सब क्रियाओं से उन्हें मिथ्यादृष्टि जानकर क्षुल्लक ने भव्यसेन का अभव्यसेन नाम रख दिया।

तदनन्तर दूसरे दिन क्षुल्लक ने पूर्व दिशा में पद्मासन पर स्थित चार मुखों सहित यज्ञोपवीत आदि से युक्त तथा देव और दानवों से वन्दित ब्रह्मा का रूप दिखाया। राजा तथा भव्यसेन आदि लोग वहाँ गये, परन्तु रेवती रानी लोगों से प्रेरित होने पर भी नहीं गयी। वह यही कहती रही कि यह ब्रह्म नाम का देव कौन है? इसी प्रकार दक्षिण दिशा में उसने गरुड़ के ऊपर आरूढ़, चार भुजाओं सहित तथा गदा शंख आदि के धारक नारायण का रूप दिखाया। पश्चिम दिशा में उसने बैल पर आरूढ़ तथा अर्धचन्द्रजटाजूट पार्वती और गणों से सहित शङ्कर का रूप दिखाया। उत्तर दिशा में उसने समवसरण के मध्य में आठ प्रातिहार्यों सहित सुरनर, विद्याधर और मुनियों के समूह से वन्द्यमान पर्यङ्कासन सहित तीर्थङ्कर देव का रूप दिखाया। वहाँ सब लोग गये, परन्तु रेवती रानी लोगों के द्वारा प्रेरणा की जाने पर भी नहीं गयी। वह यही कहती रही कि नारायण नौ होते हैं, रुद्र ग्यारह ही होते हैं और तीर्थङ्कर चौबीस ही होते हैं, ऐसा जिनागम में कहा गया है। और वे सब हो



चुके हैं। यह तो कोई मायावी है। दूसरे दिन चर्या के समय उसने एक ऐसे क्षुल्लक का रूप बनाया, जिसका शरीर बीमारी से क्षीण हो गया था। रेवती रानी ने जब यह समाचार सुना, तब वह भक्तिपूर्वक उसे उठाकर ले गयी। उसका उपचार किया और पथ्य कराने के लिए उद्यत हुई। उस क्षुल्लक ने सब आहार कर दुर्गन्ध से युक्त वमन किया। रानी ने वमन को दूर कर कहा कि 'हाय मैंने प्रकृति के विरुद्ध अपथ्य आहार दिया।' रेवती रानी के उक्त वचन सुनकर क्षुल्लक ने सन्तोष से सब माया को संकोच कर उसे गुप्ताचार्य को परोक्ष वन्दना कराकर, उनका आशीर्वाद कहा और लोगों के बीच उसकी अमूढदृष्टि की खूब प्रशंसा की। यह सब कर क्षुल्लक अपने स्थान पर चला गया। राजा वरुण शिवकीर्ति पुत्र के लिए राज्य देकर तथा तप ग्रहण कर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ तथा रेवती रानी भी तप कर ब्रह्म स्वर्ग में देव हुई।

### जिनेन्द्रभक्त सेठ की कथा

सुराष्ट्र देश के पाटलिपुत्र नगर में राजा यशोधर रहता था। उसकी रानी का नाम सुसीमा था। उन दोनों के सुवीर नाम का पुत्र था। सुवीर सप्तव्यसनों से अभिभूत था तथा ऐसे ही चोर पुरुष उसकी सेवा करते थे। उसने कानों कान सुना कि पूर्व गौड देश की ताम्रलिप्त नगरी में जिनेन्द्रभक्त सेठ के सात खण्ड वाले महल के ऊपर अनेक रक्षकों से युक्त श्री पाश्र्वनाथ भगवान् की प्रतिमा पर जो छत्रत्रय लगा है, उस पर एक विशेष प्रकार की अमूल्य वैडूर्यमणि लगा हुआ है। लोभवश उस सुवीर ने अपने साथियों से पूछा कि क्या कोई उस मणि को लाने में समर्थ है? सूर्य नामक चोर ने गला फाड़कर कहा कि यह तो क्या है, मैं इन्द्र के मुकुट का मणि भी ला सकता हूँ। इतना कहकर वह कपट से क्षुल्लक बन गया और अत्यधिक कायक्लेश से ग्राम तथा नगरों में क्षोभ करता हुआ क्रम से ताम्रलिप्त नगरी पहुँच गया। प्रशंसा से क्षोभ को प्राप्त हुए जिनेन्द्रभक्त सेठ ने जब सुना तब वह जाकर दर्शन कर वन्दना कर तथा वार्तालाप कर उस क्षुल्लक को अपने घर ले आया। उसने पाश्र्वनाथ देव के उसे दर्शन कराये और माया से न चाहते हुए भी उसे मणि का रक्षक बनाकर वहीं रख लिया।

एक दिन क्षुल्लक से पूछकर सेठ समुद्रयात्रा के लिए चला और नगर से बाहर निकलकर ठहर गया। वह चोर क्षुल्लक घर के लोगों को सामान ले जाने में व्यग्र जानकर आधी रात के समय उस मणि को लेकर चलता बना। मणि के तेज से मार्ग में कोतवालों ने उसे देख लिया और पकड़ने के लिए उसका पीछा किया। कोतवालों से बचकर भागने में असमर्थ हुआ वह चोर क्षुल्लक सेठ की ही शरण में जाकर कहने लगा कि मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। कोतवालों का कलकल शब्द सुनकर तथा पूर्वापर विचार कर सेठ ने जान लिया कि यह चोर है, परन्तु धर्म को उपहास से बचाने के लिए उसने कहा कि यह मेरे कहने से ही रत्न लाया है, आप लोगों ने अच्छा नहीं किया, जो इस महातपस्वी को चोर घोषित किया। तदनन्तर सेठ के वचन को प्रमाण मानकर कोतवाल चले गये और सेठ ने उसे रात्रि के समय निकाल दिया। इसी प्रकार अन्य सम्यग्दृष्टि को भी असमर्थ और अज्ञानी जनों से आये हुए धर्म के दोष का आच्छादन करना चाहिए।

### वारिषेण की कथा

मगधदेश के राजगृह नगर में राजा श्रेणिक रहता था। उसकी रानी का नाम चेलिनी था। उन दोनों के वारिषेण नाम का पुत्र था। वारिषेण उत्तम श्रावक था। एक बार वह उपवास धारण कर चतुर्दशी की रात्रि में श्मसान में कायोत्सर्ग से खड़ा था। उसी दिन बगीचे में गयी हुई मगधसुन्दरी नामक वेश्या ने श्रीकीर्ति सेठानी के द्वारा पहना हुआ हार देखा। तदनन्तर उस हार को देखकर 'इस आभूषण के बिना मुझे जीवन से क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह शय्या पर पड़ गयी। उस वेश्या में आसक्त विद्युच्चर चोर जब रात्रि के समय उसके घर आया तब उसे शय्या पर पड़ी देख बोला कि प्रिय तरह क्यों पड़ी हो? वेश्या ने कहा कि 'यदि श्रीकीर्ति सेठानी का हार मुझे देते हो तो मैं जीवित रहूंगी और तुम मेरे पति होओगे अन्यथा नहीं।' वेश्या के ऐसे वचन सुनकर तथा उसे आश्वासन देकर विद्युच्चर चोर आधी रात के समय श्रीकीर्ति सेठानी के घर गया और अपनी चतुराई से हार चुराकर बाहर निकल आया। हार के प्रकाश से 'यह चोर है' ऐसा जानकर गृह के रक्षकों तथा कोतवालों ने उसे पकड़ना चाहा। जब वह चोर भागने में असमर्थ हो गया तब वारिषेणकुमार के आगे उस हार को डालकर छिपकर बैठ गया। कोतवाल ने उस हार को वारिषेण के आगे पड़ा देखकर राजा श्रेणिक से कह दिया कि 'राजन्! वारिषेण चोर है।' यह सुनकर राजा ने कहा कि इस मूर्ख का मस्तक छेदकर लाओ। चाण्डाल ने वारिषेण का मस्तक काटने के लिए जो तलवार चलाई तो वह उसके गले में फूलों की माला बन गयी। उस अतिशय को सुनकर राजा श्रेणिक ने जाकर वारिषेण से क्षमा मांगी। विद्युच्चर चोर ने अभयदान पाकर राजा से जब अपना सब वृत्तान्त कहा तब वह वारिषेण को घर ले जाने के लिए उद्यत हुआ। परन्तु वारिषेण ने कहा कि अब तो मैं पाणिपात्र में भोजन करूंगा अर्थात् दिगम्बर मुनि बनूंगा। तदनन्तर वह सूरसेन गुरु के समीप मुनि हो गया। एक समय वारिषेण मुनि राजगृह के समीपवर्ती पलाशकूट ग्राम में चर्या के लिए प्रविष्ट हुए। वहाँ राजा श्रेणिक के अग्रिभूति मन्त्री के पुत्र पुष्पडाल ने उन्हें पडगाहा। चर्या कराने के बाद वह अपनी सोमिल्ला नामक स्त्री से पूछकर स्वामी का पुत्र तथा बाल्यकाल का मित्र होने के कारण कुछ दूर भेजने के लिए वारिषेण के साथ चला गया। अपने लौटने के अभिप्राय से वह क्षीरवृक्ष आदि को दिखाता तब बार-बार मुनि को वन्दना करता था। परन्तु मुनि हाथ पकड़कर उसे साथ ले गये और धर्म का विशिष्ट उपदेश सुनाकर तथा वैराग्य उपजाकर उन्होंने उसे तप ग्रहण करा दिया। तप धारण करने पर भी वह सोमिल्ला स्त्री को नहीं भूलता था।

पुष्पडाल और वारिषेण दोनों ही मुनि बारह वर्ष तक तीर्थयात्रा कर भगवान् वर्धमान स्वामी के समवसरण में पहुँचे। वहाँ वर्धमान स्वामी और पृथ्वी से सम्बन्ध रखने वाला एक गीत देवों के द्वारा गाया जा रहा था। उसे पुष्पडाल ने सुना। गीत का



भाव यह था कि जब पति प्रवास को जाता है तब स्त्री खिन्नचित्त होकर मैली कुचैली रहती है। परन्तु जब वह घर छोड़कर ही चल देता है, तब वह कैसे जीवित रह सकती है?

पुष्पडाल ने यह गीत अपने तथा सोमिल्ला के सम्बन्ध में लगा लिया इसलिए वह उत्कण्ठित होकर चलने लगा। वारिषेण मुनि यह जानकर उसका स्थितीकरण करने के लिए उसे अपने नगर ले गये। चेलिनी ने उन दोनों मुनियों को देखकर विचार किया कि वारिषेण क्या चारित्र से विचलित होकर आ रहा है? परीक्षा करने के लिए उसने दो आसन दिये- एक सराग और दूसरा वीतराग। वारिषेण ने वीतराग आसन पर बैठते हुए कहा कि हमारा अन्तःपुर बुलाया जावे। महारानी चेलिनी ने आभूषणों से सजी हुई उसकी बत्तीस स्त्रियाँ बुलाकर खड़ी कर दीं। तदनन्तर वारिषेण ने पुष्पडाल से कहा कि 'ये स्त्रियाँ और मेरा युवराज पद तुम ग्रहण करो।' यह सुनकर पुष्पडाल अत्यन्त लज्जित होता हुआ उत्कृष्ट वैराग्य को प्राप्त हुआ तथा परमार्थ से तप करने लगा।

### विष्णुकुमार मुनि की कथा

अवन्ति देश की उज्जयिनी नगरी में श्रीवर्मा राजा राज्य करता था। उसके बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि ये चार मन्त्री थे। यहाँ एक समय शास्त्रों के आधार, दिव्यज्ञानी तथा सात सौ मुनियों से सहित अकम्पनाचार्य आकर उद्यान में ठहर गये। अकम्पनाचार्य ने समस्त संघ को मना कर दिया था कि राजादिक के आने पर किसी के साथ वार्तालाप न किया जावे, अन्यथा समस्त संघ का नाश हो जावेगा।

राजा अपने धवलगृह में बैठा था। वहाँ से उसने पूजा की सामग्री हाथ में लेकर जाते हुए नागरिकों को देखकर मन्त्रियों से पूछा कि ये लोग कहाँ जा रहे हैं, यह यात्रा का समय तो है नहीं? मन्त्रियों ने कहा कि नगर के बाहर उद्यान में बहुत से नग्न साधु आये हैं, ये लोग वहीं जा रहे हैं। राजा ने कहा कि हम भी उन्हें देखने के लिए चलते हैं। ऐसा कहकर राजा मन्त्रियों सहित वहाँ गया। एक-एक कर समस्त मुनियों की वन्दना राजा ने की, परन्तु किसी ने भी आशीर्वाद नहीं दिया। दिव्य अनुष्ठान के कारण ये साधु अत्यन्त निःस्पृह हैं, ऐसा विचार कर जब राजा लौटा तो खोटा अभिप्राय रखने वाले मन्त्रियों ने यह कहकर उन मुनियों का उपहास किया कि ये बैल हैं, कुछ भी नहीं जानते हैं, मूर्ख हैं, इसलिए छल से मौन लेकर बैठे हैं। ऐसा कहते हुए मन्त्री राजा के साथ जा रहे थे कि उन्होंने आगे चर्चा कर आते हुए श्रुतसागर मुनि को देखा। देखकर कहा कि 'यह तरुण बैल पेट भरकर आ रहा है।' यह सुनकर उन मुनि ने राजा के मन्त्रियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें हरा दिया। वापिस आकर मुनि ने ये सब समाचार अकम्पनाचार्य से कहे। अकम्पनाचार्य ने कहा कि तुमने समस्त संघ को मरवा दिया। यदि शास्त्रार्थ के स्थान पर जाकर तुम रात्रि को अकेले खड़े रहते हो तो संघ जीवित रह सकता है और तुम्हारे अपराध की शुद्धि हो सकती है। तदनन्तर श्रुतसागर मुनि वहाँ जाकर कायोत्सर्ग से स्थित हो गये।

अत्यन्त लज्जित और क्रोध से भरे हुए मन्त्री राजा में समस्त संघ को मारने के लिए जा रहे थे कि उन्होंने मार्ग में कायोत्सर्ग से खड़े हुए उन मुनि को देखकर विचार किया कि जिसने हम लोगों का पराभव किया है, वही मारने के योग्य है। ऐसा विचार कर चारों मन्त्रियों ने मुनि को मारने के लिए एक साथ खड्ग ऊपर उठाये, परन्तु जिसका आसन कम्पित हुआ था, ऐसे नगर देवता ने आकर उन सबको उसी अवस्था में कील दिया। प्रातःकाल सब लोगों ने उन मन्त्रियों को उसी प्रकार कीलित देखा। मन्त्रियों की इस कुचेष्टा से राजा बहुत क्रुद्ध हुआ, परन्तु 'ये मन्त्री वंशपरम्परा से चले आ रहे हैं' यह विचार कर उन्हें मारा तो नहीं, सिर्फ गर्दभारोहण आदि कराकर निकाल दिया।

तदनन्तर, कुरुजांगलदेश के हस्तिनागपुर नगर में राजा महापद्म राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। उनके दो पुत्र थे- पद्म और विष्णु। एक समय राजा महापद्म पद्म नामक पुत्र को राज्य देकर विष्णु नामक पुत्र के साथ श्रुतसागरचन्द्र नामक आचार्य के पास मुनि हो गये। वे बलि आदिक आकर पद्मराजा के मन्त्री बन गये। उसी समय कुम्भपुर के दुर्ग में राजा सिंहबल रहता था। वह अपने दुर्ग के बल से राजा पद्म के देश में उपद्रव करता था। राजा पद्म उसे पकड़ने की चिन्ता में दुर्बल होता जाता था। उसे दुर्बल देख एक दिन बलि ने कहा कि देव! दुर्बलता का क्या कारण है? राजा ने उसे दुर्बलता का कारण बताया। उसे सुनकर तथा आज्ञा प्राप्त कर बलि वहाँ गया और अपनी बुद्धि के माहात्म्य से दुर्ग को तोड़कर तथा सिंहबल को लेकर वापस आ गया। उसने राजा पद्म को यह कहकर सिंहबल को सौंप दिया कि यह वही सिंहबल है। राजा पद्म ने सन्तुष्ट होकर कहा कि तुम अपना वाञ्छित वर मांगो। बलि ने कहा कि जब मांगूँगा, तब दिया जावे।

तदनन्तर कुछ दिनों में विहार करते हुए वे अकम्पनाचार्य आदि सातसौ मुनि उसी हस्तिनागपुर में आये। उनके आते ही नगर में हलचल मच गयी। बलि आदि मन्त्रियों ने उन्हें पहचान कर विचार किया कि राजा इनका भक्त है। इस भय से उन्होंने उन मुनियों को मारने के लिए राजा पद्म से अपना पहले का वर मांगा कि हम लोगों को सात दिन का राज्य दिया जावे। तदनन्तर राजा पद्म उन्हें सात दिन का राज्य देकर अन्तःपुर में चला गया। इधर बलि ने आतापनगिरि पर कायोत्सर्ग से खड़े हुए मुनियों को बाड़ी से वेष्टित कर मण्डप लगा यज्ञ करना शुरू किया। झूठे सकौरे, बकरा आदि जीवों के कलेवर तथा धूम आदि के द्वारा मुनियों को मारने के लिए बहुत भारी उपसर्ग किया। मुनि दोनों प्रकार का संन्यास लेकर स्थित हो गये।

तदनन्तर मिथिला नगरी में आधी रात के समय बाहर निकले हुए श्रुतसागरचन्द्र आचार्य ने आकाश में काँपते हुए श्रवण नक्षत्र को देखकर अवधिज्ञान से जानकर कहा कि महामुनियों पर महान् उपसर्ग हो रहा है। यह सुनकर पुष्पधर नामक विद्याधर क्षुल्लक ने पूछा कि 'कहाँ किन पर महान् उपसर्ग हो रहा है?' उन्होंने कहा कि हस्तिनागपुर में अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों पर। उपसर्ग कैसे दूर हो सकता है? ऐसा क्षुल्लक द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि 'धरणीभूषण पर्वत पर विक्रिया ऋद्धि के धारक विष्णुकुमार मुनि स्थित हैं। वे उपसर्ग को नष्ट कर सकते हैं।' यह सुन क्षुल्लक ने उनके पास जाकर सब समाचार कहे। 'मुझे विक्रिया ऋद्धि है क्या?' ऐसा विचारकर विष्णुकुमार मुनि ने अपना हाथ पसारा तो वह पर्वत को भेदकर दूर तक चला गया। पश्चात् विक्रिया का निर्णय कर उन्होंने हस्तिनागपुर जाकर राजा पद्म से कहा कि तुमने मुनियों पर उपसर्ग क्यों कराया? आपके कुल में ऐसा कार्य किसी ने नहीं किया। राजा पद्म ने कहा कि क्या करूँ मैंने पहले इसे वर दे दिया था।

अनन्तर विष्णुकुमार मुनि ने एक बौने ब्राह्मण का रूप बनाकर उत्तम शब्दों द्वारा वेद पाठ करना शुरू किया। बलि ने कहा कि तुम्हें क्या दिया जावे? बौने ब्राह्मण ने कहा कि तीन डग भूमि दे दो। 'पगले ब्राह्मण! देने को तो बहुत है और कुछ मांग' इस प्रकार बार-बार लोगों के कहे जाने पर भी वह तीन डग भूमि ही मांगता रहा। तत्पश्चात् हाथ में संकल्प का जल लेकर जब उसे विधिपूर्वक तीन डग भूमि दे दी गई, तब उसने एक पैर तो मेरु पर रखा, दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर रखा और तीसरे पैर के द्वारा देव विमानों में क्षोभ उत्पन्न कर उसे बलि की पीठ पर रखा तथा बलि को बांधकर मुनियों का उपसर्ग दूर किया। तदनन्तर वे चारों मन्त्री राजा पद्म के भय से आकर विष्णुकुमार मुनि तथा अकम्पनाचार्य आदि मुनियों के चरणों में संलग्न हुए- चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगे। वे मन्त्री श्रावक बन गये।

### वज्रकुमार मुनि की कथा

हस्तिनापुर में बल नामक राजा रहता था। उसके पुरोहित का नाम गरुड़ था। गरुड़ के एक सोमदत्त नाम का पुत्र था। उसने समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर अहिच्छत्रपुर में रहने वाले अपने मामा सुभूति के पास जाकर कहा कि मामाजी! मुझे दुर्मुख राजा के दर्शन करा दो। परन्तु गर्व से भरे हुए सुभूति ने उसे राजा के दर्शन नहीं कराये। तदनन्तर हठधर्मी होकर वह स्वयं ही राजसभा में चला गया। वहाँ उसने राजा के दर्शन कर आशीर्वाद दिया और समस्त शास्त्रों की निपुणता को प्रकट कर मन्त्री पद प्राप्त कर लिया। उसे वैसा देख सुभूति माता ने अपनी यज्ञदत्ता नाम की पुत्री विवाह के लिए दे दी।

एक समय वह यज्ञदत्ता जब गर्भिणी हुई तब उसे वर्षाकाल में आम्रफल खाने का दोहला हुआ। पश्चात् बाग-बगीचों में आम्रफलों को खोजते हुए सोमदत्त ने देखा कि जिस आम्रवृक्ष के नीचे सुमित्राचार्य ने योग ग्रहण किया है, वह वृक्ष नाना फलों से फला हुआ है। उसने उस वृक्ष से फल लेकर आदमी के हाथ घर भेद दिये और स्वयं धर्मश्रवण कर संसार से विरक्त हो गया तथा तप धारण कर आगम का अध्ययन करने लगा। जब वह अध्ययन कर परिपक्व हो गया तब नाभिगिरि पर्वत पर आतापन योग से स्थित हो गया।

इधर यज्ञदत्ता ने पुत्र को जन्म दिया। पति के मुनि होने का समाचार सुनकर वह अपने भाई के पास चली गई। पुत्र की शुद्धि को जानकर वह अपने भाइयों के साथ नाभिगिरि पर्वत पर गयी। वहाँ आतापन योग में स्थित सोमदत्त मुनि को देखकर अत्यधिक क्रोध के कारण उसने वह बालक उनके पैरों में रख दिया और गालियाँ देकर स्वयं घर चली गयी।

उसी समय अमरावती नगरी का रहने वाला दिवाकर देव नाम का विद्याधर जो कि अपने पुरन्दर नामक छोटे भाई के द्वारा राज्य से निकाल दिया गया था, अपनी स्त्री के साथ मुनि की वन्दना करने के लिए आया था। उसने उस बालक को उठाकर अपनी स्त्री को सौंप दिया तथा उसका नाम वज्रकुमार रखकर चला गया। वह वज्रकुमार कनक नगर में विमल वाहन नामक अपने मामा के समीप समस्त विद्याओं में पारगामी होकर क्रम-क्रम से तरुण हो गया।

तत्पश्चात् गरुड़वेग और अंगवती की पुत्री पवनवेगा हेमन्त पर्वत पर बड़े श्रम से प्रज्ञप्ति नाम की विद्या सिद्ध कर रही थी। उसी समय वायु से कम्पित बेरी का एक पैना कांटा उसकी आँख में जा लगा। उसकी पीड़ा से चित्त चञ्चल हो जाने से उसे विद्या सिद्ध नहीं हो रही थी। अनन्तर वज्रकुमार ने उसे उस अवस्था में देख कुशलतापूर्वक वह कांटा निकाल दिया। कांटा निकल जाने से उसका चित्त स्थिर हो गया तथा विद्या सिद्ध हो गयी। विद्या सिद्ध होने पर उसने कहा कि आपके प्रसाद से यह विद्या सिद्ध हुई है इसलिए आप ही मेरे भ्राता हो। ऐसा कर उसने वज्रकुमार के साथ विवाह कर लिया।

एक दिन वज्रकुमार ने दिवाकर देव विद्याधर से कहा 'तात! मैं किसका पुत्र हूँ, सत्य कहिये। उसके कहने पर ही मेरी भोजनादि में प्रवृत्ति होगी।' दिवाकर देव ने पहले का सब वृत्तान्त सच-सच कह दिया। उसे सुनकर वह अपने पिता के दर्शन के करने के लिए भाइयों के साथ मथुरा नगरी की दक्षिण गुहा में गया। वहाँ दिवाकर देव ने वन्दना कर वज्रकुमार से पिता सोमदत्त को सब समाचार कह दिया। समस्त भाइयों को बड़े कष्ट से विदा कर वज्रकुमार मुनि हो गया।

इसी बीच में मथुरा में एक अन्य कथा घटी। वहाँ पूतिगन्ध राजा राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम उर्विला था। उर्विला सम्यग्दृष्टि तथा जिनधर्म की प्रभावना में अत्यन्त लीन थी। वह प्रतिवर्ष अष्टाह्निक पर्व में तीन बार जिनेन्द्र देव की रथयात्रा

करती थी। उसी नगरी में एक सागरदत्त सेठ रहता था, उसकी सेठानी का नाम समुद्रदत्ता था। उन दोनों के एक दरिद्रा नाम की पुत्री हुई।

सागरदत्त के मर जाने पर एक दिन दरिद्रा दूसरे के घर में फेंके हुए भात के साथ खा रही थी। उसी समय चर्या के लिए प्रविष्ट हुए दो मुनियों ने उसे वैसा करते हुए देखा। तदनन्तर छोटे मुनि ने बड़े मुनि से कहा कि 'हाय बेचारी बड़े कष्ट से जीवन बिता रही है।' यह सुनकर बड़े मुनि ने कहा कि 'यह इसी नगरी में राजा की प्रिय पट्टरानी होगी।' भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए एक बौद्ध साधु ने मुनिराज के वचन सुनकर विचार किया कि मुनि का कथन अन्यथा नहीं होगा, इसलिए वह उसे अपने विहार में ले गया और वहाँ अच्छे आहार से उसका पालन-पोषण करने लगा।

एक दिन भरी जवानी में वह चैत्रमास के समय झूला झूल रही थी कि उसे देखकर राजा अत्यन्त विरहावस्था को प्राप्त हो गया। अनन्तर मन्त्रियों ने उसके लिए बौद्ध साधु से याचना की। उसने कहा कि यदि राजा हमारे धर्म को ग्रहण करे तो मैं इसे दे दूंगा। राजा ने वह सब स्वीकृत कर उसके साथ विवाह कर लिया। और वह उसकी अत्यन्त प्रिय पट्टरानी बन गयी।

फाल्गुन मास की नन्दीश्वर यात्रा में उर्विला ने रथयात्रा की। उसे देख उस पट्टरानी ने राजा से कहा कि 'देव! मेरे बुद्ध भगवान् का रथ इस समय नगर में पहले घूमे।' राजा ने कह दिया कि 'ऐसा ही होगा।' तदनन्तर उर्विला ने कहा कि 'यदि मेरा रथ पहले घूमता है तो मेरी आहार में प्रवृत्ति होगी, अन्यथा नहीं।' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह क्षत्रिय गुहा में सोमदत्त आचार्य के पास गयी। उसी समय वज्रकुमार मुनि की वन्दना-भक्ति के लिये दिवाकर देव आदि विद्याधर आये थे। वज्रकुमार मुनि ने यह सब वृत्तान्त सुनकर उनसे कहा कि आप लोगों को प्रतिज्ञा पर आरूढ़ उर्विला की रथयात्रा करानी चाहिए। तदनन्तर उन्होंने बुद्धदासी का रथ तोड़कर बड़ी विभूति के साथ उर्विला की रथयात्रा कराई। उस अतिशय को देखकर प्रतिबोध को प्राप्त हुई बुद्धदासी तथा अन्य लोग जैनधर्म में लीन हो गये ॥२०॥

+ अंगहीन सम्यक्त्व व्यर्थ है -

## नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥२१॥

**अन्वयार्थ :** [अङ्गहीनम्] अंगों से हीन [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन [जन्मसन्ततिम्] संसार की सन्तति को [छेत्तुम्] नष्ट करने के लिए [अलं न] समर्थ नहीं है, [हि] क्योंकि [अक्षरन्यूनः] एक अक्षर से भी हीन [मन्त्रः] मन्त्र [विषवेदानाम्] विष की पीड़ा को [न निहन्ति] नष्ट नहीं करता ॥२१॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

ननु सम्यग्दर्शनस्याष्टभिरङ्गैः प्ररूपितैः किं प्रयोजनम्? तद्विकलव्याप्यस्य संसारोच्छेदनसामर्थ्यसम्भवादित्याशङ्क्याह-

'दर्शनं="" कर्तुं। **जन्मसन्ततिं** संसारप्रबन्धम् । **छेत्तुम्** उच्छेदयितुं 'नालं' न समर्थम् । कथम्भूतं सत् **अङ्गहीनम्** अङ्गैर्निःशङ्कितत्वादित्स्वरूपैर्हीनं विकलम् । अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थं दृष्टान्तमाह- **न हि** इत्यादि । सर्पादिदृष्टस्य प्रसृतसर्वाङ्गविषवेदनस्य तदपहरणार्थं प्रयुक्तो मन्त्रोऽक्षरेणापि न्यूनो हीनो **न हि** नैव **निहन्ति** स्फोटयति विषवेदनाम् । ततः सम्यग्दर्शनस्य संसारोच्छेदसाधनेऽष्टाङ्गोपेतत्वं युक्तमेव त्रिमूढापोढत्ववत् ॥२१॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जिन निःशङ्कितादि अंगों का वर्णन ऊपर किया है, उन अंगों से रहित विकलांग सम्यग्दर्शन संसार परम्परा का जन्म-मरण की सन्तति का नाश करने में समर्थ नहीं हो सकता । इसी अर्थ का समर्थन करते हुए मन्त्र का दृष्टान्त देते हैं -- जिस प्रकार किसी मनुष्य को सर्प ने काट लिया और विष की वेदना सारे शरीर में व्याप्त हो गई तो उस विष वेदना को दूर करने के लिए अर्थात् विष उतारने के लिए मान्त्रिक मन्त्र का प्रयोग करता है । यदि उस मन्त्र में एक अक्षर भी कम हो जाय तो जिस प्रकार उस मन्त्र से विष की वेदना शमित-दूर नहीं हो सकती, उसी प्रकार संसार-परिपाटी का उच्छेद करने के लिए आठ अंगों से परिपूर्ण सम्यग्दर्शन ही समर्थ है, एक दो आदि अंगों से रहित विकलांग सम्यग्दर्शन नहीं ।

+ लोक मूढ़ता -

## आपगा-सागर-स्नान-मुच्यः सिकताश्मनाम् गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

**अन्वयार्थ :** [आपगा] नदी, [सागर] सागर में [स्नानम्] स्नान करना, [सिकताश्मनाम्] बालू पत्थर के [उच्यः] ढेर लगाना, [गिरिपातः] पर्वत से गिरकर मरने से [च] और [अग्निपातः] अग्नि में जलकर मरने में धर्म मानना वह [लोकमूढं]

लोक मूढता [निगद्यते] कहा जाता है ॥२२॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

कानि पुनस्तानि त्रीणि मूढानि यदमूढत्वं तस्य संसारोच्छेदसाधनं स्यादिति चेदुच्यते, लोकदेवतापाखण्डिमूढभेदात् त्रीणि मूढानि भवन्ति। तत्र लोकमूढं तावद्वर्णयन्नाह-

**लोकमूढं** लोकमूढत्वम् ? किम् ? **आपगासागरस्नानम्** आपगा नदी सागरः समुद्रः तत्र श्रेयः साधनाभिप्रायेण यत्स्नानं न पुनः शरीरप्रक्षालनाभिप्रायेण । तथा **उच्चयः** स्तूपविधानम् । केषाम् ? सिकताशमनां सिकता वालुका, अश्मानः पाषाणस्तेषां । तथा **गिरिपातो** भृगुपातादिः । **अग्निपातश्च** अग्निप्रवेशः । एवमादि सर्वं लोकमूढं **निगद्यते** प्रतिपाद्यते ॥२२॥

**आर्यिका-आदिमति :**

नदी, सागरादि में धर्मबुद्धि कल्याण का साधन समझकर, स्नान करना लोकमूढता कही गई है, किन्तु शरीर प्रक्षालन के अभिप्राय से स्नान करना लोकमूढता नहीं है । तथा बालू और पत्थरों के ऊँचे ढेर लगाकर स्तूप बनाना, पर्वतों से भृगुपात करना अर्थात् पर्वतों की चोटी से गिरकर आत्मघात करना, अग्नि में प्रविष्ट हो जाना, इत्यादि कार्यों के करने में धर्म मानना वह लोकमूढता है ।

+ देव मूढता -

**वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः  
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥२३॥**

**अन्वयार्थ :** [वरोपलिप्सया] वरदान प्राप्त करने की इच्छा से [आशावान्] आशा से युक्त हो [रागद्वेषमलीमसाः] रागद्वेष से मलिन [देवताः] देवों की [यत्] जो [उपासीत] आराधना की जाती है, [तत्] वह [देवतामूढम्] देवमूढता [उच्यते] कही जाती है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

देवतामूढं व्याख्यातुमाह -

**देवतामूढं**='तदुच्यते'। **यदुपासीत** आराधयेत् । काः देवताः । कथम्भूताः **रागद्वेषमलीमसाः** रागद्वेषाभ्यां मलीमसाः मलिनाः । किंविशिष्टाः ? **आशावान्** ऐहिकफलाभिलाषी । कया ? **वरोपलिप्सया** वरस्य वाञ्छितफलस्य, उपलिप्सया प्राप्तुमिच्छया । नन्वेवं श्रावकादीनां शासनदेवतापूजाविधानादिकं सम्यग्दर्शनम्लानताहेतुः प्राप्नोतीति चेत् एवमेतत् यदि वरोपलिप्सया कुर्यात् । यदा तु शासनसक्तदेवतात्वेन तासां तत्करोति तदा न तन्म्लानताहेतुः । तत् कुर्वतश्च दर्शनपक्षपाताद्वरमयाचितमपि ताः प्रयच्छन्त्येव । तदकरणे चेष्टदेवता विशेषात् फलप्राप्तिर्विघ्नतो झटिति न सिद्ध्यति । न हि चक्रवर्तिपरिवारापूजने सेवकानां चक्रवर्तिनः सकाशात् तथा फलप्राप्तिर्दृष्टा ॥२३॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जो पुरुष इच्छित फल को प्राप्त करने की अभिलाषा से राग-द्वेष से मलिन देवोंकी उपासना करता है, उसकी इस उपासना को देवमूढता कहते हैं। यहाँ कोई प्रश्न करता है कि यदि ऐसा है तो श्रावक आदि का शासन देवों के पूजाविधान आदि करना सम्यग्दर्शन की मलिनता को प्राप्त करने का कारण होता है । इसका उत्तर यह है कि यदि धन, पुत्रादि वाञ्छित फल प्राप्त करने की इच्छा से किया जाता है, तो अवश्य ही सम्यग्दर्शन की मलिनता का कारण है। किन्तु यदि जैनशासन के संरक्षण एवं संवर्धन के निमित्त निरत उन देवों की उपासना की जाती है, अर्थात् उनका यथायोग्य आदर-सत्कार किया जाता है, तब वह सम्यग्दर्शन की मलिनता का कारण नहीं होता। ऐसा करने वाले पुरुष को सम्यग्दर्शन का पक्ष होने के कारण देवता बिना याचना किये भी वाञ्छित फल प्रदान कर देते हैं । यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो इष्ट देवता विशेष से वाञ्छित फल की प्राप्ति निर्विघ्नरूप से शीघ्र नहीं होती, क्योंकि चक्रवर्ती के परिवार (परिकर) की पूजा के बिना सेवकों को चक्रवर्ती से फल की प्राप्ति नहीं देखी जाती है ।

+ अब सम्यग्दर्शन के स्वरूप में पाखण्डि मूढता का स्वरूप दिखाते हुए कहते हैं- -

**सग्रन्थारम्भहिसानां संसारावर्तवर्तिनाम्  
पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम् ॥२४॥**



**अन्वयार्थ :** [सग्रन्थारम्भहिंसानां] परिग्रह, आरम्भ और हिंसा से सहित तथा [संसारावर्तवर्तिनाम्] संसारभ्रमण के कारणभूत कार्यो में लीन [पाषण्डिनां] अन्य कुलिङ्गियों को [पुरस्कारो] अग्रसर करना, [पाषण्डिमोहनम्] पाषण्डिमूढ़ता-गुरुमूढ़ता [ज्ञेयं] जाननी चाहिये ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानीं सदृशस्वरूपे पाषण्डिमूढस्वरूपं दर्शयन्नाह-

**पाषण्डिमोहनं । ज्ञेयं ज्ञातव्यम् । कोऽसौ ? पुरस्कारः** प्रशंसा । केषाम् ? **पाषण्डिनां** मिथ्यादृष्टिलिङ्गिनाम् । किंविशिष्टानाम् ? **सग्रन्थारम्भहिंसानां** ग्रन्थाश्च दासीदासादयः, आरम्भाश्च कृष्णादयः हिंसाश्च अनेकविधाः प्राणिविधाः सह ताभिर्वर्तन्त इत्येवं ये तेषां । तथा **संसारावर्तवर्तिनां** संसारे आवर्तो भ्रमणं येभ्यो विवाहादिकर्मभ्यस्तेषु वर्तते इत्येवं शीलास्तेषां, एतैस्त्रिभिर्मूढैरपोढत्वसम्पन्नं सम्यग्दर्शनं संसारोच्छित्तिकारणम् अस्मयत्वसम्पन्नवत् ॥२४॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जो दासी-दास आदि परिग्रह, खेती आदि आरम्भ और अनेक प्रकार की प्राणिवधरूप हिंसा से सहित हैं तथा जो संसार-भ्रमण कराने वाले , ऐसे साधुओं की प्रशंसा करना, उन्हें धार्मिक कार्यो में अग्रसर करना पाखण्ड मूढ़ता जाननी चाहिये। पाखण्ड का अर्थ मिथ्या वेषधारी गुरु होता है ।मूढ़ता अविवेक को कहते हैं। इस प्रकार गुरु के विषय में जो अविवेक है, वह पाखण्ड मूढ़ता है । उपर्युक्त तीन मूढ़ताओं से रहित सम्यग्दर्शन ही संसार के उच्छेदन का कारण है। जैसा कि आठ मदों से रहित सम्यग्दर्शन संसार के नाश का कारण है ।

+ आठमद के नाम -

**ज्ञानं पूजां कुलं जातिं, बलमृद्धिं तपो वपुः  
अष्टावाश्रित्य मानित्वं, स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥**

**अन्वयार्थ :** अपने [ज्ञानं] ज्ञान, [पूजां] पूजा, [कुलं] कुल, [जातिं] जाति, [बलाम्] बल, [ऋद्धिम्] वैभव, [तप] तप [वपुः] और [वपुः] रूप इन [अष्टौ] आठों का [आश्रित्य] आश्रय लेकर [मानित्वम्] गर्वित होने को [गतस्मयाः] गर्व से रहित गणधर आदिक [स्मयम्] गर्व / मद [आहुः] कहते हैं ॥२५॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

कः पुनरयं स्मयः कतिप्रकारश्चेत्याह-

**आहु** ब्रुवन्ति । कम् ? **स्मयम्** । के ते ? **गतस्मयाः** नष्टमदाः जिनाः । किं तत् ? **मानित्वं** गर्वित्वम् । किं कृत्वा ? अष्टावाश्रित्य । तथा हि ज्ञानमाश्रित्य ज्ञानमदो भवति एवं पूजां कुलं जातिं बलम् ऋद्धिमैश्वर्यं तपो वपुः शरीरसौन्दर्यमाश्रित्य पूजादिमदो भवति । ननु शिल्पमदस्य नवमस्य प्रसक्तेरष्टाविति सङ्ख्यानुपपन्ना इत्यप्युक्तं तस्य ज्ञाने एवान्तर्भावात् ॥२५॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जिनका मद नष्ट हो गया है, ऐसे जिनेन्द्रदेव ज्ञानादिक आठ वस्तुओं के आश्रय से जो गर्व उत्पन्न होता है, उसे मद कहते हैं । अपने क्षायोपशमिक ज्ञान का घमण्ड करना ज्ञानमद कहलाता है । अपनी पूजा-प्रतिष्ठा-सम्मान आदि का गर्व करना पूजामद है । पिता के वंश को कुल कहते हैं । इसका अहंकार करना कुल मद है । माता के वंश को जाति कहते हैं, जाति का गर्व करना जातिमद है । शारीरिक शक्ति का गर्व करना बलमद है। बुद्धि या धन-वैभव का गर्व करना ऋद्धिमद है । अनशनादि तपों का अहंकार करना तपमद है । स्वस्थ-सुन्दर शरीर को पाकर उसका घमण्ड करना शरीरमद है ।

यहाँ कोई शंका करता है कि कला-कौशल का भी तो मद होता है, इसलिए नौ मद होगे ये । अतः आपके द्वारा बतायी गयी मदों की आठ संख्या सिद्ध नहीं होती ? इसके उत्तर में टीकाकार का कहना है कि शिल्प का मद ज्ञानमद में ही गर्भित हो जाता है । इसलिए नौवाँ मद मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

+ मद करने से हानि -

**स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः  
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥**

**अन्वयार्थ :** [स्मयेन] उपर्युक्त मद से [गर्विताशयोः] गर्व-चित्त होता हुआ [यः] जो पुरुष [धर्मस्थान्] रत्नत्रय रूप धर्म में स्थित [अन्यान्] अन्य जीवों को [अत्येति] तिरस्कृत करता है [सः] वह [आत्मीयं] अपने [धर्मम्] धर्म को [अत्येति] तिरस्कृत करता है [यतः] क्योंकि [धार्मिकैः विना] धर्मात्माओं के बिना [धर्मः] धर्म [न] नहीं होता है ॥२६॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अनेनाष्टविधमदेन चेष्टमानस्य दोषं दर्शयन्नाह -

**स्मयेन** उक्तप्रकारेण । **गर्विताशयो** दर्पितचित्तः । **यो** जीवः । **धर्मस्थान** रत्नत्रयोपेतानन्यान् । **अत्येति** अवधीरयति अवज्ञयातिक्रामतीत्यर्थः । **सोऽत्येति** अवधीरयति । कम् ? **धर्म** रत्नत्रयम् । कथम्भूतम् ? **आत्मीयं** जिनपतिप्रणीतम् । यतो धर्मो **धार्मिकैः** रत्नत्रयानुष्ठायिभिर्विना न विद्यते ॥२६॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जिन आठ-मदों का पहले वर्णन किया गया है, उनके विषय में अहङ्कार को करता हुआ जो पुरुष रत्नत्रय-रूप धर्म में स्थित अन्य धर्मात्माओं का तिरस्कार करता है, अवज्ञा के द्वारा उनका उल्लङ्घन करता है, वह जिनेन्द्र प्रणीत अपने ही रत्नत्रय धर्म का तिरस्कार करता है, क्योंकि रत्नत्रय का परिपालन करने वाले धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं रह सकता ।

+ पाप त्याग का उपदेश -

**यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्  
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥**

**अन्वयार्थ :** यदि [पापनिरोधः] पाप का आश्रव रुक जाता है तो [अन्यसम्पदा] अन्य सम्पत्ति से [किं] क्या [प्रयोजनम्] प्रयोजन है? और [अथ] यदि [पापास्रवो] पाप का आस्रव होता रहता [अस्ति] है तो [अन्यसम्पदा] अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? ॥२७॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

ननु कुलैश्वर्यादिसम्पन्नैः स्मयः कथं निषेद्धुं शक्य इत्याह --

‘पापं ज्ञानावरणाद्यशुभं कर्म निरुद्ध्यते येनासौ’ **पापनिरोधो** रत्नत्रयसद्भावः स यद्यस्ति तदा **अन्यसम्पदा** अन्यस्य कुलैश्वर्यादिः सम्पदा सम्पत्त्या किं प्रयोजनम् ? न किमपि प्रयोजनं तन्निरोधेऽतोऽप्यधिकाया विशिष्टतरायास्तत्सम्पदः सद्भावमवबुद्ध्यमानस्य तन्निबन्धनस्मयस्यानुत्पत्तेः । **अथ पापास्रवोऽस्ति** पापस्याशुभकर्मणः आस्रवो मिथ्यात्वाविरत्यादिरस्ति तथाप्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् । अग्रे दुर्गतिगमनादिकम् अवबुद्ध्यमानस्य तत्सम्पदा प्रयोजनाभावतस्तस्मयस्य कर्तुमनुचितत्वात् ॥२७॥

**आर्यिका-आदिमति :**

प्रश्न यह है कि कुल-ऐश्वर्य आदि सम्पत्ति से सहित मनुष्य मद को कैसे रोके ? उत्तर स्वरूप बतलाया है कि विवेकी जनों को ऐसा विचार करना चाहिये कि यदि मेरे ज्ञानावरणादि अशुभ कर्मों के आस्रव को रोकने वाले रत्नत्रय-धर्म का सद्भाव है, तो मुझे कुल-ऐश्वर्य आदि अन्य सम्पदा से क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे भी श्रेष्ठतम सम्पत्ति-रूप रत्नत्रयधर्म मेरे पास विद्यमान है । इस प्रकार का विवेक होने से उन कुल ऐश्वर्यादि के निमित्त से अहङ्कार नहीं होता । इसके विपरीत यदि ज्ञानावरणादि अशुभ कर्मरूप पाप का आस्रव हो रहा है -- मिथ्यात्व, अविरति आदि आस्रवभाव विद्यमान हैं तो अन्य सम्पदा से क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उस पापास्रव से दुर्गति गमन आदि फल की प्राप्ति नियम से होगी, ऐसा विचार करने से कुल ऐश्वर्य आदि का गर्व दूर हो जाता है ।

+ सम्यग्दर्शन की महिमा -

**सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्  
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥२८॥**

**अन्वयार्थ :** [देवः] जिनेन्द्र-देव [सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्] सम्यग्दर्शन से युक्त [मातङ्ग-देहजम्] चांडाल देहधारी मनुष्य को [अपि] भी [भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्] राख के भीतर ढंके हुए अंगारे के भीतरी प्रकाश के समान [देवम्] पूज्य कहते हैं ॥ २८॥

## प्रभाचन्द्राचार्य :

अमुमेवार्थं प्रदर्शयन्नाह --

**देवम्** आराध्यम् । **विदु** र्मन्यन्ते । के ते ? **देवा** देवा वि तस्स पणमन्ति जस्स धम्मे सया मणो इत्यभिधानात् । कमपि ? **मातङ्गदेहजमपि** चाण्डालमपि । कथम्भूतम् ? **सम्यग्दर्शनसम्पन्नं** सम्यग्दर्शनेन सम्पन्नं युक्तम् । अतएव **भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसं** भस्मना गूढः प्रच्छादितः स चासावङ्गारश्च तस्य अन्तरं मध्यं तत्रैव ओजः प्रकाशो निर्मलता यस्य ॥ २८ ॥

## आर्यिका-आदिमति :

चाण्डाल कुल में उत्पन्न होने पर भी यदि कोई पुरुष सम्यग्दर्शन से सम्पन्न है तो वह आदर सत्कार के योग्य है, ऐसा गणधरादिक देव कहते हैं । क्योंकि 'देवा वि तस्स पणमन्ति जस्स धम्मे सया मणो' जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं, ऐसा कहा गया है । अतएव ऐसे व्यक्ति का तेज भस्म से प्रच्छादित अंगारे के भीतरी तेज के समान निर्मलता से युक्त है ।

+ धर्म और अधर्म का फल -

**श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात्  
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरिरीणाम् ॥२९॥**

**अन्वयार्थ :** [धर्मकिल्बिषात्] धर्म और पाप से [श्वा] कुत्ता [अपि] भी [देवः] देव [च] और [देवः] देव [अपि] भी [श्वा] कुत्ता [जायते] हो जाता है । [शरीरिणां] जीवों को [धर्मात्] धर्म से [अन्या] अन्य और [अपि] भी [का] अनिर्वचनीय [सम्पत्] सम्पदा [भवेत्] प्राप्त होती है ॥२९॥

## प्रभाचन्द्राचार्य :

एकस्य धर्मस्य विविधं फलं प्रकाशयेदानीमुभयोर्धर्माधर्मयोर्यथाक्रमं फलं दर्शयन्नाह --

**श्वापि** कुक्कुरोऽपि **देवो** जायते । **देवोऽपि** देवः **श्वा** जायते । कस्मात् ? **धर्मकिल्बिषात्** धर्ममाहात्म्यात् खलु श्वापि देवो भवति । किल्बिषात् पापोदयात् पुनर्देवोऽपि श्वा भवति यत एवं, ततः **कापि** वाचामगोचरा । **नाम** स्फुटम् । **अन्या** अपूर्वाऽद्वितीया । **सम्पद्** विभूतिविशेषो । **भवेत्** । कस्मात्? धर्मात् । केषाम्? शरीरिणां संसारिणां यत एवं ततो धर्म एव प्रेक्षावतानुष्ठातव्यः ॥२९॥

## आर्यिका-आदिमति :

सम्यग्दर्शनादिरूप धर्म के माहात्म्य से कुत्ता भी देवपर्याय को प्राप्त कर लेता है और मिथ्यात्वादि अधर्म-पाप के उदय से देव भी कुत्ता हो जाता है । इस तरह धर्म का अद्वितीय माहात्म्य है कि जिससे संसारी प्राणियों को ऐसी सम्पदा की प्राप्ति होती है जो वचनों के द्वारा कही नहीं जा सकती, इसलिए प्रेक्षावानों को धर्म का ही अनुष्ठान करना चाहिए ।

+ सम्यग्दृष्टि कुदेवादिक को नमन ना करे -

**भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्  
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥**

**अन्वयार्थ :** [शुद्धदृष्टयः] सम्यग्दृष्टी जीव [भयाशा-स्नेह-लोभाच्च] भय से, आशा से, प्रेम से अथवा लोभ से [कुदेवागमलिङ्गिनाम्] कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं को [प्रणामम्] प्रणाम [च] और [विनयम्] विनय [एव] भी [न कुर्युः] नहीं करे ॥३०॥

## प्रभाचन्द्राचार्य :

तथानुतिष्ठता दर्शनम्लानता मूलतोऽपि न कर्तव्येत्याह --

**शुद्धदृष्टयो** निर्मलसम्यक्त्वाः न कुर्युः । कम् ? **प्रणामम्** उत्तमाङ्गेनोपनतिम् । **विनयं चैव** करमुकुलप्रशंसादिलक्षणम् । केषाम् ? कुदेवागमलिङ्गिनाम् । कस्मादपि ? **भयाशास्नेहलोभाच्च** भयं राजादिजनितम्, आशा च भाविनोऽर्थस्य



### आर्यिका-आदिमति :

राजा आदि से उत्पन्न होने वाले आतंक को भय कहते हैं। भविष्य में धनादिक-प्राप्ति की वांछा आशा कहलाती है। मित्र के अनुराग को स्नेह कहते हैं। वर्तमानकाल में धन प्राप्ति की जो गृद्धता अर्थात् आसक्ति होती है, उसे लोभ कहते हैं। जिसका सम्यक्त्व निर्मल है ऐसा शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव इन चारों कारणों से अर्थात् भय, आशा, स्नेह, लोभ के वश से कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु को न तो प्रणाम करे, मस्तक झुकाकर नमस्कार करे और न उनकी विनय करे- हाथ जोड़े तथा न प्रशंसा आदि के वचन कहे।

+ सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता -

## दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्रुते दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गं प्रचक्षते ॥३१॥

**अन्वयार्थ :** [यत्] जिस कारण [ज्ञानचारित्रात्] ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन [साधिमानम्] श्रेष्ठता या उच्चता को [उपाश्रुते] प्राप्त होता है [तत्] उस कारण से [दर्शनम्] सम्यग्दर्शन को [मोक्षमार्गं] मोक्षमार्ग के विषय में [कर्णधारम्] खेवटिया [प्रचक्षते] कहते हैं ॥३१॥

### प्रभाचन्द्राचार्य :

ननु मोक्षमार्गस्य रत्नत्रयरूपत्वात् कस्माद्दर्शनस्यैव प्रथमतः स्वरूपाभिधानं कृतमित्याह-

**दर्शनं** कर्तृ **उपाश्रुते** प्राप्नोति कम् ? **साधिमानं** साधुत्वमुत्कृष्टत्वं वा । कस्मात् ? ज्ञानचारित्रात् । यतश्च साधिमानं तस्माद्दर्शनमुपाश्रुते । **तत्** तस्मात् । **मोक्षमार्गं** रत्नत्रयात्मके **दर्शनं** कर्णधारं प्रधानं प्रचक्षते । यथैव हि कर्णधारस्य नौखेवटकस्य कैवर्तकस्याधीना समुद्रपरतीरगमने नावः प्रवृत्तिः तथा संसारसमुद्रपर्यन्तगमने सम्यग्दर्शनकर्णधाराधीना मोक्षमार्गनावः प्रवृत्तिः ॥३१॥

### आर्यिका-आदिमति :

जिस प्रकार समुद्र के उस पार जाने के लिए नाव को उस पार पहुँचाने में खेवटिया-मल्लाह की प्रधानता होती है, उसी प्रकार संसार-समुद्र से पार होने के लिए मोक्षमार्गरूपी नाव की प्रवृत्ति सम्यग्दर्शनरूप कर्णधार के अधीन होती है। इसी कारण मोक्षमार्ग में ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा सम्यग्दर्शन को श्रेष्ठता या उत्कृष्टता प्राप्त होती है।

+ सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र की असम्भवता -

## विद्यावृत्तस्य सम्भूति-स्थितिवृद्धिफलोदयाः न सन्त्यसति सम्यक्त्वे, बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

**अन्वयार्थ :** [बीजाभावे] बीज के अभाव में [तरोःइव] वृक्ष की तरह [सम्यक्त्वे असति] सम्यग्दर्शन के न होने पर [विद्यावृत्तस्य] ज्ञान और चारित्र की [सम्भूति-स्थितिवृद्धिफलोदयाः] उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल प्राप्ति [न सन्ति] नहीं होती ॥३२॥

### प्रभाचन्द्राचार्य :

ननु चास्योत्कृष्टत्वे सिद्धे कर्णधारत्वं सिद्ध्यति तच्च कुतः सिद्धमित्याह-

**सम्यक्त्वेऽसति** अविद्यमाने। **न सन्ति**। के ते ? सम्भूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः । कस्य ? विद्यावृत्तस्य । अयमर्थः- विद्याया मतिज्ञानादिरूपायाः वृत्तस्य च सामायिकादिचारित्रस्य या सम्भूतिः प्रादुर्भावः, स्थितिर्यथावत्पदार्थपरिच्छेदकत्वेन कर्मनिर्जरादिहेतुत्वेन चावस्थानं, वृद्धिरुत्पन्नस्य परतर उत्कर्षः फलोदयो देवादिपूजाया स्वर्गापवर्गादिश्च फलस्योत्पत्तिः । कस्याभावे कस्येव ते न स्युरित्याह- बीजाभावे तरोरिव बीजस्य मूलकारणस्याभावे यथा तरोस्ते न सन्ति तथा सम्यक्त्वस्यापि मूलकारणभूतस्याभावे विद्यावृत्तस्यापि ते न सन्तीति ॥३२॥

### आर्यिका-आदिमति :

विद्या-मतिज्ञानादि और वृत्त-सामायिकादि चारित्र इनका प्रादुर्भाव, स्थिति-जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा जानना, तथा कर्म निर्जरा के हेतुरूप से अवस्थान होना, वृद्धि-उत्पन्न होकर आगे-आगे बढ़ते जाना फलोदय-देवादिक की पूजा से स्वर्ग-मोक्ष फल की प्राप्ति होना है। जिस प्रकार 'बीजाभावे तरोरिव' मूल कारणरूप बीज के अभाव में वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल की प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार मूल कारणभूत सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान तथा चारित्र की न उत्पत्ति होती है, न स्थिति होती है, न वृद्धि होती है और न फल की प्राप्ति ही होती है।

+ मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ -

## गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

**अन्वयार्थ :** [निर्मोहः] मोह-मिथ्यात्व से रहित [गृहस्थः] गृहस्थ [मोक्षमार्गस्थः] मोक्षमार्ग में स्थित है परन्तु [मोहवान्] मोह-मिथ्यात्व से सहित [अनगारः] मुनि [नैव] मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है [मोहिनः] मोही मिथ्यादृष्टि [मुनेः] मुनि की अपेक्षा [निर्मोहः] मोह-रहित सम्यग्दृष्टि [गृही] गृहस्थ [श्रेयान्] श्रेष्ठ [अस्ति] है।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

यतश्च सम्यग्दर्शनसम्पन्नो गृहस्थोऽपि तदसम्पन्नान्मुनेरुत्कृष्टतरस्ततोऽपि सम्यग्दर्शनमेवोत्कृष्टमित्याह-

**निर्मोहो** दर्शनप्रतिबन्धकमोहनीयकर्मरहितः सदृशपरिणत इत्यर्थः इत्यम्भूतो गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो भवति । **अनगारो** यतिः। पुनः **नैव** मोक्षमार्गस्थो भवति । किंविशिष्टः ? **मोहवान्** दर्शनमोहोपेतः । मिथ्यात्वपरिणत इत्यर्थः । यह एवं ततो गृही गृहस्थो । यो निर्मोहः स **श्रेयान्** उत्कृष्टः । कस्मात् ? मुनेः । कथम्भूतात् ? **मोहिनो** दर्शनमोहयुक्तात् ॥३३॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जो गृहस्थ सम्यग्दर्शन का घात करने वाले मोहनीय कर्म से रहित होने के कारण सम्यग्दर्शनरूप परिणत है वह तो मोक्षमार्ग में स्थित है, किन्तु जो यति दर्शनमोह-मिथ्यात्व से सहित है वह मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है । इस प्रकार मिथ्यात्व युक्त मुनि की अपेक्षा सम्यक्त्व सहित गृहस्थ श्रेष्ठ है ।

+ श्रेय और अश्रेय का कथन -

## न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्पि श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व-समं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

**अन्वयार्थ :** [तनूभृताम्] प्राणियों के [त्रैकाल्ये] तीनों कालों और [त्रिजगत्पि] तीनों लोकों में भी [सम्यक्त्वसमं] सम्यग्दर्शन के समान [श्रेयः] कल्याणरूप और मिथ्यादर्शन के समान [अश्रेयः] अकल्याणरूप [किञ्चित्] किञ्चित् [अन्यत्] दूसरा [न] नहीं है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

यत एवं ततः-

**तनूभृतां** संसारिणाम् । **सम्यक्त्वसमं** सम्यक्त्वेन समं तुल्यम् । **श्रेया** श्रेष्ठमुत्तमोपकारकम् । **किञ्चित्** अन्यवस्तु नास्ति । यतस्तस्मिन् सति गृहस्थोऽपि यतेरप्युत्कृष्टतां प्रतिपद्यते । कदा तत्रास्ति ? **त्रैकाल्ये** अतीतानागतवर्तमानकालत्रये । तस्मिन् क तत्रास्ति ? **त्रिजगत्पि** आस्तां तावन्नियतक्षेत्रादौ तत्रास्ति अपितु त्रिजगत्पि त्रिभुवनेऽपि । तथा **अश्रेयो** अनुपकारकम् । मिथ्यात्वसमं किञ्चिदन्यत्रास्ति । यतस्तत्सद्भावे यतिरपि व्रतसंयमसम्पन्नो गृहस्थादपि तद्विपरीतादपकृष्टतां व्रजतीति ॥३४॥

**आर्यिका-आदिमति :**

संसारी जीवों के लिए भूत, भविष्यत् और वर्तमानरूप तीनों कालों में और अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक के भेद से तीनों लोकों में सम्यग्दर्शन के समान श्रेष्ठ उत्तम कल्याणकारक कोई दूसरी वस्तु नहीं है । क्योंकि सम्यक्त्व के रहने से गृहस्थ भी मुनि से अधिक उत्कृष्टता को प्राप्त हो जाता है । तथा तीनों कालों और तीनों लोकों में मिथ्यात्व के समान कोई भी अनुपकारक-अकल्याणप्रद नहीं है, क्योंकि उसके सद्भाव में व्रत और संयम से सम्पन्न मुनि भी गृहस्थ की अपेक्षा हीनता को प्राप्त होता है ।

+ सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान -

## सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्-नपुंसकस्त्रीत्वानि दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥३५॥

**अन्वयार्थ :** [सम्यग्दर्शनशुद्धा] सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव [अव्रतिकाः] व्रतरहित होने पर [अपि] भी [नारकतिर्यङ्-नपुंसकस्त्रीत्वानि] नारक, तिर्यञ्च, नपुंसक और स्त्रीपने को [च] तथा [दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां] नीचकुल, विकलांग अवस्था, अल्पआयु और दरिद्रता को [न व्रजन्ति] प्राप्त नहीं होते ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इतोऽपि सदृशनिमेव ज्ञानचारित्राभ्यामुत्कृष्टमित्याह-

**सम्यग्दर्शनशुद्धा** सम्यग्दर्शनं शुद्धं निर्मलं येषां ते । सम्यग्दर्शनलाभात्पूर्वं बद्धायुष्कान् विहाय अन्ये न व्रजन्ति न प्राप्नुवन्ति । कानि । नारकतिर्यङ्-नपुंसकस्त्रीत्वानि । त्वशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते नारकत्वं तिर्यक्तत्वं नपुंसकत्वं स्त्रीत्वमिति । न केवलमेतान्येव न व्रजन्ति किन्तु **दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च** । अत्रापि ताशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते ये निर्मलसम्यक्त्वाः ते न भवान्तरे दुष्कुलतां दुष्कुले उत्पत्तिं विकृततां काणकुण्ठादिरूपविकारम् अल्पायुष्कतामन्तर्मुहूर्ताद्यायुष्कोत्पत्तिं, दरिद्रतां दारिद्र्योपेतकुलोत्पत्तिम् । कथम्भूता अपि एतत्सर्वं व्रजन्ति ? **अव्रतिका अपि** अणुव्रतरहिता अपि ॥३५॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'सम्यग्दर्शनेन शुद्धाः सम्यग्दर्शनशुद्धाः' अथवा 'सम्यग्दर्शनं शुद्धं निर्मलं येषां ते सम्यग्दर्शनशुद्धाः' इस समास के अनुसार जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है अथवा जिनका सम्यग्दर्शन शुद्ध-निर्मल है ऐसे जीव, जिन्होंने सम्यग्दर्शन होने के पहले आयु बांध ली है उन बद्धायुष्कों को छोड़कर नारकत्व, तिर्यचत्व, नपुंसकत्व और स्त्रीत्व को प्राप्त नहीं होते तथा नीचकुलता, दुष्कुलता-दुष्कुल में उत्पत्ति, विकृतता-काणा, लूला आदि विकृतरूप वाला, अल्पायुष्कता-अन्तर्मुहूर्तादि अल्प आयु वाला, दरिद्रता-दरिद्रकुल में भी उत्पत्ति नहीं होती है । जब व्रतरहित अव्रतसम्यग्दृष्टि का इतना माहात्म्य है तब सम्यग्दृष्टि व्रती तो सातिशय पुण्य का बन्ध करते ही हैं, उनकी महिमा का तो कहना ही क्या है ?

+ सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं -

## ओजस्तेजोविद्या-वीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः माहाकुला महार्था मानवतिलकाः भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

**अन्वयार्थ :** [दर्शनपूताः] सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव [ओजः तेजोः] उत्साह, प्रताप / कान्ति, [विद्या] विद्या, [वीर्य] पराक्रम, [यशोः] यश, [वृद्धि] उन्नति, विजय, [विभवसनाथा] वैभव से सहित [माहाकुलाः] उच्च कुलोत्पन्न, [महार्थाः] पुरुषार्थयुक्त तथा [मानवतिलकाः] मनुष्यों में श्रेष्ठ [भवन्ति] होते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

यद्येतत्सर्वं न व्रजन्ति तर्हि भवान्तरे कीदृशास्ते भवन्तीत्याह-

**दर्शनपूता** दर्शनेन पूताः पवित्रिताः । दर्शनं वा पूतं पवित्रं येषां ते । **भवन्ति** । **मानवतिलकाः** मानवानां मनुष्याणां तिलका मण्डनीभूता मनुष्यप्रधाना इत्यर्थः । पुनरपि कथम्भूता इत्याह **ओज** इत्यादि ओज उत्साहः तेजः प्रतापः कान्तिर्वा, विद्या सहजा अहार्या च बुद्धिः, वीर्यं विशिष्टं सामर्थ्यं यशोविशिष्टाख्यातिः वृद्धिः कलत्र-पुत्रपौत्रादिसम्पत्तिः, विजयः पराभिभवेनात्मनो गुणोत्कर्षः, विभवो धनधान्यद्रव्यादिसम्पत्तिः एतैः सनाथा सहिता । तथा **माहाकुला** महच्च तत् कुलं च माहाकुलं तत्र भवाः **महार्था** महान्तोऽर्था धर्मार्थकाममोक्षलक्षणा येषाम् ॥३६॥

**आर्यिका-आदिमति :**

**दर्शनेन पूताः पवित्रिताः** अथवा **दर्शनं पूतं पवित्रं येषां ते** इस समास के अनुसार जो सम्यग्दर्शन से पवित्र हैं अथवा जिनका सम्यग्दर्शन पवित्र है, वे जीव सम्यग्दर्शनपूत कहलाते हैं । ओज का अर्थ-उत्साह, तेज का अर्थ प्रताप या कान्ति है । स्वाभाविक अथवा जिसका हरण न किया जा सके ऐसी बुद्धि को विद्या कहते हैं । स्त्री, पुत्र-पौत्र आदि की प्राप्ति को वृद्धि कहते हैं । दूसरे के तिरस्कार से अपने गुणों का उत्कर्ष करना विजय है । धन-धान्य द्रव्यादिक की प्राप्ति होना विभव है । उत्तम कुल में उत्पत्ति होना माहाकुल और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थयुक्त होना महार्थ है । जो मनुष्यों में श्रेष्ठ-प्रधान

होते हैं, वे मानवतिलक कहलाते हैं। इस प्रकार पवित्र सम्यग्दृष्टि जीव ओज आदि सहित, उच्चकुलोत्पन्न चारों पुरुषार्थों के साधक तथा मनुष्यों में शिरोमणि होते हैं।

+ सम्यग्दृष्टि जीव इंद्र पद पाते हैं -

## अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥३७॥

**अन्वयार्थ :** [दृष्टिविशिष्टाः] सम्यग्दर्शन से सहित [जिनेन्द्रभक्ताः] जिनेन्द्र भगवान के भक्त पुरुष [स्वर्गे] स्वर्ग में [अमराप्सरसां] देव-देवियों की [परिषदि] सभा में [अष्टगुणपुष्टितुष्टा] अणिमा आदि आठ गुण तथा शारीरिक पुष्टि अथवा अणिमा आदि आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट और [प्रकृष्टशोभाजुष्टा] बहुत भारी शोभा से युक्त होते हुए [चिरं] चिरकाल तक [रमन्ते] क्रीड़ा करते हैं।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तथा इन्द्रपदमपि सम्यग्दर्शनशुद्धा एव प्राप्नुवन्तीत्याह-

ये दृष्टिविशिष्टाः सम्यग्दर्शनोपेता । जिनेन्द्रभक्ताः प्राणिनस्ते स्वर्गे । अमराप्सरसां परिषदि देवदेवीनां सभायाम् । चिरं बहुतरं कालं । रमन्ते क्रीडन्ति । कथम्भूताः ? अष्टगुणपुष्टितुष्टाः अष्टगुणा अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्यम्, ईशित्वं, वशित्वं, कामरूपित्वमित्येतल्लक्षणास्ते च पुष्टिः स्वशरीरावयवानां सर्वदोषचित्तत्वं तेषां वा पुष्टिः परिपूर्णत्वं तथा तुष्टाः सर्वदा प्रमुदिताः । तथा प्रकृष्टशोभाजुष्टा इतरदेवेभ्यः प्रकृष्टा उत्तमा शोभा तथा जुष्टा सेविताः इन्द्राः सन्त इत्यर्थः ॥३७॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जिनेन्द्र भक्त सम्यग्दृष्टि जीव यदि स्वर्ग जाते हैं तो वहाँ इन्द्र बनकर देव और देवियों की सभा में चिरकाल तक-सागरों पर्यन्त रमण करते हैं-क्रीड़ा करते हैं। वहाँ पर वे अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामरूपित्व इन आठ ऋद्धियों से सम्पन्न होते हैं और अपने शरीर सम्बन्धी अवयवों की पुष्टि-परिपूर्णता सहित सर्वदा हर्षित रहते हैं तथा अन्य देवों में नहीं पायी जाने वाली उत्तम शोभा युक्त होते हैं।

+ सम्यग्दृष्टि ही चक्रवर्ती होते हैं -

## नवनिधिसप्तद्वयरत्ना-धीशाः सर्व-भूमि-पतयश्चक्रम् वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः, क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

**अन्वयार्थ :** [स्पष्टदृशः] निर्मल सम्यग्दर्शन के धारक मनुष्य ही [नवनिधि] नौ निधियों [सप्तद्वय] और चौदह [रत्ना-धीशाः] रत्नों के स्वामी तथा [क्षत्र] राजाओं के [मौलि] मुकुटों सम्बन्धी [शेखर] कलगियों पर जिनके [चरणाः] चरण हैं ऐसे [सर्व-भूमि-पतय] छः खंड का अधिपति -- चक्रवर्ती होते हुए [चक्रम्] चक्ररत्न को [वर्तयितुं] वर्ताने के लिए [प्रभवन्ति] समर्थ होते हैं।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तथा चक्रवर्तित्वमपि त एव प्राप्नुवन्तीत्याह-

ये स्पष्टदृशो निर्मलसम्यक्त्वाः । त एव चक्रं चक्ररत्नम् । वर्तयितुम् आत्माधीनतया तत्साध्यनिखिलकार्येषु प्रवर्तयितुम् । प्रभवन्ति ते समर्था भवन्ति । कथम्भूताः ? सर्वभूमिपतयः सर्वा चासौ भूमिश्च षट्खण्डपृथ्वी तस्याः पतयः चक्रवर्तिनः । पुनरपि कथम्भूताः ? नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशा नवनिधयश्च सप्तद्वयरत्नानि सप्तानां द्वय तेन सङ्ख्यातानि रत्नानि चतुर्दश तेषामधीशाः स्वामिनः । क्षत्रमौलिशेखरचरणाः क्षतादोषात् त्रायन्ते रक्षन्ति प्राणिनो ये ते क्षत्रा राजानस्तेषां मौलयो मुकुटानि तेषु शेखरा आपीठास्तेषु चरणानि येषाम् ॥३८॥

**आर्यिका-आदिमति :**

निर्मल सम्यग्दर्शन के धारक मनुष्य ही चक्ररत्न को चलाने में समर्थ होते हैं अर्थात् अपने अधीन होने से उसे उसके द्वारा साध्य समस्त कार्यों में प्रवर्ताने के लिए समर्थ होते हैं। तथा वे सर्वभूमि- षट्खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती होते हैं। नौ निधियों और चौदह रत्नों के स्वामी होते हैं, जो दोषों से प्राणियों की रक्षा करते हैं ऐसे राजाओं के मुकुटों की कलगियों पर उन



चक्रवर्ती के चरण रहते हैं अर्थात् समस्त पृथ्वी के मुकुटबद्ध राजा मस्तक झुकाकर चक्रवर्ती के चरणों में नमस्कार करते हैं ।

+ सम्यग्दृष्टि ही तीर्थकर होते हैं -

## अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्चनूतपादाम्भोजाः दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥३९॥

**अन्वयार्थ :** [दृष्ट्या] सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से जीव [अमरपतयः] उर्ध्वलोक का स्वामी -- देवेन्द्र, [असुरपतयः] अधोलोक का स्वामी -- धरणेन्द्र [नरपतिभिः] मनुष्यों के स्वामी -- चक्रवर्ति और [च] तथा [यमधर] मुनियों के [पतिभिः] स्वामी -- गणधरों के द्वारा जिनके [पादा] चरण [अम्भोजाः] कमलों की [नूत] स्तुति की जाती है, [सुनिश्चितार्थाः] जिन्होंने पदार्थ का अच्छी तरह निश्चय किया है तथा जो [लोकशरण्याः] तीनों लोकों के शरणभूत हैं, ऐसे [वृष] धर्म [चक्रधराः] चक्र के धारक तीर्थकर [भवन्ति] होते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तथा धर्मचक्रिणोऽपि सद्दर्शनमाहात्म्याद् भवन्तीत्याह-

**दृष्ट्या** सम्यग्दर्शनमाहात्म्येन । **वृषचक्रधरा भवन्ति** वृषो धर्मः तस्य चक्रं वृषचक्रं तद्भरन्ति ये ते वृषचक्रधरास्तीर्थङ्कराः । किंविशिष्टाः ? **नूतपादाम्भोजाः** पादादेवाम्भोजे, नूते स्तुते पादाम्भोजे येषाम् । कैः ? **अमरासुरनरपतिभिः** अमरपतयः ऊर्ध्वलोकस्वामिनः सौधर्मादयः, असुरपतयोऽधोलोकस्वामिनो धरणेन्द्रादयः, नरपतयः तिर्यग्लोकस्वामिनश्चक्रवर्तिनः । न केवलमेतैरेव नूतपादाम्भोजाः, किन्तु **यमधरपतिभिश्च** यमं व्रतं धरन्ति ये ते यमधरा मुनयस्तेषां पतयो गणधरास्तैश्च । पुनरपि कथम्भूतास्ते ? सुनिश्चितार्था शोभनो निश्चितः परिसमाप्तिं गतोऽर्थो धर्मादिलक्षणो येषाम् । तथा लोकशरण्याः अनेकविधदुःखदायिभिः कर्मरातिभिरुपद्रुतानां लोकानां शरणे साधवः ॥३९॥

**आर्यिका-आदिमति :**

सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से जीव धर्मचक्र को प्रवर्ताने वाले तीर्थङ्कर होते हैं । उर्ध्वलोक के स्वामी सौधर्मेन्द्रादि अमरपति होते हैं । अधोलोक के स्वामी धरणेन्द्र आदि असुरपति होते हैं, तिर्यग्लोक के स्वामी चक्रवर्ती तथा यमधरपति-मुनियों के स्वामी गणधरदेव उन तीर्थङ्करों के चरण कमलों की स्तुति किया करते हैं । वे धर्मादि पदार्थों को अच्छी तरह निश्चय-रूप से जान चुके हैं और अनेक प्रकार के दुःख देने वाले कर्मरूपी शत्रुओं से पीड़ित जीवों को शरण देने में साधु होते हैं ।

+ सम्यग्दृष्टि ही मोक्ष-पद प्राप्त करते हैं -

## शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम् काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥

**अन्वयार्थ :** [दर्शनशरणाः] सम्यग्दृष्टि जीव [अजरम्] वृद्धावस्था से रहित, [अरुजम्] रोग से रहित, [अक्षयम्] क्षय से रहित, [अव्याबाधम्] बाधाओं से रहित, [विशोकभयशङ्कम्] शोक, भय और शंका से रहित [काष्ठागतसुखविद्याविभवं] सर्वोत्कृष्ट सुख और ज्ञान के वैभव से सहित तथा [विमलं] द्रव्य-भाव-नोकर्म-रूप मल से रहित [शिवम्] मोक्ष को [भजन्ति] प्राप्त होते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तथा मोक्षप्राप्तिरपि सम्यग्दर्शनशुद्धानामेव भवतीत्याह-

**दर्शनशरणाः** दर्शनं शरणं संसारापायपरिरक्षकं येषां, दर्शनस्य वा शरणं रक्षणं यत्र ते । **शिवं** मोक्षम् । भजन्त्यनुभवन्ति । कथम्भूतम् ? **अजरं** न विद्यते जरा वृद्धत्वं यत्र । **अरुजं** न विद्यते रुग्ण्यधिर्यत्र । **अक्षयं** न विद्यते लब्धानन्तचतुष्टयक्षयो यत्र । **अव्याबाधं** न विद्यते दुःखकारणेन केनचिद्विविधा विशेषेण वा आबाधा यत्र । **विशोकभयशङ्कं** विगता शोकभयशङ्का यत्र । **काष्ठागतसुखविद्याविभवं** काष्ठा परमप्रकर्षं गतः प्राप्तः सुखविद्ययोर्विभवो विभूतिर्यत्र । विमलं विगतं मलं द्रव्यभावरूपकर्म यत्र ॥४०॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'दर्शनं शरणं संसारापायपरिरक्षकं येषां ते' सम्यग्दर्शन ही जिनके शरण है यानी संसार के दुःखों से रक्षा करने वाला है । अथवा 'दर्शनस्य शरणं रक्षणं यत्र ते' जिनमें सम्यग्दर्शन की रक्षा होती है वे दर्शन शरण कहे जाते हैं। ऐसे दर्शन के शरणभूत सम्यग्दृष्टि जीव ही शिव-मोक्ष का अनुभव करते हैं । वह मोक्ष अजरवृद्धावस्था से रहित है, अरुज-रोग रहित है, अक्षय-जिसका कभी भी क्षय नहीं होता ऐसे अनन्त चतुष्टय के क्षय से रहित है । अव्याबाध है -- जो अनेक प्रकार की बाधा-दुःख के कारणों से रहित हैं । विशोकभयाशंक है -- शोक, भय तथा शंका से रहित है, काष्ठागत सुख विद्या विभव है । जो परमप्रकर्षता को प्राप्त हुए सुख और ज्ञान के वैभव से सहित है तथा विमल है -- द्रव्य-कर्म, भाव-कर्म-रूप मल से रहित है ।

+ उपसंहार -

**देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्,  
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम् ।  
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्,  
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥४१॥**

**अन्वयार्थ :** [जिनभक्ति] जिनेन्द्र भगवान का भक्त [भव्यः] सम्यग्दृष्टि पुरुष [अमेयमानम्] अपरिमित प्रतिष्ठा अथवा ज्ञान से सहित [देवेन्द्रचक्रमहिमानम्] इन्द्र समूह की महिमा को [अवनीन्द्रशिरोर्चनीयम्] मुकुटबद्ध राजाओं के मस्तकों से पूजनीय [राजेन्द्रचक्रम] चक्रवर्ती के चक्र-रत्न को [च] और [अधरीकृतसर्वलोकम्] समस्त-लोक को नीचा करने वाले [धर्मेन्द्रचक्रम] तीर्थकर के धर्म-चक्र को [लब्ध्वा] प्राप्त कर [शिवं] मोक्ष को [उपैति] प्राप्त होता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

यत् प्राक् प्रत्येकं श्लोकैः सम्यग्दर्शनस्य फलमुक्तं तद्दर्शनाधिकारस्य समाप्तौ सङ्ग्रहवृत्तेनोपसंहृत्य प्रतिपादयन्नाह-

**शिवं** मोक्षम् । **उपैति** प्राप्नोति । कोऽसौ ? **भव्यः** सम्यग्दृष्टिः । कथम्भूतः ? **जिनभक्तिः** जिने भक्तिर्यस्य । किं कृत्वा ? **लब्ध्वा** । कम् ? **देवेन्द्रचक्रमहिमानं** देवानामिन्द्रा देवेन्द्रास्तेषां चक्रं सङ्घातस्तत्र तस्य वा महिमानं विभूति माहात्म्यम् । कथम्भूतम् ? **अमेयमानम्** अमेयोऽपर्यन्तं मानं पूजा ज्ञानं वा यस्य तममेयमानम् । तथा **राजेन्द्रचक्रं** लब्ध्वा राज्ञामिन्द्राश्चक्रवर्तिनस्तेषां चक्रं चक्ररत्नम् । किं विशिष्टम् ? **अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्** अवन्यां निज-निजपृथिव्याम् इन्द्राः मुकुटबद्धाः राजानस्तेषां शिरोभिरर्चनीयम् । तथा **धर्मेन्द्रचक्रं** लब्ध्वा धर्मस्तस्योत्तमक्षमादिलक्षणस्य चारित्रलक्षणस्य वा इन्द्रा अनुष्ठातारः प्रणेतारो वा तीर्थङ्करादयस्तेषां चक्रं सङ्घातं धर्मेन्द्राणां वा तीर्थकृतां सूचकं चक्रं धर्मचक्रम् । कथम्भूतम् ? **अधरीकृतसर्वलोकम्** अधरीकृतो भृत्यतां नीतः सर्वलोकस्त्रिभुवनं येन तत् । एतत्सर्वं लब्ध्वा पश्चाच्छिवं चोपैति भव्य इति ॥ ४१॥

इति प्रभाचन्द्रविरचितायां समन्तभद्रस्वामिविरचितोपासकाध्ययनटीकायां प्रथमः परिच्छेदः ॥१॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जिनेन्द्र भगवान् में सातिशय भक्ति रखने वाला भव्य सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्ग के इन्द्र समूह विभूतिरूप उस माहात्म्य को प्राप्त करता है, जिसका मान-ज्ञान अपरिमित होता है । वह राजेन्द्रचक्र-चक्रवर्ती के उस सुदर्शन चक्र को प्राप्त करता है, जो अपनी-अपनी पृथ्वी के मुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा अर्चनीय होता है । तथा उत्तमक्षमादि अथवा चारित्रलक्षण वाले धर्म के जो अनुष्ठाता प्रणेता ऐसे तीर्थङ्करों के समूह को अथवा तीर्थङ्करों के सूचक उस धर्मचक्र को प्राप्त होता है । जो अपने माहात्म्य से तीनों लोकों को अपना सेवक बना लेता है । इन सभी पदों को प्राप्त करने के पश्चात् अन्त में वह मोक्ष को प्राप्त होता है ।

# सम्यग्ज्ञान-अधिकार

+ सम्यग्ज्ञान का लक्षण -

## अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥१॥

**अन्वयार्थ :** [यत्] जो ज्ञान, पदार्थ को [अन्यूनम्] न्यूनता रहित, [अनतिरिक्तं] अधिकता रहित, [याथातथ्यं] ज्यों का त्यों, [विपरीतात् विना] विपरीतता रहित [च] और [निःसन्देहं] सन्देह रहित [वेद] जानता है, [तत्] उस ज्ञान को [आगमिनः] गणधर / श्रुतकेवली, [ज्ञान] सम्यग्ज्ञान [आहूः] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथ दर्शनरूपं धर्मं व्याख्याय ज्ञानरूपं तं व्याख्यातुमाह-

**वेद** वेत्ति । यत्तदाहुर्बुवते । **ज्ञानं** भावश्रुतरूपम् । के ते ? **आगमिनः** आगमज्ञाः । कथं वेद ? **निःसन्देहं** निःसंशयं यथा भवति तथा । **विना च विपरीतात्** विपरीताद्विपर्ययाद्विनैव विपर्ययव्यवच्छेदेनेत्यर्थः । तथा **अन्यूनं** परिपूर्णं सकलं वस्तुस्वरूपं यद्वेद **तदज्ञानं** न न्यूनं विकलं तत्स्वरूपं यद्वेद । तर्हि जीवादिवस्तुस्वरूपेऽविद्यमानमपि सर्वथा नित्यत्वक्षणिकत्वाद्वैतादिरूपं कल्पयित्वा यद्वेत्ति तदधिकार्थवेदित्वात् ज्ञानं भविष्यतीत्यत्राह- **अनतिरिक्तं** वस्तुस्वरूपादनतिरिक्तमनधिकं यद्वेद तज्ज्ञानं न पुनस्तद्वस्तुस्वरूपादधिकं कल्पनाशिल्पिकल्पितं यद्वेद । एवं चैतद्विशेषणचतुष्टयसामर्थ्याद्यथाभूतार्थवेदकत्वं तस्य सम्भवति तद्दर्शयति- **याथातथ्यं** यथावस्थितवस्तुस्वरूपं यद्वेद तदज्ञानं भावश्रुतम् । तद्रूपस्यैव ज्ञानस्य जीवाद्यशेषार्थानामशेषविशेषतः केवलज्ञानवत् साकल्येन स्वरूपप्रकाशनसामर्थ्यसम्भवात् । तदुक्तम्-

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने ।

भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥१॥ इति

अतस्तदेवात्र धर्मत्वेनाभिप्रेतं मुख्यतो मूलकारणभूततया स्वर्गापवर्गसाधनसामर्थ्यसम्भवात् ॥१॥

**आर्यिका-आदिमति :**

ज्ञान शब्द से यहाँ भावश्रुतज्ञान विवक्षित है । सर्वज्ञ जानने को ज्ञान कहते हैं । सम्यग्ज्ञान पदार्थों को सन्देह रहित जानता है और वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा ही जानता है, विपरीतता रहित जानता है, न्यूनता रहित समस्त वस्तु-स्वरूप को जानता है अर्थात् परस्पर विरोधी नित्यानित्यादि दो धर्मों में से किसी एक को छोड़कर नहीं जानता, किन्तु उभय धर्मों से युक्त पूर्ण वस्तु को जानता है, अधिकता रहित जानता है अर्थात् वस्तु में नित्य-एकान्त अथवा क्षणिक-एकान्त आदि जो धर्म अविद्यमान हैं, उनको कल्पित करके नहीं जानता, यदि कल्पित करके जानेगा तो अधिक अर्थ को जानने वाला हो जायेगा ।

अतः इन चार विशेषणों से सहित ज्ञान यथावत् वस्तु-तत्त्व को जानता है । इस तरह स्याद्वाद-रूप श्रुत-ज्ञान भी जीवादि समस्त पदार्थों को उनकी सब विशेषताओं सहित जानता है, क्योंकि उसमें भी केवलज्ञान के समान पूर्णरूप से वस्तु-स्वरूप को प्रकाशित करने का सामर्थ्य है । कहा भी है-

स्याद्वादरूप श्रुतज्ञान और केवलज्ञान ये दोनों ही समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने वाले हैं । इनमें भेद केवल प्रत्यक्ष और परोक्ष की अपेक्षा है अर्थात् केवलज्ञान प्रत्यक्ष-रूप से जानता है और श्रुत-ज्ञान परोक्ष-रूप से जानता है । जो श्रुत-ज्ञान वस्तु के एक धर्म को ही ग्रहण करता है, वह अवस्तु अर्थात् मिथ्या होता है ।

इस प्रकार यहाँ भावश्रुत-ज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान ही धर्म शब्द से अभिप्रेत है, क्योंकि वही मूलकारण होने से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त कराने का सामर्थ्य रखता है ।

+ प्रथमानुयोग -

## प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥२॥

**अन्वयार्थ :** [समीचीनः बोधः] सम्यक् श्रुतज्ञान [मर्थाख्यानं] परमार्थ विषय का कथन करने वाले [चरितं] एक पुरुषाश्रित कथा और [पुराणम्] त्रेषांशलाका पुरुष-सम्बन्धि कथारूप [अपि] और [पुण्यम्] पुण्यवर्धक तथा [बोधि] ज्ञान और [समाधि] समता के [निधानं] खजाने [प्रथमानुयोगम्] प्रथमानुयोग को [बोधति] जानता है ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

तस्य विषयभेदाद् भेदान् प्ररूपयन्नाह -

**बोधः समीचीनः** सत्यं श्रुतज्ञानम् । **बोधति** जानाति । कम् ? प्रथमानुयोगम् । किं पुनः प्रथमानुयोगशब्देनाभिधीयते इत्याह-  
**चरितं पुराणमपि** एकपुरुषाश्रिता कथा चरितं त्रिषष्टिशलाकापुरुषाश्रिता कथा पुराणं, तदुभयमपि प्रथमानुयोगशब्दाभिधेयम् । तस्य प्रकल्पितत्वव्यवच्छेदार्थमर्थाख्यानमिति विशेषणम्, अर्थस्य परमार्थस्य विषयस्याख्यानं प्रतिपादनं यत्र येन वा तम् । तथा **पुण्यं** प्रथमानुयोगं हि शृण्वतां पुण्यमुत्पद्यते इति पुण्यहेतुत्वात्पुण्यं तदनुयोगम् । तथा **बोधिसमाधिनिधानम्** अप्राप्तानां हि सम्यग्दर्शनादीनां प्राप्तिर्बोधिः, प्राप्तानां तु पर्यन्तप्रापणं समाधिः ध्यानं वा धम्मयं शुक्लं च समाधिः तयोर्निधानम् । तदनुयोगं हि शृण्वतां सदृशनादेः प्राप्त्यादिकं धम्मयध्यानादिकं च भवति ॥२॥

## आर्यिका-आदिमति :

सम्यग्श्रुतज्ञान प्रथमानुयोग को जानता है । जिसमें एक पुरुष से सम्बन्धित कथा होती है, वह चरित्र कहलाता है और जिसमें त्रेशठ शलाका पुरुषों से सम्बन्ध रखने वाली कथा होती है, उसे पुराण कहते हैं । चरित्र और पुराण ये दोनों ही प्रथमानुयोग शब्द से कहे जाते हैं । यह प्रथमानुयोग कल्पित अर्थ का वर्णन नहीं करता, किन्तु परमार्थ-भूत विषय का प्रतिपादन करता है । इसलिए इसे अर्थाख्यान कहते हैं । इसको पढ़ने और सुनने वालों को पुण्य का बन्ध होता है, इसलिए इसे पुण्य कहा है । तथा यह प्रथमानुयोग बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शनादिरूप रत्नत्रय की प्राप्ति और समाधि अर्थात् धर्म्य और शुक्लध्यान की प्राप्ति का निधान-खजाना है । इस प्रकार इस अनुयोग को सुनने से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति और धर्म्यध्यानादिक होते हैं ।

## + करणानुयोग -

# लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च आदर्शमिव तथामतिरवैति करणनुयोगं च ॥३॥

**अन्वयार्थ :** [तथा] प्रथमानुयोग की तरह [मतिः] मननरूप श्रुतज्ञान, [लोकालोकविभक्तेः] लोक और अलोक के विभाग को, [युगपरिवृत्तेः] युगों के परिवर्तन [च] और [चतुर्गतीनां] चारों गतियों के लिये [आदर्शम्] दर्पण के [इव] समान करणनुयोग को भी [अवैति] जानता है ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

तथा -

**तथा** तेन प्रथमानुयोगप्रकारेण । मतिर्मननं श्रुतज्ञानम् । अवैति जानाति । कम् ? **करणानुयोगं** लोकालोकविभागं पञ्चसङ्ग्रहादिलक्षणम् । कथम्भूतमिव ? **आदर्शमिव** यथा आदर्शो दर्पणो मुखादेर्यथावत्स्वरूपप्रकाशकस्तथा करणानुयोगोऽपि स्वविषयस्यायं प्रकाशकः । **लोकालोकविभक्तेः** लोक्यन्ते जीवादयः पदार्था यत्रासौ लोकस्त्रिचत्वारिंशदधिकशतत्रयपरिमितरज्जुपरिमाणः, तद्विपरीतोऽलोकोऽनन्तमानावच्छिन्न शुद्धाकाशस्वरूपः तयोर्विभक्तिर्विभागो भेदस्तस्याः आदर्शमिव । तथा **युगपरिवृत्तेः** युगस्य कालस्योत्सर्पिण्यादेः परिवृत्तिः परावर्तनं तस्या आदर्शमिव । तथा **चतुर्गतीनां च** नरकतिर्यग्मनुष्यदेवलक्षणानामादर्शमिव ॥३॥

## आर्यिका-आदिमति :

जिस प्रकार सम्यग्श्रुतज्ञान प्रथमानुयोग को जानता है, उसी प्रकार करणानुयोग को भी जानता है । करणानुयोग में लोक-अलोक का विभाग तथा पंचसंग्रह आदि भी समाविष्ट हैं । यह करणानुयोग दर्पण के समान है । अर्थात् जिस प्रकार दर्पण मुख आदि के यथार्थ स्वरूप का दर्शक है, उसी प्रकार करणानुयोग भी स्व-विषय का प्रकाशक होता है । जिसमें जीवादि पदार्थ देखे जाते हैं, उसे लोक कहते हैं । यह लोक तीन सौ तैतालीस राजू प्रमाण है । इसके विपरीत अनन्त प्रमाणरूप जो शुद्ध-परद्रव्यों के संसर्ग से रहित आकाश है, वह अलोक कहलाता है ।

उत्सर्पिण-अवसर्पिणी आदि काल के भेदों को युग कहते हैं । इनमें सुखमादि छह काल का परिवर्तन होता है, वह युग-परिवर्तन है । नरक, तिर्यच, मनुष्य, देवादि लक्षण वाली चार गतियाँ हैं । करणानुयोग इन सबका विशद् वर्णन करने के लिए दर्पण के समान है ।

## + चरणानुयोग -



# गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम् चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४॥

**अन्वयार्थ :** [सम्यग्ज्ञानं] भावश्रुतरूप सम्यग्ज्ञान [गृहमेध्य] गृहस्थ और [अनगाराणां] मुनियों के [चारित्र्य] चरित्र की [उत्पत्ति] उत्पत्ति, [वृद्धि] वृद्धि और [रक्षाङ्गम्] रक्षा के कारणभूत [चरणानुयोग] चरणानुयोग [समयं] शास्त्र को [विजानाति] जानता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तथा-

**सम्यग्ज्ञानं** भावश्रुतरूपम् । **विजानाति** विशेषेण जानाति । कम् ? **चरणानुयोगसमयं** चारित्रप्रतिपादकं शास्त्रमाचाराङ्गादि । कथम्भूतम् ? **चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गं** चारित्रस्योत्पत्तिश्च वृद्धिश्च रक्षा च तासामङ्गं कारणम् अङ्गानि वा कारणानि प्ररूप्यन्ते यत्र । केषां तदङ्गम् ? **गृहमेध्यनगाराणां** गृहमेधिनः श्रावकाः अनगारा मुनयस्तेषाम् ॥४॥

**आर्यिका-आदिमति :**

सम्यग्ज्ञान चरणानुयोग को भी जानता है । चारित्र का प्रतिपादन करने वाले आचारांग आदि शास्त्र चरणानुयोग शास्त्र कहलाते हैं । इन शास्त्रों में गृहस्थ-श्रावक और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणों का विशद वर्णन है । समीचीन श्रुतज्ञान इन सब शास्त्रों को विशेषरूप से जानता है ।

+ द्रव्यानुयोग -

## जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥५॥

**अन्वयार्थ :** [द्रव्यानुयोगदीपः] द्रव्यानुयोगरूपी दीपक [जीवाजीवसुतत्त्वे] जीव, अजीव, प्रमुख तत्त्वों को [पुण्यापुण्ये] पुण्य और पाप को [बन्धमोक्षौ] बन्ध और मोक्ष को तथा चकार से आस्रव संवर और निर्जरा को [श्रुतविद्यालोकम्] भाव-श्रुतज्ञान-रूप प्रकाश को फैलाता हुआ [आतनुते] विस्तृत करता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**द्रव्यानुयोगदीपो** द्रव्यानुयोगसिद्धान्तसूत्रं तत्त्वार्थसूत्रादिस्वरूपो द्रव्यागमः स एव दीपः स । **आतनुते** विस्तारयति अशेषविशेषतः प्ररूपयति । के ? **जीवाजीवसुतत्त्वे** उपयोगलक्षणो जीवः तद्विपरीततोऽऽजीवः तावेव शोभने अबाधिते तत्त्वे वस्तुस्वरूपे आतनुते । तथा **पुण्यापुण्ये** सद्देद्यशुभायुर्नामगोत्राणि हि पुण्यं ततोऽन्यत्कर्मपुण्यमुच्यते, ते च मूलोत्तरप्रकृतिभेदेनाविशेषविशेषतो द्रव्यानुयोगदीप आतनुते । तथा **बन्धमोक्षौ च** मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगलक्षणहेतुवशादुपार्जितेन कर्मणा सहात्मनः संश्लेषो बन्धः बन्धहेत्वभावनर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षलक्षणो मोक्षस्तावप्यशेषतः द्रव्यानुयोगदीप आतनुते । कथम् ? श्रुतविद्यालोकं श्रुतविद्या भावश्रुतं सैवालोकः प्रकाशो यत्र कर्मणि तद्यथाभवत्येवं जीवादीनि स प्रकाशयतीति ॥५॥

इति प्रभाचन्द्रविरचितायां समन्तभद्रस्वामिविरचितोपसाकध्ययनटीकायां द्वितीयः परिच्छेदः ॥२॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'द्रव्यानुयोग दीपो' द्रव्यानुयोग सिद्धान्त सूत्र तत्त्वार्थसूत्रादिरूप द्रव्यागमरूप दीपक है । उपयोग लक्षण वाला जीव द्रव्य कहलाता है, इससे विपरीत उपयोग लक्षण से रहित अजीवद्रव्य है । सातावेदनीय, शुभायु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्य कर्म कहलाते हैं, इससे विपरीत असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम और अशुभ गोत्र ये पाप कर्म कहलाते हैं । इन सबके मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति के भेद से अनेक भेद हैं । मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगरूप हेतुओं से आत्मा और कर्म का जो परस्पर संश्लेष होता है, उसे बन्ध कहते हैं । बन्ध के हेतुओं के अभावरूप संवर और निर्जरा के द्वारा समस्त कर्मों का आत्मा से पृथक् हो जाना मोक्ष कहलाता है । श्लोक में आये हुए 'च' शब्द से आस्रव, संवर, निर्जरा का भी ग्रहण होता है । इस प्रकार द्रव्यानुयोगरूपी दीपक नौ पदार्थों को श्रुतविद्या-भावश्रुतज्ञानरूपी प्रकाश प्रकाशित करता है अर्थात् जानता है ।

# सम्यक्-चारित्र-अधिकार

+ चारित्र की आवश्यकता -

**मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः  
रागद्वेषनिवृत्तये चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥**

**अन्वयार्थ :** [मोह] दर्शन-मोह रूपी [तिमिर] अंधकार के [अपहरणे] दूर होने पर [दर्शन] सम्यग्दर्शन की [लाभात्] प्राप्ति से जिसे [संज्ञानः] सम्यग्ज्ञान [अवाप्त] प्राप्त हुआ है ऐसा [साधुः] भव्य जीव [रागद्वेषनिवृत्तये] रागद्वेष की निवृत्ति के लिए [चरणं] चारित्र को [प्रतिपद्यते] धारण करते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

'चरणं' हिंसादिनिवृत्तिलक्षणं चारित्रम् । 'प्रतिपद्यते' स्वीकरोति । कोऽसौ ? 'साधु' - भव्यः । कथम्भूतः ? 'अवाप्तसंज्ञानः' । कस्मात् ? 'दर्शनलाभात्' । तल्लाभोऽपि तस्य कस्मिन् सति सञ्जातः ? 'मोहतिमिरापहरणे' मोहो दर्शनमोहः स एव तिमिरं तस्यापहरणे यथासम्भवमुपशमे क्षये क्षयोपशमे वा । अथवा मोहो दर्शनचारित्रमोहस्तिमिरं ज्ञानावरणादि तयोरपहणे । अयमर्थः- दर्शनमोहापहरणे दर्शनलाभः । तिमिरापहरणे सति दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः भवत्यात्मा । ज्ञानावरणापगमे हि ज्ञानमुत्पद्यमानं सद्दर्शनप्रसादात् सम्यग्व्यपदेशं लभते, तथाभूतश्चात्मा चारित्रमोहापगमे चरणं प्रतिपद्यते । किमर्थम् ? 'रागद्वेषनिवृत्तये' रागद्वेषनिवृत्तिनिमित्तम् ॥४७॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'चरणं' हिंसादि पापों से निवृत्ति होने को चारित्र कहते हैं । भव्य जीव ऐसे चारित्र को कब और क्यों धारण करता है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मोह-दर्शनमोह-मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का अपहरण-यथासम्भव उपशम, क्षय, अथवा क्षयोपशम हो जाने पर जिसे सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है और सम्यक्त्व की प्राप्ति होने से जिसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ है, ऐसा भव्य पुरुष रागद्वेष की निवृत्ति के लिए चारित्र धारण करता है । अथवा, 'मोहो दर्शनचारित्रमोहस्तिमिरं ज्ञानावरणादितयोरपहरणे' अर्थात् मोह का अर्थ दर्शनमोह तथा चारित्रमोह इन दो भेदों से उपलक्षित मोहकर्म और तिमिर शब्द का अर्थ ज्ञानावरणादि कर्म है, जब इन दोनों का अभाव हो जाता है तभी जीव को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है । तात्पर्य यह है कि दर्शनमोह का अभाव हो जाने से सम्यग्दर्शन का लाभ होता है और ज्ञानावरणादि के अभाव-क्षयोपशम होने से ज्ञान प्राप्त होता है । सम्यग्दर्शन के प्रसाद से ज्ञान में समीचीनपने का व्यवहार होता है । इस प्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को जिस भव्यात्मा ने प्राप्त कर लिया है, वह चारित्रमोहरूप राग-द्वेष को दूर करने के लिए चारित्र को प्राप्त करता है ।

+ चारित्र कब होता है? -

**रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति  
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥**

**अन्वयार्थ :** [रागद्वेषनिवृत्तेः] रागद्वेष की निवृत्ति से [हिंसादि निवर्तनः] हिंसादि पापों की निवृत्ति [कृता भवति] स्वयं हो जाती है [अनपेक्षितार्थवृत्तिः] जिसे किसी प्रयोजन-रूप फल की प्राप्ति अभिलषित न हो [कः पुरुषः] कौन पुरुष [नृपतीन् सेवते] राजाओं की सेवा करता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**हिंसादेः निवर्तना** व्यावृत्तिः कृता भवति । कुतः ? रागद्वेषनिवृत्तेः । अयमत्र तात्पर्यार्थः- प्रवृत्तरागादिक्षयोपशमादेः हिंसादिनिवृत्तिलक्षणं चारित्रं भवति । ततो भाविरागादिनिवृत्तेरेव प्रकृष्टतरप्रकृष्टतमत्वात् हिंसादि निवर्तते । देशसंयतादिगुणस्थाने रागादिहिंसादिनिवृत्तिस्तावद्वर्तते यावन्निःशेषरागादिप्रक्षयः तस्माच्च निःशेषहिंसादिनिवृत्तिलक्षणं परमोदासीनतास्वरूपं परमोत्कृष्टचारित्रं भवतीति । अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थमर्थान्तरन्यासमाह- **अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन्** अनपेक्षिताऽनभिलषिता अर्थस्य प्रयोजनस्य फलस्य वृत्तिः प्राप्तिर्येन स तथाविधः पुरुषः को, न कोऽपि प्रेक्षापूर्वकारी, सेवते नृपतीन् ॥४८॥

## आर्यिका-आदिमति :

रागद्वेष की निवृत्ति से हिंसादि पापों की निवृत्ति स्वतः हो जाती है । तात्पर्य यह है कि वर्तमान में जिन रागादि भावों की प्रवृत्ति है उनका क्षयोपशमादि होने पर हिंसादि पापों का त्यागरूप चारित्र होता है । तदनन्तर आगामी काल में उत्पन्न होने वाले रागादि भावों की निवृत्ति भी हो जाती है, इसी प्रकार आगे-आगे प्रकृष्ट से प्रकृष्टतर और प्रकृष्टतम निवृत्ति होती जाती है । तथा ऐसा होने पर हिंसादि पापों की स्वयं निवृत्ति हो जाती है । देशसंयतादि गुणस्थानों में रागादिभाव और हिंसादि पापों की निवृत्ति वहाँ तक होती जाती है, जहाँ तक कि पूर्णरूप से रागादि का क्षय और उससे होने वाली समस्त हिंसादि पापों के त्यागरूप लक्षण वाला परम उदासीनता स्वरूप परमोत्कृष्ट चारित्र होता है । इसी अर्थ का समर्थन करने के लिए अर्थान्तरन्यास द्वारा दृष्टान्त देते हैं कि 'अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुः सेवते नृपतीन्' अर्थात् जिसे किसी भी अभिलषित फल की चाह नहीं है, ऐसा कौनसा पुरुष राजाओं की सेवा करता है ? अर्थात् कोई बुद्धिमान् मनुष्य नहीं करता ।

### + चारित्र का लक्षण -

## हिंसानृतचौर्येभ्यो, मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च पापप्रणालिकाभ्यो, विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥४९॥

**अन्वयार्थ :** हिंसा, [नृत] झूठ, चोरी, [मैथुन] कुशील और परिग्रह ये पांच [पापप्रणालिकाभ्यो] पाप की नाली के समान पापों के आने के कारण हैं, इनसे विरति का [संज्ञस्य] नाम ही चारित्र है ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

'चारित्रं' भवति । कासौ ? 'विरति' व्यावृत्तिः । केभ्यः 'हिंसानृतचौर्येभ्यः' ? हिंसादीनां स्वरूपकथनं स्वयमेवाग्रे ग्रन्थकारः करिष्यति । न केवलमेतेभ्य एव विरति :- अपि तु 'मैथुनसेवापरिग्रहाभ्याम्' । एतेभ्यः कथम्भूतेभ्यः ? 'पापप्रणालिकाभ्यः' पापस्य प्रणालिका इव पापप्रणालिका आस्रवद्वाराणि ताभ्यः । कस्य तेभ्यो विरतिः ? 'संज्ञस्य' सम्यग्जानातीति संज्ञः तस्य हेयोपादेयतत्त्वपरिज्ञानवतः ॥४९॥

## आर्यिका-आदिमति :

हिंसादि पापों के त्याग से चारित्र होता है । हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुनसेवन और परिग्रह इनके स्वरूप का कथन ग्रन्थकार आगे करेंगे, क्योंकि ये पापरूप गन्दे पानी को बहाने के लिए गन्दे नालों के समान हैं, इसलिए हेय और उपादेय तत्त्वों के ज्ञाता इन पापों से विरक्त होते हैं ।

### + चारित्र के भेद और उपासक -

## सकलं विकलं चरणं, तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम् अनगाराणां विकलं, सागाराणां ससङ्गानाम् ॥५०॥

**अन्वयार्थ :** [चरणं] चारित्र दो प्रकार का कहा है -- [सकलं विकलं] सकल-चारित्र और विकल-चारित्र । [तत्] इनमें सकल चारित्र तो [सर्व] सम्पूर्ण [सङ्ग] परिग्रह से [विरतानाम्] विरक्त, ऐसे [अनगाराणां] मुनि को कहा है और विकल-चारित्र को [ससङ्गानाम्] परिग्रह सहित [सागाराणां] गृहस्थ धारण करते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

हिंसादिविरतिलक्षणं यच्चरणं प्राक्प्ररूपितं तत् सकलं विकलं च भवति । तत्र सकलं परिपूर्णं महाव्रतरूपम् । केषां तद्भवति ? अनगाराणां मुनीनाम् । किंविशिष्टानां सर्वसङ्गविरतानां बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहितानाम् । विकलं परिपूर्णम् अणुव्रतरूपम् । केषां तद्भवति सागाराणां गृहस्थानाम् । कथम्भूतानाम् ? ससङ्गानां सग्रन्थानाम् ॥

## आर्यिका-आदिमति :

हिंसादि पापों के त्याग-रूप लक्षण से युक्त जिस चारित्र का पहले वर्णन किया है वह चारित्र सकल और विकल के भेद से दो प्रकार का होता है । उनमें सकल-चारित्र परिपूर्ण महा-व्रत-रूप कहा है, जो बाह्य और आभ्यन्तर समस्त परिग्रह के त्यागी मुनियों के होता है । विकल-चारित्र देश-चारित्र-रूप है, जो पंच अणु-व्रत के धारक परिग्रह से सहित गृहस्थों के होता है ।

+ विकल चारित्र के भेद -

## गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण शिक्षाव्रतात्मकं चरणं पञ्च-त्रि-चतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम् ॥५१॥

**अन्वयार्थ :** [गृहिणां] गृहस्थों का [चरणं] विकल-चारित्र [अणु-गुण-शिक्षाव्रतात्मकं] अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत के भेद से [त्रेधा] तीन प्रकार का [तिष्ठति] है उन [त्रयं] तीनों में [यथासंख्यं] प्रत्येक के क्रमशः [पञ्च-त्रि-चतुर्भेदं] पञ्च, तीन व चार भेद [अख्यातं] कहे गए हैं

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**गृहिणां** सम्बन्धी यत् विकलं चरणं तत् **त्रेधा** त्रिप्रकारम् । **तिष्ठति** भवति । किं विशिष्टं सत् ? **अणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं** सत् अणुव्रतरूपं गुणव्रतरूपं शिक्षाव्रतरूपं सत् । त्रयमेव । तत्प्रत्येकम् । **यथासंख्यम्** । **पञ्चत्रिचतुर्भेदमाख्यातं** प्रतिपादितम् । तथाहि- अणुव्रतं पञ्चभेदं गुणव्रतं त्रिभेदं शिक्षाव्रतं चतुर्भेदमिति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

गृहस्थों का जो विकल-चारित्र है, वह अणु-व्रत, गुण-व्रत और शिक्षा-व्रत के भेद से तीन प्रकार का है । उन तीनों में प्रत्येक के क्रम से पाँच भेद, तीन भेद और चार भेद कहे गये हैं । अर्थात् पाँच अणु-व्रत, तीन गुण-व्रत और चार शिक्षा-व्रत-रूप भेद जानने चाहिए ।

# अणुव्रत-अधिकार

+ अणुव्रत का लक्षण -

## प्राणातिपातवितथ व्याहारस्तेय काम मूर्च्छाभ्यः स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

**अन्वयार्थ :** [प्राणातिपात] हिंसा, [वितथव्याहार] झूठ, [स्तेय] चोरी, [काम] कुशील और [मूर्च्छा] परिग्रह [स्थूलेभ्यः] स्थूल रूप से [पापेभ्यः] पापों से [व्युपरमणं] विरत होना [अणुव्रतं] अणुव्रत [भवति] है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अणुव्रतं विकलव्रतम् । किं तत् ? व्युपरमणं व्यावर्तनं यत् । केभ्यः इत्याह- प्राणेत्यादि प्राणानामिन्द्रियादीनामतिपातश्चातिपतनं वियोगकरणं विनाशनम् । वितथव्याहाराश्च वितथो असत्यः स चासौ व्याहारश्च शब्दः । स्तेयं च चौर्यम् । कामश्च मैथुनम् । मूर्च्छा च परिग्रहः मूर्च्छा च मूर्च्छयते लोभावेशात् परिग्रहयते इति मूर्च्छा इति व्युत्पत्तेः । तेभ्यः । कथम्भूतेभ्यः ? स्थूलेभ्यः । अणुव्रतधारिणो हि सर्वसावद्यविरतेरसम्भवात् स्थूलेभ्य एव हिंसादिभ्यो व्युपरमणं भवति । स हि त्रसप्राणातिपातात्रसप्राणातिपातान्निव्रत्तो न स्थावरप्राणातिपातात् । तथा पापादिभयात् परपीडादिकारणमिति मत्वा स्थूलादसत्यवचननिव्रत्तो न तद्विपरीतात् । तथा उपात्ताया अनुपात्तायाश्च पराङ्गनायाः पापाभयादिना निव्रत्तो नान्यथा इति स्थूलरूपात् परिग्रहान्निव्रत्तिः । कथम्भूतेभ्यः प्राणातिपातादिभ्यः ? पापेभ्यः पापास्रणद्वारेभ्यः ॥५२॥

**आर्यिका-आदिमति :**

इन्द्रियादि प्राणों का वियोग करना प्राणातिपात है । असत्य वचन बोलना वितथ-व्यवहार है । स्वामी की आज्ञा के बिना किसी वस्तु को ग्रहण करना चोरी है । मैथुन-सेवन काम है और लोभ के वशीभूत होकर बाह्य परिग्रह को ग्रहण करना परिग्रह-मूर्च्छा है । ये पाँच पाप स्थूल और सूक्ष्म की अपेक्षा दो प्रकार के हैं । इनमें स्थूल पापों से विरक्त होना अणुव्रत कहलाता है



। अणुव्रतधारी जीवों के सूक्ष्म सम्पूर्ण पापों का त्याग होना असम्भव है । इसलिए वे स्थूल हिंसादि पापों का ही त्याग कर अणुव्रत धारण कर सकते हैं । अहिंसाणुव्रतधारी पुरुष त्रसहिंसा से तो विरक्त होता है, परन्तु स्थावर हिंसा से निवृत्त नहीं होता । सत्याणुव्रत का धारक पापादिक के भय से पर-पीड़ाकारकादि स्थूल असत्य वचन से निवृत्त होता है, किन्तु सूक्ष्म असत्य वचन से नहीं । अचौर्याणुव्रत का धारी पुरुष राजादिक के भय से दूसरे के द्वारा छोड़ी गई अदत्तवस्तु का स्थूलरूप से त्यागी होता है, सूक्ष्मरूप से नहीं । ब्रह्मचर्याणुव्रत का धारक पाप के भय से दूसरे की गृहीत अथवा अगृहीत स्त्री से विरक्त होता है, स्वस्त्री से नहीं । इसी प्रकार परिग्रह परिमाणानुव्रत का धारी पुरुष धन-धान्य तथा खेत आदि परिग्रह का अपनी इच्छानुसार परिमाण करता है, इसलिए स्थूल परिग्रह का ही त्यागी होता है, सूक्ष्म का नहीं । ये हिंसादि कार्य पापरूप हैं, क्योंकि पाप कर्मों के आस्रव के द्वारा हैं। इनके निमित्त से जीव के सदा पापकर्मों का आस्रव होता रहता है ।

+ अहिंसा अणुव्रत -

## सङ्कल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान् न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

**अन्वयार्थ :** [यत्] जो [योगत्रयस्य] मन-वचन-काय के [कृतकारितमननात्] कृत, कारित, अनुमोदना रूप [सङ्कल्पात्] संकल्प से [चर] त्रस [सत्त्वान्] जीवों को [न हिनस्ति] नहीं मारता है [तत्] उसे, [निपुणाः] गणधर आदिक [स्थूलवधात्] स्थूल-हिंसा से [विरमणम्] विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत [आहुः] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**चरसत्त्वान्** त्रसजीवान् । **यत्र हिनस्ति** । तदाहुः **स्थूलवधाद्विरमणम्** । के ते ? **निपुणाः** हिंसादि-विरतिव्रतविचारदक्षाः । कस्मान्न हिनस्ति ? **सङ्कल्पात्** सङ्कल्पं हिंसाभिसन्धिमाश्रित्य । कथम्भूतात् सङ्कल्पात् ? **कृतकारितानुमननात्** कृतकारितानुमननरूपात् । कस्य सम्बन्धिनः ? **योगत्रयस्य** मनोवाक्कायत्रयस्य । अत्र कृतवचनं कर्तुः स्वातन्त्र्यप्रतिपत्त्यर्थम् । कारितानुविधानं परप्रयोगोक्षमनुवचनम् । अनुमननवचनं प्रयोजकस्य मानसपरिणामप्रदर्शनाथम् । तथा हि -- मनसा चरसत्त्वहिंसां स्वयं न करोमि, चरसत्त्वान् हिनस्मीति मनः सङ्कल्पं न करोमीत्यर्थः । मनसा चरसत्त्वहिंसामन्यं न कारयामि, चरसत्त्वान् हिंसय-हिंसयेति मनसा प्रयोजको न भवामीत्यर्थः । तथा अन्यं चरसत्त्वहिंसां कुर्वन्तं मनसा नानुमन्ये, सुन्दरमनेन कृतमिति मनः सङ्कल्पं न करोमीत्यर्थः । एवं वचसा स्वयं चरसत्त्वहिंसां न करोमि चरसत्त्वान् हिनस्मीति स्वयं वचनं नोच्चारयामीत्यर्थः । वचसा चरसत्त्वहिंसां न करोमि चरसत्त्वान् हिनस्मीति स्वयं वचनं नोच्चारयामीत्यर्थः । वचसा चरसत्त्वहिंसां न कारयामि चरसत्त्वान् हिंसय हिंसयेति वचनं नोच्चारयामीत्यर्थः । तथा वचसा चरसत्त्वहिंसां कुर्वन्तं नानुमन्ये, साधुकृतं त्वयेति वचनं नोच्चारयामीत्यर्थः । तथा कायेन चरसत्त्वहिंसा न करोमि, चरसत्त्वहिंसने दृष्टिमुष्टिसन्धाने स्वयं कायव्यापारं न करोमीत्यर्थः । तथा कायेन चरसत्त्वहिंसां न कारयामि, चरसत्त्वहिंसने कायसञ्ज्ञया परं न प्रेरयामीत्यर्थः । तथा चरसत्त्वहिंसां कुर्वन्तमन्यं नरवच्छोटिकादिना कायेन नानुमन्ये । इत्युक्तमहिंसाणुव्रतम् ॥५३॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'मैं इस जीव को मारूँ' इस अभिप्राय से जो हिंसा की जाती है, उसे संकल्प कहते हैं । यह संकल्प मन, वचन और काय इन तीनों योगों की कृत, कारित तथा अनुमोदनारूप परिणति से होता है । किसी कार्य को स्वतन्त्ररूप से स्वयं करना कृत है । दूसरे से कराना कारित है और कराने वाले के लिए अपने मानसिक परिणामों को प्रकट करते हुए अनुमति के वचन कहना अनुमोदना है । इस प्रकार यह कृत-कारित-अनुमोदना मन, वचन व कायरूप तीनों योगों से प्रकट होती है । यथा-

1. मैं मन से त्रस जीवों की हिंसा स्वयं नहीं करता हूँ अर्थात् मैं त्रस जीवों को मारूँ ऐसा मन से संकल्प नहीं करता हूँ ।
2. दूसरों से त्रस हिंसा नहीं कराता हूँ अर्थात् 'तुम त्रस जीवों को मारो' ऐसा मन से संकल्प नहीं करता हूँ ।
3. त्रस जीवों की हिंसा करते हुए किसी जीव की मन से अनुमोदना नहीं करता हूँ अर्थात् 'इसने यह कार्य अच्छा किया' ऐसा मन से संकल्प नहीं करता हूँ ।
4. इसी प्रकार वचन से मैं स्वयं त्रस जीवों की हिंसा नहीं करता हूँ अर्थात् 'मैं त्रस जीवों को मारूँ' ऐसे वचन नहीं बोलता हूँ ।
5. वचन से दूसरों के द्वारा त्रस जीवों की हिंसा नहीं कराता हूँ अर्थात् 'तुम त्रस जीवों को मारो' ऐसे वचनों का प्रयोग नहीं करता हूँ ।
6. तथा त्रस जीवों को हिंसा करते हुए अन्य पुरुष की वचन से अनुमोदना नहीं करता हूँ अर्थात् 'तुमने बहुत अच्छा किया' ऐसा वचनों से उच्चारण नहीं करता हूँ ।
7. काय से त्रस जीवों की स्वयं हिंसा नहीं करता हूँ अर्थात् स्वयं आँख से संकेत करना मूँ बाँधना आदि शारीरिक व्यापार नहीं करता हूँ ।
8. शरीर से दूसरे के द्वारा त्रस जीवों की हिंसा नहीं कराता हूँ अर्थात् शरीर के संकेत से दूसरे को प्रेरित नहीं करता हूँ ।

9. त्रस जीवों की हिंसा करते हुए किसी अन्य पुरुष को चुटकी बजाना आदि शरीर के अन्य किसी व्यापार से अनुमति नहीं देता हूँ ।

इन नौ कोटि से त्रस हिंसा का त्याग करना अहिंसाणुव्रत है ॥५३॥

+ अहिंसा अणुव्रत के अतिचार -

## छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः आहारवारणापि च स्थूलवधाद् व्युपरतेः पञ्च ॥५४॥

**अन्वयार्थ :** [स्थूलवधाद् व्युपरतेः] स्थूल-वध से विरत (अहिंसाणुव्रत) के, [छेदनबन्धनपीडनम्] छेदना, बांधना, पीड़ा देना, [अतिभारारोपणम्] अधिक भार लादना [अपि] और [आहारवारणा] आहार का रोकना [एते] ये पाँच [व्यतीचाराः] अतिचार हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**व्यतीचारा** विविधा विरूपका वा अतीचारा दोषाः । कति ? पञ्च । कस्य ? स्थूलवधाद् व्युपरतेः । कथमित्याह छेदनेत्यादि कर्णनासिकादीनामवयवानामपनयनं छेदनं, अभिमतदेशे गतिनिरोधहेतुर्बन्धनं, पीडादण्डकशाद्यभिघातः, अतिभारारोपणं न्याय्यभारादधिकभारारोपणम् । न केवलमेतच्चतुष्टयमेव किन्तु आहारवारणापि च आहारस्य अन्नपानलक्षणस्य वारणा निषेधो धारणा वा निरोधः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'विविधा विरूपका वा अतिचारा दोषाः व्यतीचाराः' इस समास के अनुसार व्यतीचार का अर्थ है- नाना प्रकार के अथवा व्रत को विकृत करने वाले दोष । ये अतिचार-दोष पाँच हैं । दुर्भावना से नाक, कानादि अवयवों को छेदना, इच्छित स्थान पर जाने से रोकने के लिए रस्सी आदि से बाँध देना, डण्डे कोड़े आदि से पीटना, उचित भार से अधिक भार लादना तथा अन्न पानादिरूप आहार का निषेध करना अथवा थोड़ा देना -- अहिंसाणुव्रत के ये पाँच अतिचार हैं ॥५४॥

+ सत्याणुव्रत -

## स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥५५॥

**अन्वयार्थ :** [यत्] जो [स्थूलम्] स्थूल [अलीकम्] झूठ को [न वदति] न स्वयं बोलता है [च] और न [परान्] दूसरों से [वादयति] बुलवाता है और [विपदे] ऐसा [सत्यम्] सत्य [अपि] भी न स्वयं बोलता है न दूसरों से बुलवाता है जो दूसरे के प्राणघात के लिये हो [तत्] उसे [सन्तः] सत्पुरुष [स्थूलमृषावादवैरमणम्] स्थूल झूठ का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत [वदन्ति] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**स्थूलमृषावादवैरमणं** स्थूलश्चासौ मृषावादश्च तस्माद्वैरमणं विरमणमेव वैरमणम् । तद्वदन्ति । के ते ? सन्तः सत्पुरुषाः गणधरदेवादयः । तत्किम्, सन्तो यत्र वदन्ति । अलीकम् असत्यम् । कथम्भूतम् ? स्थूलम् यस्मिन्नुक्ते स्वपरयोर्वधबन्धादिकं राजादिभ्यो भवति तत्स्वयं तावन्न वदति । तथा परान् अन्यान् तथाविधमलीकं न वादयति । न केवलमलीकं किन्तु सत्यमपि चोरोऽयमित्यादिरूपं न स्वयं वदति न परान् वादयति । किं विशिष्टं यदुक्तं सत्यमपि परस्य विपदे ऽपकाराय भवति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'विरमणमेव वैरमणम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार वैरमण शब्द में स्वार्थ में अण् प्रत्यय हुआ है । इसलिए जो अर्थ विरमण शब्द का होता है, वही वैरमण शब्द का अर्थ है । 'स्थूलं' का अर्थ यह है कि जिसके कहने से स्व और पर के लिए राज्यादिक से वध बन्धनादिक प्राप्त हों ऐसे स्थूल असत्य को जो न तो स्वयं बोलता है और न दूसरों को प्रेरित कर बुलवाता है तथा ऐसा सत्य भी जैसे 'यह चोर है' इत्यादि न स्वयं बोलता है, न दूसरों से बुलवाता है, उसे सत्याणुव्रत कहते हैं ।

+ सत्याणुव्रत के अतिचार -

## परिवाद-रहोभ्याख्या-पैशून्यं कूटलेखकरणं च न्यासापहारितापि च, व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥५६॥

**अन्वयार्थ :** [परिवाद] झूठा उपदेश देना, [रहोभ्याख्या] अन्यो की एकांत की गुप्त क्रियाओं को प्रगट करना, [पैशून्य] पर की चुगली निन्दा करना, [कूटलेखकरण] झूठे लेख दस्तावेज आदि लिखना और [न्यासापहार] यदि कोई धरोहर की संख्या को भूल जावे तो उसे उतनी ही कहकर बाकी हड़प लेना, सत्याणुव्रत के ये [पञ्च] पांच [व्यतिक्रम] अतिचार हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अकृशचौर्यात् स्थूलचौर्यात् । उपारमणं तत् । यत् न हरति न गृह्णाति । किं तत् ? परत्वं परद्रव्यम् । कथम्भूतम् ? निहितं वा धृतम् । तथा पतितं वा । तथा सुविस्मृतं वा अतिशयेन विस्मृतम् । वा शब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चये । इत्थम्भूतं परस्वम् अविसृष्टम् अदत्तं यत्स्वयं न हरति न दत्तेऽन्यस्मै तदकृशचौर्यादुपारमणं प्रतिपत्तव्यम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

- **परिवाद** का अर्थ मिथ्योपदेश है अर्थात् अभ्युदय और मोक्ष की प्रयोजनभूत क्रियाओं में दूसरे को अन्यथा प्रवृत्ति कराना परिवाद या मिथ्योपदेश है ।
- स्त्री-पुरुषों की एकान्त में की हुई विशिष्ट क्रिया को प्रकट करना **रहोभ्याख्यान** है ।
- अंगविकार तथा भौहों का चलाना आदि के द्वारा दूसरे के अभिप्राय को जानकर इर्षावश उसे प्रकट करना **पैशून्य** है । इसे साकारमन्त्रभेद कहते हैं ।
- दूसरे के द्वारा अनुक्त अथवा अकृत किसी कार्य के विषय में ऐसे कहना कि यह उसने कहा है या किया है, इस प्रकार धोखा देने के अभिप्राय से कपटपूर्ण लेख लिखना **कूटलेखकरण** है ।
- तथा धरोहर रखनेवाला व्यक्ति यदि अपनी वस्तु की संख्या को भूलकर अल्पसंख्या में ही वस्तु को मांग रहा है तो कह देना हाँ, इतनी ही तुम्हारी वस्तु है, ले लो, इसे **न्यासापहारिता** कहते हैं ।

इस प्रकार परिवादादिक चार और न्यासापहार मिलकर सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार होते हैं ।

+ अचौर्याणुव्रत -

## निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं न हरति यत्र च दत्ते तदकृशचौर्यादुपारमणम् ॥५७॥

**अन्वयार्थ :** [निहितं] रखे हुए [वा] या [पतितं] पड़े हुए अथवा [सुविस्मृतं] बिल्कुल भूले हुए [अविसृष्टं] बिना दिये हुए [परस्वम्] दूसरे के धन को [न हरति] न स्वयं लेता है और [न च दत्ते] न किसि दूसरे को देता है वह [अकृशचौर्यात्] स्थूलचोरी का [उपारमणम्] परित्याग अर्थात् अचौर्याणुव्रत है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अधुना चौर्यविरत्यणुव्रतस्य स्वरूपं प्ररूपयन्नाह --

अकृशचौर्यात् स्थूलचौर्यात् । उपारमणं तत् । यत् न हरति न गृह्णाति । किं तत् ? परत्वं परद्रव्यम् । कथम्भूतम् ? निहितं वा धृतम् । तथा पतितं वा । तथा सुविस्मृतं वा अतिशयेन विस्मृतम् । वा शब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चये । इत्थम्भूतं परस्वम् अविसृष्टम् अदत्तं यत्स्वयं न हरति न दत्तेऽन्यस्मै तदकृशचौर्यादुपारमणं प्रतिपत्तव्यम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

अकृशचौर्य का अर्थ स्थूल चोरी है । दूसरे का द्रव्य रखा हुआ हो, पड़ा हो, भूला हुआ हो, वा शब्द सर्वत्र परस्पर समुच्चय के लिए है ऐसे धन को बिना दिये न स्वयं लेता है और न उठाकर अन्य को दे देता है। इस स्थूल चोरी से उपारमणं- निवृत्त होना यह अचौर्याणुव्रत है ।

+ अचौर्याणुव्रत के अतिचार -

# चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥

**अन्वयार्थ :** [चौरप्रयोग] चोरी में सहयोग देना, [चौरार्थादान] चोरी का माल खरीदना, [विलोप] राज्य-विरुद्ध / गैर-कानूनी कार्य करना, [सदृशसन्मिश्र] अनुचित लाभ के लिए असली वस्तु में नकली वस्तु मिलाकर बेचना और [हीनाधिक-विनिमान] नाप-तोल में हेरा-फेरी करना, ये पाँच [अस्तेये] अचौर्याणुव्रत के [व्यतीपाताः] अतिचार हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तस्यैदानीमतिचारानाह --

**अस्तेये** चौर्यविरमणे । **व्यतीपाता** अतीचाराः पञ्च भवन्ति । तथा हि । चौरप्रयोगः चोरयतः स्वयमेवान्येन वा प्रेरणं प्रेरितस्य वा अन्येनानुमोदनम् । चौरार्थादानं च अप्रेरितेनानुमतेन च चोरेणानीतस्यार्थस्य ग्रहणम् । विलोपश्च उचितन्यायादन्येन प्रकारेणार्थस्यादानं विरुद्धराज्यातिक्रम इत्यर्थः । विरुद्धराज्ये स्वल्पमूल्यानि महार्घाणि द्रव्याणीति कृत्वा स्वल्पतरेणार्थेन गृह्णाति । सदृशसन्मिश्रश्च प्रतिरूपकव्यवहार इत्यर्थः सदृशेन तैलादिना सन्मिश्रं घृतादिकं करोति । कृत्रिमैश्च हिरण्यादिभिर्वञ्चनापूर्वकं व्यवहारं करोति । हीनाधिकविनिमानं विविधं नियमेन मानं विनिमानं मानोन्मानमित्यर्थः । मानं हि प्रस्थादि, उन्मानं तुलादि, तच्च हीनाधिकं, हीनेन अन्यस्मै ददाति, अधिकेन स्वयं गृह्णातीति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं, तद्यथा --

- चोरी करने वाले चोर को स्वयं प्रेरणा देना, दूसरे से प्रेरणा दिलाना और किसी ने प्रेरणा दी हो तो उसकी अनुमोदना करना **चौर-प्रयोग** है ।
- **चौरार्थादान** जिसे अपने द्वारा प्रेरणा नहीं दी गई है तथा जिसकी अनुमोदना भी नहीं की गई है, ऐसे चोर के द्वारा चुराकर लायी हुई वस्तु को ग्रहण करना चौरार्थादान है । क्योंकि चोरी के माल को खरीदने से चोर को चोरी करने की प्रेरणा मिलती है ।
- **विलोप** उचित न्याय को छोड़कर अन्य प्रकार के पदार्थ का ग्रहण करना इसे विलोप कहते हैं, इसे ही विरुद्धराज्यातिक्रम कहते हैं । जिस राज्य में अन्य राज्य की वस्तुओं का आना-जाना निषिद्ध किया गया है, उसे विरुद्ध राज्य कहते हैं । विरुद्ध राज्य में महँगी वस्तुएँ अल्पमूल्य में मिलती हैं, ऐसा समझकर वहाँ स्वल्प मूल्य में वस्तुओं को खरीदना और अपने राज्य में अधिक मूल्य में बेचना विरुद्धराज्यातिक्रम कहलाता है ।
- **सदृशसन्मिश्र** समान रूप रंग वाली नकली वस्तु को असली वस्तु में मिलाकर असली वस्तु के भाव से बेचना, जैसे घी में तैल आदि मिश्रित करके बेचना, कृत्रिम-बनावटी सोना-चाँदी आदि के द्वारा दूसरों को धोखा देते हुए व्यापार करना सदृशसन्मिश्र कहलाता है ।
- **हीनाधिकविनिमान** जिससे वस्तुओं का लेन-देन होता है इसको विनिमान कहते हैं, मानोन्मान भी कहते हैं । जिसमें भरकर या तौलकर वस्तु दी जाती है, उसे 'मान' कहते हैं । जैसे- प्रस्थ, तराजू आदि । और जिससे नापकर वस्तु ली या दी जाती है, उसे उन्मान कहते हैं । जैसे -- गज, फुट आदि । किसी वस्तु को देते समय कम देना हीन है और खरीदते समय अधिक लेना हीनाधिक मानोन्मान कहलाता है ।

अचौर्याणुव्रत का धारी मनुष्य इन सब अतिचारों से दूर रहकर अपने व्रतों की सुरक्षा करता है ।

+ ब्रह्मचर्य अणुव्रत -

## न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत् सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥५९॥

**अन्वयार्थ :** [यत्] जो [पापभीतेः] पाप के भय से [परदारान्] परस्त्रियों के प्रति [न तु] न तो [गच्छति] स्वयं गमन करता है [च] और [न परान्] न दूसरों को [गमयति] गमन कराता है [सा] वह [परदारनिवृत्तिः] परस्त्री-त्याग [अपि] तथा [स्वदारसन्तोषनाम] स्वदारसन्तोष नाम का अणुव्रत है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**सा परदारनिवृत्तिः** यत् परदारान् परिगृहीतानपरिगृहीतांश्च । स्वयं न च नैव । तथा परानन्यान् परदारलम्पटान् न गमयति परदारेषु गच्छती यत्प्रयोजनानि न च । कुतः ? **पापभीतेः** पापोपार्जनभयात् न पुनः नृपत्यादिभयात् । न केवलं सा परदारनिवृत्तिरेवोच्यते किन्तु **स्वदारसन्तोषनामापि** स्वदारेषु सन्तोषः स्वदारसन्तोषस्तन्नाम यस्याः ॥



## आर्यिका-आदिमति :

परदार शब्द का समास -- 'परस्य दाराः परदारास्तान्' अर्थात् पर की स्त्री, अथवा 'पराश्च ते दाराश्च परदारास्तान्' अर्थात् परस्त्रियाँ । यहाँ पर पहले समास में पर के द्वारा गृहीत स्त्री को ग्रहण किया है और दूसरे में पर के द्वारा जो ग्रहण नहीं की गई है, ऐसी कन्या अथवा वेश्या का ग्रहण होता है । इस प्रकार परिगृहीत और अपरिगृहीत दोनों प्रकार की परस्त्रियों के साथ पापोपार्जन के भय से, न कि राजादिक के भय से, न स्वयं संगम करता है और न परस्त्री लम्पट अन्य पुरुषों को गमन कराता है, वह परस्त्री-त्याग अणुव्रत अथवा स्वदारसन्तोषव्रत कहलाता है ।

+ ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार -

## अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडावितत्वविपुलतृषः इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥६०॥

**अन्वयार्थ :** [अन्यविवाहाकरण] अपने व आश्रित कि संतान को छोड़कर अन्य का विवाह कराना, [अनङ्गक्रीडा] कामसेवन के निश्चित अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से सेवन करना, [वितत्व] शरीर से कुचेष्टा करना, मुख से अश्लील शब्द बोलना [विपुलतृषः] कामसेवन की तीव्र अभिलाषा होना [इत्वरिकागमनं] व्याभिचारिणी स्त्री / वेश्यादि के पास आना जाना, ये पांच [अस्मरस्य] ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**अस्मरस्या** ब्रह्मनिवृत्यणुव्रतस्य । पञ्च व्यतीचाराः । कथमित्याह- अन्येत्यादि- कन्यादानं विवाहोऽन्यस्य विवाहोऽन्यविवाहः तस्य आ समन्तात् करणं, तच्च अनङ्गक्रीडा च अङ्गं लिङ्गं योनिश्च तयोरन्यत्र मुखादिप्रदेशे क्रीडा अनङ्गक्रीडा । वितत्वं भण्डिमाप्रधानकायवाक्प्रयोगः । विपुलतृषं च कामतीव्राभिनिवेशः । इत्वरिकागमनं च परपुरुषानेति गच्छतीत्येवंशीला इत्वरी पुंश्रुली कुत्सायां के कृते इत्वरिका भवति तत्र गमनं चेति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

ब्रह्मचर्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं --

- **अन्यविवाहाकरण** कन्यादान को विवाह कहते हैं । अपनी या अपने आश्रित बन्धुजनों की सन्तान को छोड़कर अन्य लोगों की सन्तान का विवाह प्रमुख बनकर करना, वह अन्य विवाहाकरण है । किन्तु सहधर्मी भाई के नाते उनके विवाह में सम्मिलित होने में कोई निषेध नहीं है ।
- **अनङ्गक्रीडा** कामसेवन के निश्चित अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से क्रीडा करना ।
- **वितत्व** शरीर से कुचेष्टा करना और मुख से अश्लील भद्दे शब्दों का प्रयोग करना वितत्व है ।
- **विपुलतृषा** कामसेवन की तीव्र अभिलाषा रखना विपुलतृषा है ।
- **इत्वरिकागमन** परपुरुषरत व्याभिचारिणी स्त्री को इत्वरिका कहते हैं । ऐसी स्त्रियों के यहाँ आना-जाना, उनके साथ उठना-बैठना तथा व्यापारिक सम्पर्क बढ़ाना आदि इत्वरिका गमन है ।

+ परिग्रह परिमाण अणुव्रत -

## धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥६१॥

**अन्वयार्थ :** [धनधान्यादिग्रन्थं] धन, धान्यादि का परिग्रह [परिमाय] परिमाण कर [तत् अधिकेषु] उससे अधिक में [निःस्पृहता] वांछा रहित होना [परिमितपरिग्रहः] परिमित परिग्रह या [इच्छापरिमाणनामापि] इच्छापरिमाण नामक अणुव्रत है ॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**परिमितपरिग्रहो** देशतः परिग्रहविरतिरणुव्रतं स्यात् । कासौ ? या **ततोऽधिकेषु निःस्पृहता** ततस्तेभ्य इच्छावशात् कृतपरिसङ्ख्यातेभ्योऽर्थेभ्योऽधिकेष्वर्थेषु या निःस्पृहता वाञ्छाव्यावृत्तिः । किं कृत्वा ? **परिमाय** देवगुरुपादाग्रे परिमितं कृत्वा । कम् ? **धनधान्यादिग्रन्थं** धनं गवादि, धान्यं ब्रीह्यादि । आदिशब्दाद् दासीदासभार्यागृहक्षेत्रद्रव्यसुवर्णरूप्याभरणवस्त्रादिसङ्ग्रहः । स चासौ ग्रन्थश्च तं परिमाय । स च परिमितपरिग्रहः **इच्छापरिमाण नामापि** स्यात्, इच्छायाः परिमाणं यस्य स इच्छापरिमाणस्तन्नाम यस्य स तथोक्तः ॥

## आर्थिका-आदिमति :

परिग्रह का परिमाण करने वाला परिग्रह-परिमाणानुव्रती कहलाता है । क्योंकि प्रमाण से अधिक में होने वाली इच्छा का निरोध हो गया । अपनी इच्छा से धन-गाय-भैस आदि । धान्य- चावल आदि । तथा आदि शब्द से दासी-दास, स्त्री, मकान, नकद, द्रव्य, सोना, चाँदी आदि के आभूषण तथा वस्त्रादि के संग्रह-रूप परिग्रह की संख्या का परिमाण कर उससे अधिक वस्तु में वाञ्छा-इच्छा नहीं रखना, इसलिए इसका दूसरा नाम इच्छा-परिमाण-व्रत भी है ।

+ परिग्रह परिमाण अनुव्रत के अतिचार -

## अतिवाहनातिसङ्ग्रह-विस्मयलोभातिभारवहनानि परिमितपरिग्रहस्य च, विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥६२॥

**अन्वयार्थ :** [अतिवाहन] लोभवश पशु आदि को उनकी क्षमता से अधिक चलाना, [अतिसंग्रह] लोभवश अधिक धान्यदि संगृहीत करना, [अतिविस्मय] अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए वस्तु को कुछ समय रोक कर बेचना [अतिलोभ] अधिकलाभ की आकांक्षा रखना [अतिभारवाहन] लोभ वश अधिक भार लादना [परिमितपरिग्रहस्य च] परिग्रह-परिमाणानुव्रत के भी [पञ्च] पाँच [विक्षेपाः] अतिचार [लक्ष्यन्ते] निश्चित किये जाते हैं ॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**विक्षेपाः** अतिचाराः । पञ्च लक्ष्यन्ते निश्चीयन्ते । कस्य ? परिमितपरिग्रहस्य न केवलमहिंसाद्यनुव्रतस्य पञ्चातिचारा निश्चीयन्ते अपि तु परिमितपरिग्रहस्यापि । च शब्दोऽत्रापिशब्दार्थः । के तस्यातिचारा इत्याह- अतिवाहनेत्यादि । लोभातिगृद्धिनिवृत्त्यर्थं परिग्रहपरिमाणे कृते पुनर्लोभवेशवशादतिवाहनं करोति । यावन्तं हि मार्गं बलीवर्दादयः सुखेन गच्छन्ति ततोऽप्यतिरेकेण वाहनमतिवाहनम् । अतिशब्दः प्रत्येकं लोभान्तानां सम्बध्यते । इदं धान्यादिकमग्रे विशिष्टं लाभं दास्यतीति लोभावेशादतिशयेन तत्सङ्ग्रहं करोति । तत्प्रतिपन्नलाभेन विक्रीते तस्मिन् मूलतोऽप्यसङ्गृहीत्वाधिकेऽर्थे लब्धे लोभावेशादतिविस्मयं विषादं करोति । विशिष्टेऽर्थे लब्धेऽप्यधिकलाभाकाङ्क्षावशादतिलोभं करोति । लोभावेशादतिथकभारारोपणमतिभारवाहनम् । ते विक्षेपाः पञ्च ॥

## आर्थिका-आदिमति :

विक्षेप का अर्थ अतिचार है । जिस प्रकार अहिंसादि अनुव्रतों के पाँच-पाँच अतिचार बतलाये गये हैं, उसी प्रकार परिग्रह-परिमाणानुव्रत के भी पाँच अतिचार निश्चित किये गये हैं। श्लोक में आया हुआ च शब्द 'अपि' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वे अतिचार इस प्रकार हैं --

- **अतिवाहन** लोभ की तीव्रता को कम करने के लिए परिग्रह का परिमाण कर लेने पर भी लोभ के आवेश से अधिक वाहन करता है अर्थात् बैल आदि पशु जितने मार्ग को सुखपूर्वक पार कर सकते हैं, उससे अधिक दूर तक उन्हें चलाना अतिवाहन कहलाता है । अति शब्द प्रत्येक में लगाना चाहिए ।
- **अतिसंग्रह** यह धान्यादिक आगे जाकर बहुत लाभ देगा, इस लोभ के वश से जो अधिक संग्रह करता है, उसका यह कार्य अतिसंग्रह नामक अतिचार है ।
- **अतिविस्मय** संगृहीत वस्तु को वर्तमान भाव से बेच देने पर किसी का मूल भी वसूल नहीं हुआ और दूसरा कुछ ठहर कर बेचता है तो उसके अधिक लाभ होता है, यह देखकर लोभ के आवेश से जो अत्यन्त खेद एवं अतिविस्मय करता है । यह अतिविस्मय नामक अतिचार है ।
- **अतिलोभ** विशिष्ट अर्थलाभ होने पर भी और भी अधिक लाभ की आकाङ्क्षा करता है, वह अतिलोभ नाम का अतिचार है ।
- **अतिभारारोपण** लोभ के आवेश से अधिक भार लादना अतिभारारोपण अतिचार है । अतिभारारोपण अतिचार अहिंसाणुव्रत के अतिचारों में आया है । परन्तु वहाँ पर कष्ट देने का भाव है और यहाँ पर अधिक लाभ-प्राप्ति की भावना है ।

इस प्रकार परिग्रह-परिमाणव्रत के ये पाँच अतिचार कहे गये हैं ।

+ पञ्चाणु व्रत का फल -

## पञ्चाणुव्रतनिधयो, निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम् यत्रावधिरष्टगुणा, दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

**अन्वयार्थ :** [निरतिक्रमणाः] अतिचार रहित [पञ्च] पांच [अणुव्रतनिधयः] अणुव्रत रूपी निधियां [तं सुरलोकं फलन्ति] उसे स्वर्ग-लोक का फल देती है [च] और [यत्रावधिरष्टगुणा] जिसमें अवधि ज्ञान अणिमा-महिमा आदि ८ गुण [च दिव्य शरीरं] और ७ धातुओं से रहित वैक्रियिक-शरीर [लभ्यन्ते] प्राप्त होता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**फलन्ति** फलं प्रयच्छन्ति । के ते ? **पञ्चाणुव्रतनिधयः** पञ्चाणुव्रतान्येव निधयो निधानानि । कथम्भूतानि ? **निरतिक्रमणा** निरतिचाराः । किं फलन्ति ? **सुरलोकम्** । यत्र सुरलोके **लभ्यन्ते** । कानि ? **अवधिरवधिज्ञानं** । **अष्टगुणा** अणिमामहिमेत्यादयः । **दिव्यशरीरं च** सप्तधातुविवर्जितं शरीरम् । एतानि सर्वाणि यत्र लभ्यन्ते ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

निरतिचार पंच अणुव्रत निधियों के समान हैं । इस प्रकार जो इनका अतिचार रहित परिपालन करता है, वह नियम से स्वर्ग जाता है । स्वर्ग में भवप्रत्यय अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है और अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये आठ ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा सप्तधातु से रहित दिव्य वैक्रियिक शरीर प्राप्त होता है ।

+ पंचाणुव्रत में प्रसिद्ध नाम -

**मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः  
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम् ॥६४॥**

**अन्वयार्थ :** [मातङ्गः] अहिंसा अणुव्रत में यमपाल चांडाल, [धनदेवः] सत्य अणुव्रत में धनदेव, [वारिषेणः] अचौर्य अणुव्रत में वारिषेण, [नीली] ब्रह्मचर्य अणुव्रत में वणिक-पुत्री नीलीसती और [जयः] जयकुमार ने परिग्रह का परिमाण करके पूजा के अतिशय को [संप्राप्ता] प्राप्त हुए हैं ॥६४॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इह लोके किं न कस्याप्यहिंसाद्यणुव्रतानुष्ठानफलप्राप्तिर्दृष्टा ये न परलोकार्थं तदनुष्ठीयते इत्याशङ्क्याह --

हिंसा विरत्यणुव्रतात् मातङ्गेन चाण्डालेन उत्तमः पूजातिशयः प्राप्तः ।

अस्य कथा

सुरम्यदेशे पोदनपुरे राजा महाबलः । नन्दीश्वराष्ट्रम्यां राज्ञा अष्टदिनानि जीवामारणघोषणायां कृतायां बलकुमारेण चात्यन्तमांसासक्तेन कञ्चिदपि पुरुषमपश्यता राजोद्याने राजकीयमेण्ढकः प्रच्छनेन मारियत्वा संस्कार्य भक्षितः । राज्ञा च मेण्ढकमारणवार्तामाकण्य रुष्टेन मेण्ढकमारको गवेषयितुं प्रारब्धः । तदुद्यानमालाकारेण च वृक्षोपरि चटितेन स तन्मारणं कुर्वाणो दृष्टः । रात्रौ च निजभार्यायाः कथितम् । ततः प्रच्छन्नचरपुरुषेणाकण्य राज्ञः कथितम् । प्रभाते मालाकारोऽप्याकारितः । तेनैव पुनः कथितम् । मदीयामाज्ञां मम पुत्रः खण्डयतीति रुष्टेन राज्ञा कोट्टपालो भणितो बलकुमारं नवखण्डं कारयेति । ततस्तं कुमारं मारणस्थानं नीत्वा मातङ्गमानेतुं ये गताः पुरुषास्तान् विलोक्य मातङ्गेनोक्तं प्रिये! मातङ्गे ग्रामं गत इति कथयत्वेतेषामित्युक्त्वा गृहकोणे प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः । तलारैश्चाकारिते मातङ्गे कथितं मातङ्ग्या सोऽद्य ग्रामं गतः । भणितं च तलारैः स कुमारमारणात्तस्य बहुसुवर्णरत्नादिलाभो भवेत् । तेषां वचनमाकण्य द्रव्यलुब्धया तथा हस्तसञ्ज्ञया स दर्शितो ग्रामं गत इति पुनः पुनर्भणन्त्या । ततस्तैस्तं गृहान्निःसार्य तस्य मारणार्थं स कुमारः समर्पितः । तेनोक्तं नाहमद्य चतुर्दशीदिने जीवघातं करोमि । ततस्तलारैः स नीत्वा राज्ञः कथितः, देव! अयं राजकुमारं न मारयति । तेन च राज्ञः कथितं सर्पदष्टो मृतः श्मशाने निक्षिप्तः सर्वौषधिमुनिशरीरस्य वायुना पुनर्जीर्वितोऽहं तत्पाश्र्वे चतुर्दशीदिवसे मया जीवाहिंसाव्रतं गृहीतमतोऽद्य न मारयामि देवो यज्जानाति तत्करोतु । अस्पृश्यचाण्डालस्य व्रतमिति सञ्चिन्त्य रुष्टेन राज्ञा द्वावपि गाढं बन्धयित्वा सुमारद्रहे निक्षिपितौ । तत्र मातङ्गस्य प्राणात्ययेऽप्यहिंसाव्रतमपरित्यजतो व्रतमाहात्म्याज्जलदेवतया जलमध्ये सिंहासनमणिमण्डपिका-दुन्दुभिसाधुकारादिप्रातिहार्यादिकं कृतम् । महाबलराजेन चैतदाकण्य भीतेन पूजयित्वा निजच्छत्रतले स्वापयित्वा स स्पृश्यो विविष्ट कृत इति प्रथमाणुव्रतस्य ।

अनृतविरत्यणुव्रताद्धनदेवश्रेष्ठिना पूजातिशयः प्राप्तः ।

अस्य कथा

जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिण्यां पुर्यां वणिजौ जिनदेवधनदेवौ स्वल्पद्रव्यौ । तत्र धनदेवः सत्यवादी । द्रव्यस्य लाभं द्वावप्यर्धमर्धं ग्रहीष्याव इति निःसाक्षिकां व्यवस्थां कृत्वा दूरदेशं गतौ बहुद्रव्यमुपाज्य व्याघृत्य कुशलेन

पुण्डरीकिण्यामायातौ । तत्र जिनदेवो लाभार्थं धनदेवाय न ददाति । स्तोकद्रव्यमौचित्येन ददाति ततो झकटके न्याये च सति स्वजनमहाजनराजाग्रतो निःसाक्षिकव्यवहारबलाज्जिनदेवो वदति न मयाऽस्य लाभार्थं भणितमुचितमेव भणितम् । धनदेवश्च सत्यमेव वदति द्वयोरर्थमेव ततो राजनियमात्तयोर्दिव्यं दत्तं धनदेवः शुद्धो नेतरः । ततः सर्वं द्रव्यं धनदेवस्य समर्पितं तथा सर्वैः पूजितः साधुकारितश्चेति द्वितीयाणुव्रतस्य ।

चौर्यविरत्यणुव्रताद्वारिषेणेन पूजातिशयः प्राप्तः ।

अस्य कथा स्थितीकरणगुणव्याख्यानप्रघट्टके कथितेह द्रष्टव्येति तृतीयाणुव्रतस्य ।

ततः परं नीली जयश्च । ततस्तेभ्यः परं यथा भवत्येवं पूजातिशयं प्राप्तौ । तत्राब्रह्मविरत्यणुव्रतानीली वणिक्पुत्री पूजातिशयं प्राप्ता ।

अस्याः कथा

लाटदेशे भृगुकच्छपत्तने राजा वसुपालः । वणिग्जिनदत्तो भार्या जिनदत्ता पुत्री नीली अतिशयेन रूपवती । तत्रैवापरः श्रेष्ठी समुद्रदत्तो भार्या सागरदत्ता पुत्रः सागरदत्तः । एकता महापूजायां वसन्तौ कायोत्सर्गेण संस्थितां सर्वाभरणविभूषितां नीलीमालोक्य सागरदत्तेनोक्तं किमेषापि देवता काचिदेतदाकण्य तन्मित्रेण प्रियदत्तेन भणितं- जिनदत्तश्रेष्ठिन इयं पुत्री नीली । तद्रूपालोकनादतीवासक्तो भूत्वा कथमियं प्राप्यत इति तत्परिणयनचिन्तया दुर्बलो जातः । समुद्रदत्तेन चैतदाकण्य भणितः- हे पुत्र! जैनं मुक्त्वा नान्यस्य जिनदत्तो ददातीमां पुत्रिकां परिणेतुम् । ततस्तौ कपटश्रावकौ जातौ परिणीता च सा, ततः पुनस्तौ बुद्धभक्तौ जातौ, नील्याश्च पितृगृहे गमनमपि निषिद्धम्, एवं वञ्चने जाते भणित जिनदत्तेन- इयं मम न जाता कूपादौ वा पतिता यमेन वा नीता इति । नीली च श्वसुरगृहे भर्तुः वल्लभा भिन्नगृहे जिनधर्ममनुतिष्ठन्ती तिष्ठति । दर्शनात् संसर्गाद् धर्मवचनाकर्णनाद्वा कालेनेयं बुद्धभक्ता भविष्यतीति पर्यालोच्य समुद्रदत्तेन भणिता नीली पुत्री! ज्ञानिनां वन्दकानामस्मदर्थं भोजनं देहि । ततस्तया वन्दकानामामन्याहूय च तेषामेकैका प्राणहितातिपिष्टा संस्कार्य तेषामेव भोक्तुं दत्ता । तैर्भोजनं भुक्त्वा गच्छद्भिः प्रष्टुं- क प्राणहिताः? तयोक्तं भवन्तं एव ज्ञानेन जानन्तु यत्र तास्तिष्ठन्ति, यदि पुनर्ज्ञानं नास्ति तदा वमनं कुर्वन्तु भवतामुदरे प्राणहितास्तिष्ठन्तीति । एवं वमने कृते दृष्टानि प्राणहिताखण्डानि । ततो रुष्टश्च श्वसुरपक्षजनः । ततः सागरदत्तभगिन्या कोपात्तस्या असत्यपरपुरुषदोषोद्भावना कृता । तस्मिन् प्रसिद्धिं गते सा नीली देवाग्रे संन्यासं गृहीत्वा कायोत्सर्गेण स्थिता, 'दोषोत्तारे भोजनादौ प्रवृत्तिर्मम नान्यथेति' ततः क्षुभितनगरदेवतया आगत्य रात्रौ सा भणिता- हे महासति! मा प्राणत्यागमेवं कुरु, अहं राज्ञः प्रधानानां पुरजनस्य स्वप्नं ददामि । लग्ना यथा नगरप्रतीत्यः कीलिता महासतीवामचरणेन संस्पृश्य उदघटिष्यन्ति इति । ताश्च प्रभाते भवच्चरणं स्पृष्ट्वा एवं वा उदघटिष्यन्तीति पादेन प्रतोलीस्पर्शं कुर्यात्स्त्वमिति भणित्वा राजादीनां तथा स्वप्नं दर्शयित्वा पत्तनप्रतीलीः स्थिता सा नगरदेवता । प्रभाते कीलिताः प्रतीलीर्दृष्ट्वा राजादिभिस्तं स्वप्नं स्मृत्वा नगरस्त्रीचरणताडनं प्रतीलीनां कारितम् । न चैकापि प्रतोली कयाचिदप्युदघाटिता । सर्वासां पश्चात् नीली तत्रोत्क्षिप्य नीता । तच्चरणस्पर्शात् सर्वा अप्युदघटिताः प्रतोल्याः, निर्दोषा राजादिपूजिता च नीली जाता चतुर्थाणुव्रतस्य ।

परिग्रहविरत्यणुव्रताज्जयः पूजातिशयं प्राप्तः ।

अस्य कथा

कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे कुरुवंशे राजा सोमप्रभः, पुत्रो जयः परिमितपरिग्रहो भार्यासुलोचनायामेव प्रवृत्तिः । एकदा पूर्वविद्याधरभव कथनानन्तरं समायात पूर्वजन्मविद्यौ हिरण्यधर्मप्रभावतीविद्याधररूपमादाय च मेर्वादौ वन्दनाभक्तिं कृत्वा कैलासगिरौ भरतप्रतिष्ठापितचतुर्विंशतिजिनालयान् वन्दितुमायातौ सुलोचनाजयौ । तत्प्रस्तावे च सौधर्मन्देरण जयस्य स्वर्गे परिग्रहपरिमाणव्रतप्रशंसा कृता । तां परीक्षितुं रतिप्रभदेवः समायातः । ततः स्त्रीरूपमादाय चतसृभिर्विलासिनीभिः सह जयसमीपं गत्वा भणितो जयः । सुलोचनास्वयंवरे येन त्वया सह सङ्ग्रामः कृतः तस्य नमिविद्याधरपते राज्ञीं सुरूपामभिनवयौवनां सर्वविद्याधारिणीं तद्विरक्तचित्तामिच्छ, यदि तस्य राज्यमात्मजीवितं च वाञ्छसीति । एतदाकण्य जयेनोक्तं- हे सुन्दरि! मैवं ब्रूहि, परस्त्री मम जननीसमानेति । ततस्तया जयस्योपसर्गे महति कृतेऽपि चित्तं न चलितम् । ततो मायामुपसंहृत्य पूर्ववृत्तं कथयित्वा प्रशस्य वस्तादिभिः पूजयित्वा स्वर्गं गत इति पञ्चमाणुव्रतस्य ॥ १८ ॥

## आर्यिका-आदिमति :

हिंसाविरति नामक अणुव्रत से यमपाल चाण्डाल ने उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त की । इसकी कथा इस प्रकार है-

यमपाल चाण्डाल की कथा सुरम्य देश पौदनपुर में राजा महाबल रहता था । नन्दीश्वर पर्व की अष्टमी के दिन राजा ने यह घोषण की कि आठ दिन तक नगर में जीवघात नहीं किया जावेगा । राजा का बल नाम का एक पुत्र था, जो मांस खाने में आसक्त था । उसने यह विचार कर कि यहाँ कोई पुरुष दिखाई नहीं दे रहा है, इसलिए छिपकर राजा के बगीचे में राजा के मेंढा को मारकर तथा पकाकर खा लिया । राजा ने जब मेंढा मारे जाने का समाचार सुना, तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ । उसने मेंढा मारने वाले की खोज शुरू कर दी । उस बगीचे का माली पेड़ के ऊपर चढ़ा था । उसने राजकुमार को मेंढा मारते हुए



देख लिया था। माली ने रात में यह बात अपनी स्त्री से कही। तदनन्तर छिपे हुए गुप्तचर पुरुष ने राजा से यह समाचार कह दिया। प्रातःकाल माली को बुलाया गया। उसने भी यह समाचार फिर कह दिया। मेरी आज्ञा को मेरा पुत्र ही खण्डित करता है, इससे रुष्ट होकर राजा ने कोटपाल से कहा कि बलकुमार के नौ टुकड़े कर दो अर्थात् उसे मरवा दो।

तदनन्तर उस कुमार को मारने के स्थान पर ले जाकर चाण्डाल को लाने के लिए जो आदमी गये थे, उन्हें देखकर चाण्डाल ने अपनी स्त्री से कहा कि हे प्रिये! तुम इन लोगों से कह दो कि चाण्डाल गाँव गया है। ऐसा कहकर वह घर के कोने में छिपकर बैठ गया। जब सिपाहियों ने चाण्डाल को बुलाया तब चाण्डाली ने कह दिया कि वे आज गाँव गये हैं। सिपाहियों ने कहा कि वह पापी अभाग आज गाँव चला गया। राजकुमार को मारने से उसे बहुत भारी सुवर्ण और रत्नादिक का लाभ होता। उनके वचन सुनकर चाण्डाली को धन का लोभ आ गया। अतः वह मुख से तो बार-बार यही कहती रही कि वे गाँव गये हैं, परन्तु हाथ के सङ्केत से उसे दिखा दिया। तदनन्तर सिपाहियों ने उसे घर से निकलकर मारने के लिए वह राजकुमार सौंप दिया। चाण्डाल ने कहा कि मैं आज चतुर्दशी के दिन जीवघात नहीं करता हूँ। तब सिपाहियों ने उसे ले जाकर राजा से कहा कि देव! यह राजकुमार को नहीं मार रहा है। उसने राजा से कहा कि एक बार मुझे साँप ने डस लिया था, जिससे मृत समझकर मुझे श्मशान में डाल दिया गया था। वहाँ सर्वौषधि-ऋद्धि के धारक मुनिराज के शरीर की वायु से मैं पुनः जीवित हो गया। उस समय मैंने उन मुनिराज के पास चतुर्दशी के दिन जीवघात न करने का व्रत लिया था, इसलिए आज मैं नहीं मार रहा हूँ, आप जो जानें सो करें 'अस्पृश्य चाण्डाल के भी व्रत होता है' यह विचार कर राजा बहुत रुष्ट हुआ और उसने दोनों को मजबूत बंधवाकर सुमार (शिशुमार) नामक तालाब में डलवा दिया। उन दोनों में चाण्डाल ने प्राणघात होने पर भी अहिंसा व्रत को नहीं छोड़ा था, इसलिए उसके व्रत के माहात्म्य से जल-देवता ने उसके लिए जल के मध्य सिंहासन, मणिमय मण्डप, दुन्दुभि बाजों का शब्द तथा साधुकार- अच्छा किया, अच्छा किया आदि शब्दों का उच्चारण, यह सब महिमा की। महाबल राजा ने जब यह समाचार सुना तब भयभीत होकर उसने चाण्डाल का सम्मान किया तथा अपने छत्र के नीचे उसका अभिषेक कराकर उसे स्पर्श करने योग्य विशिष्ट पुरुष घोषित कर दिया।

यह प्रथम अहिंसाणु-व्रत की कथा पूर्ण हुई।

सत्याणुव्रत से धनदेव सेठ ने पूजातिशय को प्राप्त किया था। उसकी कथा इस प्रकार है --

धनदेव की कथा

जम्बूद्वीप के पूर्व-विदेह क्षेत्र सम्बन्धी पुष्कलावती देश में एक पुण्डरीकिणी नामक नगरी है। उसमें जिनदेव और धनदेव नामके दो अल्प पूँजीवाले व्यापारी रहते थे। उन दोनों में धनदेव सत्यवादी था। एक बार वे दोनों 'जो लाभ होगा, उसे आधा-आधा ले लेंगे' ऐसी बिना गवाह की व्यवस्था कर दूर-देश गये। वहाँ बहुत-सा धन कमाकर लौटे और कुशल-पूर्वक पुण्डरीकिणी नगरी आ गये। उनमें जिनदेव, धनदेव के लिए लाभ का आधा भाग नहीं देता था। वह उचित समझकर थोड़ा-सा द्रव्य उसे देता था। तदनन्तर झगड़ा होने पर न्याय होने लगा। पहले कुटुम्बीजनों के सामने, फिर महाजनों के सामने और अन्त में राजा के आगे मामला उपस्थित किया गया। परन्तु बिना गवाही का व्यवहार होने से जिनदेव कह देता कि मैंने इसके लिए लाभ का आधा भाग देना नहीं कहा था। उचित भाग ही देना कहा था। धनदेव सत्य ही कहता था कि दोनों का आधा-आधा भाग ही निश्चित हुआ था। तदनन्तर राजकीय नियम के अनुसार उन दोनों को दिव्य न्याय दिया गया। अर्थात् उनके हाथों पर जलते हुए अङ्गारे रखे गये। इस दिव्य न्याय से धनदेव निर्दोष सिद्ध हुआ, दूसरा नहीं। तदनन्तर सब धन धनदेव के लिए दिया गया और धनदेव सब लोगों के द्वारा पूजित हुआ तथा धन्यवाद को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार द्वितीय अणुव्रत की कथा है।

चौर्यविरति अणुव्रत से वारिषेण ने पूजा का अतिशय प्राप्त किया था। इसकी कथा स्थितीकरण गुण के व्याख्यान के प्रकरण में कही गयी है। वह इस प्रकरण में भी देखनी चाहिए। इस प्रकार तृतीय अणुव्रत की कथा है।

मातङ्ग, धनदेव और वारिषेण के आगे नीली और जयकुमार पूजातिशय को प्राप्त हुए हैं। उनमें अब्रह्म-विरति अणुव्रत ब्रह्मचर्याणुव्रत से नीली नाम की वणिक्पुत्री पूजातिशय को प्राप्त हुई है।

उसकी कथा इस प्रकार है --

नीली की कथा

लाटदेश के भृगुकच्छ नगर में राजा वसुपाल रहता था। वहीं एक जिनदत्त नामका सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम जिनदत्ता था। उनके नीली नाम की एक पुत्री थी, जो अत्यन्त रूपवती थी। उसी नगर में समुद्रदत्त नाम का एक सेठ रहता था, उसकी स्त्री का नाम सागरदत्ता था और उन दोनों के एक सागरदत्त नाम का पुत्र था। एक बार महापूजा के अवसर पर मन्दिर में कायोत्सर्ग से खड़ी हुई तथा समस्त आभूषणों से सुन्दर नीली को देखकर सागरदत्त ने कहा कि क्या यह भी कोई देवी है? यह सुनकर उसके मित्र प्रियदत्त ने कहा कि यह जिनदत्त सेठ की पुत्री नीली है। नीली का रूप देखने से सागरदत्त

उसमें अत्यन्त आसक्त हो गया और यह किस तरह प्राप्त हो सकती है, इस प्रकार उससे विवाह की चिन्ता से दुर्बल हो गया । समुद्रदत्त ने यह सुनकर उससे कहा कि हे पुत्र! जैन को छोड़कर अन्य किसी के लिए जिनदत्त इस पुत्री को विवाहने के लिए नहीं देता है ।

तदनन्तर वे दोनों पिता-पुत्र कपट से जैन हो गये और नीली को विवाह लिया । विवाह के पश्चात् वे फिर बुद्धभक्त हो गये । उन्होंने नीली का पिता के घर जाना भी बन्द कर दिया । इसप्रकार धोखा होने पर जिनदत्त ने यह कहकर सन्तोष कर लिया कि यह पुत्री मेरे हुई ही नहीं है अथवा कुआ आदि में गिर गयी है अथवा मर गयी है । नीली अपने पति को प्रिय थी, अतः वह ससुराल में जिनधर्म का पालन करती हुई एक भिन्न घर में रहने लगी । समुद्रदत्त यह विचारकर कि बौद्ध साधुओं के दर्शन से, उनके धर्म और देव का नाम सुनने से काल पाकर यह बुद्ध की भक्त हो जायेगी, एक दिन समुद्रदत्त ने कहा कि नीली बेटी! बौद्ध साधु बहुत ज्ञानी होते हैं, उन्हें देने के लिए हमें भोजन बनाकर दो । तदनन्तर नीली ने बौद्ध साधुओं को निमन्त्रित कर बुलाया और उनकी एक-एक प्राणहिता जूती को अच्छी तरह पीसकर तथा मसालों से सुसंस्कृत कर उन्हें खाने के लिए दे दिया । वे बौद्ध साधु भोजन कर जब जाने लगे तो उन्होंने पूछा कि हमारी जूतियाँ कहाँ हैं ? नीली ने कहा कि आप ही अपने ज्ञान से जानिये, जहाँ वे स्थित हैं । यदि ज्ञान नहीं है, तो वमन कीजिये । आपकी जूतियाँ आपके ही पेट में स्थित हैं । इस प्रकार वमन किये जाने पर उनमें जूतियों के टुकड़े दिखाई दिये । इस घटना से नीली के श्वसुरपक्ष के लोग बहुत रुष्ट हो गये ।

तदनन्तर सागरदत्त की बहन ने क्रोधवश उसे पर पुरुष के संसर्ग का झूठा दोष लगाया । जब इस दोष की प्रसिद्धि सब ओर फैल गयी, तब नीली भगवान्जिनेन्द्र के आगे संन्यास लेकर कायोत्सर्ग से खड़ी हो गयी और उसने नियम ले लिया कि इस दोष से पार होने पर ही मेरी भोजन आदि में प्रवृत्ति होगी, अन्य प्रकार से नहीं । तदनन्तर क्षोभ को प्राप्त हुई नगरदेवता ने आकर रात्रि में उससे कहा कि हे महासती! इस तरह प्राण-त्याग मत करो, मैं राजा को तथा नगर के प्रधान पुरुषों को स्वप्न देती हूँ कि नगर के सब प्रधान द्वारा कीलित हो गये हैं । वे महापतिव्रता स्त्री के बायें चरण के स्पर्श से खुलेंगे । वे प्रधान द्वार प्रातःकाल आपके पैर का स्पर्शकर ही खुलेंगे, ऐसा कहकर वह नगर देवता राजा आदि को वैसा स्वप्न दिखाकर तथा नगर के प्रधान द्वारों को बन्द कर बैठ गयी । प्रातःकाल नगर के प्रधान द्वारों को कीलित देखकर राजा आदि ने पूर्वोक्त स्वप्न का स्मरण कर नगर की सब स्त्रियों के पैरों से द्वारों की ताडना करायी । परन्तु किसी भी स्त्री के द्वारा एक भी प्रधान द्वार नहीं खुला । सब स्त्रियों के बाद नीली को भी वहाँ उठाकर ले जाया गया । उसके चरणों के स्पर्श से सभी प्रधान द्वार खुल गये । इस प्रकार नीली निर्दोष घोषित हुई और राजा आदि के द्वारा सम्मान को प्राप्त हुई । यह चतुर्थ अणुव्रत की कथा पूर्ण हुई ।

परिग्रह-विरति-अणुव्रत से जयकुमार पूजातिशय को प्राप्त हुआ था । उसकी कथा इस प्रकार है-

जयकुमार की कथा

कुरुजांगल देश के हस्तिनागपुर नगर में कुरुवंशी राजा सोमप्रभ रहते थे । उनके जयकुमार नामका पुत्र था । वह जयकुमार परिग्रह-परिमाण-व्रत का धारी था तथा अपनी स्त्री सुलोचना से ही सम्बन्ध रखता था । एक समय, विद्याधर अवस्था के पूर्वभवों की कथा के बाद जिन्हें अपने पूर्वभवों का ज्ञान हो गया था, ऐसे जयकुमार और सुलोचना हिरण्यधर्मा और प्रभावती नामक विद्याधर पुद्गल का रूप रखकर मेरु आदि पर वन्दना-भक्ति करके कैलास पर्वत पर भरत चक्रवर्ती के द्वारा प्रतिष्ठापित चौबीस जिनालयों की वन्दना करने के लिए आये । उसी अवसर पर सौधर्मेन्द्र ने स्वर्ग में जयकुमार के परिग्रह-परिमाण-व्रत की प्रशंसा की । उसकी परीक्षा करने के लिए रतिप्रभ नामका देव आया । उसने स्त्री का रूप रख चार स्त्रियों के साथ जयकुमार के समीप जाकर कहा कि सुलोचना के स्वयंवर के समय जिसने तुम्हारे साथ युद्ध किया था, उस नमि विद्याधर राजा की रानी को, जो कि अत्यन्त रूपवती, नवयौवनवती, समस्त विद्याओं को धारण करने वाली और उससे विरक्त-चित्त है, स्वीकृत करो, यदि उसका राज्य और अपना जीवन चाहते हो तो । तदनन्तर उस स्त्री ने जयकुमार पर बहुत उपसर्ग किया, परन्तु उसका चित्त विचलित नहीं हुआ । अनन्तर वह रतिप्रभ देव माया को संकुचित कर पहले का सब समाचार कहकर प्रशंसा कर और वस्त्र आदि से पूजा कर स्वर्ग चला गया । इस प्रकार पञ्चम अणुव्रत की कथा पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

+ पांच पाप में प्रसिद्ध नाम -

**धनश्रीसत्यघोषौ च, तापसारक्षकावपि  
उपाख्येयास्तथा श्मश्रु-नवनीतो यथाक्रमम् ॥६५॥**

**अन्वयार्थ :** [धनश्रीसत्यघोषौ च] धनश्री और सत्यघोष [तापसारक्षकौ] तापस और कोतवाल [अपि] और [श्मश्रु-नवनीतः] श्मश्रुनवनीत ये पाँच [यथाक्रमम्] क्रम से हिंसादि पापों में [उपाख्येयाः] उपाख्यान करने (दृष्टान्त देने) के योग्य हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एवं पञ्चानामहिंसादिब्रतानां प्रत्येकं गुणं प्रतिपाद्येदानीं तद्विपक्षभूतानां हिंसाद्यब्रतानां दोषं दर्शयन्नाह --

धनश्रीश्रेष्ठिन्या हिंसातो बहुप्रकारं दुःखफलमनुभूतम्। सत्यघोषपुरोहितेनानृतात्। तापसेन चौयात्। आरक्षकेन कोट्टपालेन ब्रह्मणि वृत्त्यभावात्। ततो व्रतप्रभवदुःखादुभवेन उपाख्येया दृष्टान्तत्वेन प्रतिपाद्याः। के ते? धनश्रीसत्यघोषौ च। न केवलम् एतौ एव किन्तु तापसारक्षकावपि। तथा तेनैव प्रकारेण श्मश्रुनवनीतो वणिक् यतस्तेनापि परिग्रहनिवृत्त्यभावतो बहुतरदुःखमनुभूतम्। यथाक्रमं उक्तक्रमानतिक्रमेण हिंसादिविरत्यभावे एते उपाख्येयाः प्रतिपाद्याः। तत्र धनश्री हिंसातो बहुदुःखं प्राप्ता।

अस्याः कथा

लाटदेशे भृगुकच्छपत्तने राजा लोकपालः। वणिग्धनपालो भार्या धनश्री मनागपि जीववधेऽविरता। तत्पुत्री सुन्दरी पुत्रो गुणपालः। अपुत्रकाले धनश्रिया यः पुत्रबुद्ध्या कुण्डलो नाम बालकः पोषितः, धनपाले मृते तेन सह धनश्रीः कुकर्म्मरता जाता। गुणपाले च गुणदोषपरिज्ञानके जाते धनश्रिया तच्छङ्कितया भणितः कुण्डलः प्रसरे गोधनं चारियतुमटव्यां गुणपालं प्रेषयामि, लग्नस्त्वं तत्र तं मारय येनावयोर्निरङ्कुशमवस्थानं भवतीति बुरवाणां मातरमाकण्ठ्य सुन्दर्या गुणपालस्य कथितं- अद्य रात्रौ गोधनं गृहीत्वा प्रसरे त्वामटव्यां प्रेषयित्वा कुण्डलहस्तेन माता मारयिष्यत्यतः सावधानो भवेस्त्वमिति। धनश्रिया च रात्रिपश्चिमप्रहरे गुणपालो भणितो हे पुत्र कुण्डलस्य शरीरं विरूपकं वर्तते अतः प्रसरे गोधनं गृहीत्वाद्यत्वं व्रजेति। स च गोधनमटव्यां नीत्वा काष्ठं च वस्त्रेण पिधाय तिरोहितो भूत्वा स्थितः। कुण्डलेन चागत्य गुणपालोऽयमिति मत्वा वस्त्रप्रच्छादितकाष्ठेघातः कृतो गुणपालेन च स खड्गेन हत्वा मारितः। गृहे आगतो गुणपालो धनश्रिया पृष्ठः 'क रे कुण्डलः' तेनोक्तं कुण्डलवार्तामयं खड्गोऽभिजानाति। ततो रक्तलिप्तं बाहुमालोक्य स तेनैव खड्गेन मारितः। तं च मारयन्तीं धनश्रियं दृष्ट्वा सुन्दर्या मुशलेन सा हता। कोलाहले जाते कोट्टपालैर्धनश्रीर्धृत्वा राज्ञोऽग्रे नीता। राज्ञा च गर्दभारोहणे कर्णनासिकाछेदनादिनिग्रहे कारिते मृत्वा दुर्गतिं गतेति प्रथमाव्रतस्य।

सत्यघोषोऽनृताद्बहुदुःखं प्राप्तः।

इत्यस्य कथा

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे सिंहपुरे राजा सिंहसेनो राज्ञी रामदत्ता, पुरोहितः श्रीभूतिः। स ब्रह्मसूत्रे कर्तिकां बध्वा भ्रमति। वदति च यद्यसत्यं ब्रवीमि तदाऽनया कर्तिकया निजजिह्वाच्छेदं करोमि। एवं कपटेन वर्तमानस्य तस्य सत्यघोष इति द्वितीयं नाम सज्जातम्। लोकाश्च विश्वस्तास्तत्पाश्वे द्रव्यं धरन्ति च। तद्द्रव्यं किञ्चित्तेषां समग्र्यं स्वयं गृह्णाति। पूत्कर्तुं बिभेति लोकः। न च पूत्कृतं राजा शृणोति। अथैकदा पद्मखण्डपुरादागत्य समुद्रदत्तो वणिक्पुत्रस्तत्र सत्यघोषपाश्वेऽनर्घाणि पञ्चमाणिक्यानि धृत्वा परतीरे द्रव्यमुपार्जयितुं गतः। तत्र च तदुपाज्य व्याघ्रुटितः स्फुटितप्रवहण एकफलकेनोत्तीर्य समुद्रं धृतमाणिक्यवाञ्छया सिंहपुरे सत्यघोषसमीपमायातः। तं च रङ्गसमानमागच्छन्तमालोक्य तन्माणिक्यहरणार्थिना सत्यघोषेण प्रत्ययपूरणार्थं समीपोपविष्टपुरुषाणां कथितम्। अयं पुरुषः स्फुटितप्रवहणः ततो ग्रहिलो जातोऽत्रागत्य माणिक्यानि याचिष्यतीति। तेनागत्य प्रणम्य चोक्तं भो सत्यघोषपुरोहित! ममार्थोपार्जनार्थं गतस्योपार्जितार्थस्य महाननर्थो जात इति मत्वा यानि मया तव रत्नानि धर्तुं समर्पितानि तानीदानीं प्रसादं कृत्वा देहि, येनात्मानं स्फुटितप्रवहणात् गतद्रव्यं समुद्धरामि। तद्वचनमाकण्ठ्य कपटेन सत्यघोषेण समीपोपविष्टा जना भणिता मया प्रथमं यद् भणितं तद् भवतां सत्यं जातम्। तैरुक्तं भवन्त एव जानन्त्ययं ग्रहिलोऽस्मात् स्थानान्निःसार्यतामित्युक्त्वा तैः समुद्रदत्तो गृहान्निःसारितः ग्रहिल इति भण्यमानः। पत्तने पूत्कारं कुर्वन् ममानघ्रयपञ्चमाणिक्यानि सत्यघोषेण गृहीतानि। तथा राजगृहसमीपे चिञ्चावृक्षमारुह्य पश्चिमरात्रे पूत्कारं कुर्वन् षण्मासान् स्थितः। तां पूत्कृतिमाकण्ठ्य रामदत्तया भणितः। सिंहसेनः- देव! नायं पुरुषः ग्रहिलः। राज्ञापि भणितं किं सत्यघोषस्य चौर्यं सम्भाव्यते? पुनरुक्तं राज्ञ्या देव! सम्भाव्यते तस्य चौर्यं यतोऽयमेतादृशमेव सर्वदा वचनं ब्रवीति। एतदाकण्ठ्य भणितं राज्ञा यदि सत्यघोषस्यैतत् सम्भाव्यते तदा त्वं परीक्षयेति। लब्धादेशया रामदत्तया सत्यघोषो राजसेवार्थमागच्छन्नाकार्यं दृष्टः- किं बृहद्वेलायामागतोऽसि? तेनोक्तं- मम ब्राह्मणीभ्राताद्य प्राघूर्णकः समायातस्तं भोजयतो बृहद्वेला लग्नेति। पुनरप्युक्तं तया- क्षणमेकमत्रोपविश। ममातिकौतुकं जातम्। अक्षक्रीडां कुर्मः। राजापि तत्रैवागतस्तेनाप्येवं कुर्वित्युक्तम्। ततोऽक्षद्यूते क्रीडया सज्जाते रामदत्तया निपुणमतिविलासिनी कर्णे लगित्वा भणिता सत्यघोषः पुरोहितो राज्ञीपाश्वे तिष्ठति तेनाहं ग्रहिलमाणिक्यानि याचितुं प्रेषितेति तद्ब्राह्मण्यग्रे भणित्वा तानि याचयित्वा च शीघ्रमागच्छेति। ततस्तया गत्वा याचितानि। तद्ब्राह्मण्या च पूर्वं सुतरां निषिद्धया न दत्तानि। तद्विलासिन्या चागत्य देवीकर्णे कथितं सा न ददातीति। ततो जितमुद्रिकां तस्य साभिज्ञानं दत्त्वा पुनः प्रेषिता तथापि तया न दत्तानि। ततस्तस्य कर्तिकायज्ञोपवीतं जितं साभिज्ञानं दत्तं दर्शितं च तया। ब्राह्मण्या तद्दर्शनात्तुष्टया भीतया च समर्पितानि माणिक्यानि तद्विलासिन्याः। तया च रामदत्तायाः समर्पितानि। तया न राज्ञो दर्शितानि। तेन च बहुमाणिक्यमध्ये निक्षेप्यकार्यं च ग्रहिलो भणितः रे निजमाणिक्यानि परिज्ञाय गृहाण। तेन च तथैव गृहीतेषु तेषु राज्ञा रामदत्तया च वणिक्पुत्रः प्रतिपन्नः। ततो राज्ञा सत्यघोषः पृष्ठः- इदं कर्म त्वया कृतमिति। तेनोक्तं देव! न करोमि, किं ममेदृशं कर्तुं युज्यते? ततोऽतिरुष्टेन तेन राज्ञा तस्य दण्डत्रयं कृतम्। गोमयभृतं भाजनत्रयं भक्षय, मल्लमुष्टिघातत्रयं वा सहस्व, द्रव्यं वा सर्वं देहि। तेन च पर्यालोच्य गोमयं खादितुमारब्धम्। तदशक्तेन मुष्टिघातः सहितुमारब्धः। तदशक्तेन द्रव्यं दातुमारब्धम्। एवं दण्डत्रयमनुभूय मृत्वातिलोभवशाद्राजकीयभाण्डागारे अगन्धनसर्पो जातः। तत्रापि मृत्वा दीर्घसंसारी जात इति द्वितीयाव्रतस्य।

तापसश्चौर्याद्बहुदुःखं प्राप्तः।

इत्यस्य कथा

वत्सदेशे कौशाम्बीपुरे राजा सिंहरथो राज्ञी विजया। तत्रैकश्चौरः कोटिल्येन तापसो भूत्वा परभूमिमस्पृशदवलम्बमान शिष्यस्थो दिवसे पञ्चाग्निसाधनं करोति। रात्रौ च कौशाम्बीं मुषित्वा तिष्ठति। एकदा महाजनान्मुष्टं नगरमाकण्य राज्ञा कोट्टपालो भणितो रे सप्तरात्रमध्ये चौरं निजशिरो वाऽऽनय। ततश्चौरमलभमानश्चिन्तापरः तलारोऽपराहे बुभुक्षितब्राह्मणेन केनचिदागत्य भोजनं प्रार्थितः। तेनोक्तं- हे ब्राह्मण! अच्छान्दसोऽसि मम प्राणसन्देहो वर्तते त्वं च भोजनं प्रार्थयसे। एतद्वचनमाकण्य पृष्ठं ब्राह्मणेन कुतस्ते प्राणसन्देहः? कथितं च तेन। तदाकण्य पुनः पृष्ठं ब्राह्मणेन- अत्र किं कोऽप्यतिनिस्पृहवृत्तिपुरुषोऽप्यस्ति? उक्तं तलारेण- अस्ति विशिष्टस्तपस्वी, न च तस्यैतत् सम्भाव्यते। भणितं ब्राह्मणेन- स एव चौरो भविषति अतिनिस्पृहत्वात्। श्रूयतामत्र मदीया कथा- मम ब्राह्मणी महासती परपुरुषशरीरं न स्पृशतीति निजपुत्रस्याप्यतिकुक्कुटात् कर्पटेन सर्वं शरीरं प्रच्छाद्य स्तनं ददाति। रात्रौ तु गृहपिण्डारेण सह कुकर्म करोति। तद्दर्शनात् सञ्जातवैराग्योऽहं संवलार्थं सुवर्णशलाकां वंशयष्टिमध्ये निक्षिप्य तीर्थयात्रायां निर्गतः। अग्रे गच्छतश्च ममैकबटुको मिलितो न तस्य विश्वासं गच्छाम्यहं यष्टिरक्षां यत्नतः करोमि। तेनाकलिता सा यष्टिः सगर्भेति। एकदा रात्रौ कुम्भकारगृहे निद्रां कृत्वा दूराद्गत्वा तेन निजमस्तके लग्नं कुथितं तृणमालोक्यातिकुक्कुटेन ममाग्रतो, हा हा मया परतृणमदत्तं ग्रसितमित्युक्त्वा व्याघृत्य तृणं तत्रैव कुम्भकारगृहे निक्षिप्य दिवसावसाने कृतभोजनस्य ममागत्य मिलितः। भिक्षार्थं गच्छतस्तस्यातिशुचिरयमिति मत्वा विश्वसितेन मया यष्टिः कुक्कुरादिनिवारणार्थं समर्पिता। तां गृहीत्वा स गतः। ततो मया महाटव्यां गच्छतातिवृद्धपक्षिणोऽतिकुर्कुटं दृष्टम्। यथा एकस्मिन् महति वृक्षे मिलिताः पक्षिगणो रात्रावेकेनातिवृद्धपक्षिणा निजभाषया भणितो रे रे पुत्राः! अहं अतीव गन्तुं न शक्नोमि। बुभुक्षितमनाः कदाचिद्भवत्पुत्राणां भक्षणं करोमि चित्तचापल्यादतो मम मुखं प्रभाते बध्वा सर्वेऽपि गच्छन्तु। तैरुक्तं हा हा तात! पितामहस्त्वं किं तवैतत् सम्भाव्यते? तेनोक्तं- “बुभुक्षितः किं न करोति पापम्” इति। एवं प्रभाते तस्य पुनर्वचनात् तन्मुखं बद्ध्वा ते गताः। स च बद्धो गतेषु चरणाभ्यां बन्धनं मुखे संयोज्यातिकुक्कुटेन क्षीणोदरो भूत्वा स्थितः। ततो नगरगतेन चतुर्थमतिकुर्कुटं दृष्टं मया। यथा तत्र नगरे एकश्चौरस्तपस्तिरूवं धृत्वा बृहच्छिलां च मस्तकस्योपरि हस्ताभ्यामूध्वं गृहीत्वा नगरमध्ये तिष्ठति दिवा रात्रौ चातिकुर्कुटेन ‘अपसर जीव पादं ददामि, अपसर जीव पादं ददामीति’ भणन् भ्रमति। ‘अपसर जीवेति’ चासी भक्तसर्वजनैर्भण्यते। स च गर्तादिविजनस्थाने दिगवलोकनं कृत्वा सुवर्णभूषितमेकाकिनं प्रणमन्तं तया शिलया मारयित्वा तद्रव्यं गृह्णाति। इत्यतिकुर्कुटचतुष्टयमालोक्य मया शङ्कोकोऽयं कृतः-

अबालस्पर्शका नारी ब्राह्मणोऽतृणहिंसकः।

वने काष्ठमुखः पक्षी पुरेऽपसरजीवकः॥ इति

इति कथयित्वा तलारं धीरयित्वा सन्ध्यायां ब्राह्मणः शिष्यतपस्विसमीपं गत्वा तपस्विप्रतिचारकैर्निर्घात्यमानोऽपि रात्र्यन्धो भूत्वा तत्र पतित्वैकदेशे स्थितः। ते च प्रतिचारकाः रात्र्यन्धपरीक्षणार्थं तृणकट्टिकाङ्गुल्यादिकं तस्याक्षिसमीपं नयन्ति। स च पश्यन्नपि न पश्यति। बृहद्रात्रौ गुहायामन्धकूपे ध्रियमाणमालोक्य तेषां खादनपानादिकं वालोक्य प्रभाते राज्ञा मार्यमाणस्तलारो रक्षितः तेन रात्रिदृष्टमावेद्य। स शिष्यस्थस्तपस्वी चौरस्तेन बहुकदर्शनादिभिः कदध्यमानो मृत्वा दुर्गतिं गतस्तृतीयाव्रतस्य।

आरक्षिणाऽब्रह्मनिवृत्त्यभावादुदुःखं प्राप्तम्।

अस्य कथा

आहीरदेशे नासिक्यनगरे राजा कनकरथो राज्ञी कनकमाला, तलारो यमदण्डस्तस्य माता बहुसुन्दरी तरुणरण्डा पुंश्वली। सा एकदा बध्वा धर्तुं समर्पिताभरणं गृहीत्वा रात्रौ सङ्केतितजारपाश्वे गच्छन्तो यमदण्डेन दृष्टा सेविता चैकान्ते। तदाभरणं चानीय तेन निजभार्याया दत्तम्। तया च दृष्ट्वा भणितं- ‘मदीयमिदमाभरणं, मया श्वश्रूहस्ते धृतम्। तद्वचनमाकण्य तेन चिन्तितं या मया सेविता सा मे जननी भविष्यतीति। ततस्तस्या जारसङ्केतगृहं गत्वा तां सेवित्वा तस्यामासक्तो गृहवृत्त्या तया सह कुकर्मरतः स्थितः। एकदा तद्भार्यायाऽसहनादतिरुष्ट्या रजक्याः कथितम्। मम भर्ता निजमात्रा सह तिष्ठति। रजक्या च मालाकारिण्याः कथितम्। अतिविश्वस्ता मालाकारिणी च कनकमालाराज्ञीनिमित्तं पुष्पाणि गृहीत्वा गता। तया च पृष्टा सा कुतूहलेन, जानासि हे कामप्यपूर्वा वार्ताम्। तया च तलारद्विष्टतया कथितं राज्ञ्याः, देवि! यमदण्डतलारो निजजनन्या सह तिष्ठति। कनकमालया च राज्ञः कथितम्। राज्ञा च गूढपुरुषद्वारेण तस्य कुकर्म निश्चित्य तलारो गृहीतो दुर्गतिं गतश्चतुर्थाव्रतस्य।

परिग्रहनिवृत्त्यभावात् श्मश्रुनवनीतेन बहुतरं दुःखं प्राप्तम्।

अस्य कथा

अस्त्योध्यायां श्रेष्ठी भवदत्तो भार्या धनदत्ता पुत्रो लब्धदत्तः वाणिज्येन दूरं गतः। तत्र स्वमुपार्जितं तस्य चौरैर्नीतम्। ततोऽतिनिर्धनेन तेन मार्गे आगच्छता तत्रैकदा गोदुहः तक्रं पातुं याचितम्। तत्र पीते स्तोत्रं नवनीतं कूर्चं लग्नमालोक्य गृहीत्वा



चिन्तितं तेन वाणिज्यं भविष्यत्यनेन मे, एवं च तत्सञ्चिन्तयन्तस्य श्मश्रुनवनी इति नाम जातम्। एवमेकदा प्रस्थप्रमाणे धृते जाते धृतस्य भाजनं पादान्ते धृत्वा शीतकाले तृणकुटीरकद्वारे अग्निं च पादान्ते कृत्वा रात्रौ संस्तरे पतितः सञ्चिन्तयन्ति, अनेन घृतेन बहुतरमर्थमुपाज्य सार्थवाहो भूत्वा सामन्तमहासामन्तराजाधिराजपदं प्राप्य क्रमेण सकलचक्रवर्ती भविष्यामि यदा, तदा च मे सप्ततलप्रासादे शय्यागतस्य पादान्ते समुपविष्टं स्त्रीरत्नं पादौ मुष्ट्या ग्रहीष्यति न जानासि पादमर्दनं कर्तुमिति स्नेहेन भणित्वा स्त्रीरत्नमेवं पादेन ताडयिष्यामि, एवं चिन्तयित्वा तेन चक्रवर्तिरूपाविष्टेन पादेन हत्वा पातितं तद्घृतभाजनं तेन च घृतेन द्वारे संधुक्षितोऽग्निः सुतरां प्रज्वलितः। ततो द्वारे प्रज्वलिते निःसर्तुमशक्तो दग्धो मृतो दुर्गतिं गतः इच्छाप्रमाणरहितपञ्चमाव्रतस्य ॥ १९ ॥

## आर्यिका-आदिमति :

धनश्री नाम की सेठानी ने हिंसा से बहुत प्रकार का दुःखदायक फल भोगा है। सत्यघोष पुरोहित ने असत्य बोलने से, तापस ने चोरी से और कोतवाल ने ब्रह्मचर्य का अभाव होने से बहुत दुःख भोगा है। इसी प्रकार श्मश्रुनवनी नाम के वणिक् ने परिग्रह पाप के कारण बहुत दुःख भोगा है। अतः ये सब ऊपर बताये हुए क्रम से दृष्टान्त देने के योग्य हैं। उनमें धनश्री हिंसा पाप के फल से दुर्गति को प्राप्त हुई थी। इसकी कथा इस प्रकार है-

### धनश्री की कथा

लाटदेशके भृगुकच्छनगरमें राजालोकपाल रहता था। वहीं पर एक धनपाल नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम धनश्री था।

धनश्री जी वही हिंसा से कुछ भी विरत नहीं थी अर्थात् निरन्तर जीव हिंसामें तत्पर रहती थी।

उसकी सुन्दरी नाम की पुत्री और गुणपाल नाम का पुत्र था। जब धनश्री के पुत्र नहीं हुआ था,

तब उसने कुण्डल नाम का एक बालक का पुत्र बुद्धि से पालन-पोषण किया था। समय पाकर जब धनपाल की मृत्यु होगयी,

तब धनश्री उस कुण्डल के साथ कुकर्म करने लगी।

इधर धनश्री का पुत्र गुणपाल जब गुण और दोषों को जानने लगा तब उससे शंकिता होकर धनश्री ने कुण्डल से कहा कि मैं गोखर में गाये चराने के लिए

सो तुम उसके पीछे लगकर उससे वहाँ मार डालो, जिससे हम दोनों का स्वच्छन्द रहना हो जायेगा- कोई रोक-टोक नहीं रहेगी।

यह सब कहते हुए माता को सुन्दरी ने सुन लिया,

इसलिए उसने अपने भाई गुणपाल से कहा दिया कि आज रात्रि में गोधन लेकर गोखर में माता तुम्हें जंगल भेजेगी और वहाँ कुण्डल के हाथ से तुम्हें मरेगा

इसलिये तुम्हें सावधान रहना चाहिए।

धनश्री ने रात्रि के पिछले पहर में गुणपाल से कहा हे पुत्र! कुण्डल का शरीर ठीक नहीं है, इसलिए आज तुम गोखर में गोधन लेकर जाओ।

गुणपाल गोधन को लेकर जंगल गया और वहाँ एक काष्ठ को पड़े से ढककर छिपकर बैठ गया।

कुण्डल ने आकर 'यह गुणपाल है' ऐसा समझकर वस्त्र से ढके हुए काष्ठ पर प्रहार किया।

उसी समय गुणपाल ने तलवार से उसे मार डाला। जब गुणपाल घर आया, तब धनश्री ने पूछा कि रे गुणपाल! कुण्डल कहाँ है?

गुणपाल ने कहा कि कुण्डल की बात को यह तलवार जानती है।

तदनन्तर खून से लिप्त बाहु को देखकर धनश्री ने उसी तलवार से गुणपाल को मार दिया।

भाई को मारते देख सुन्दरी ने उसे मूसल से मारना शुरू किया।

इसी बीच कोलाहल होने से कोतवाल ने धनश्री को पकड़कर राजा के आगे उपस्थित किया। राजा ने उसे गधे पर चढ़ाया तथा कान,

नाक आदिक टवाकर दण्डित किया, जिससे मरकर वह दुर्गति को प्राप्त हुई। इस तरह प्रथम अव्रत से सम्बद्ध कथा पूर्ण हुई।

सत्यघोष असत्य बोलने से बहुत दुःख को प्राप्त हुआ था। इसकी कथा इस प्रकार है-

### सत्यघोष की कथा

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी सिंहपुर नगर में राजा सिंह सेन रहता था। उसकी रानी का नाम रामदत्ता था।

उसी राजा का एक श्रीभूति नाम का पुरोहित था। वह जनेऊ में कैची बांधकर घूमा करता था और कहता था कि यदि मैं असत्य बोलूँ,

तो इस कैची से अपनी जिह्वा काछे दकर लूँ। इस तरह कपट से रहते हुए उस पुरोहित का नाम सत्यघोष पड़ गया।

लोग विश्वास को प्राप्त होकर उसके पास अपना धन रखने लगे। वह उस धन में से कुछ तोर खने वालों को दे देता था,

और बाकी स्वयं ग्रहण कर लेता था। लोग रोने से डरते थे और कोई रोता भी था तो राजा उसकी सुनता ही नहीं था।

तदनन्तर एक समय पद्मखण्डनगर से एक समुद्र दत्त नाम का सेठ आया।

वह वहाँ सत्यघोष के पास अपने पाँच बहुमूल्य रत्न रखकर धन उपार्जित करने के लिए दूसरे पार चला गया और वहाँ धनोपार्जन करके जब लौट रहा था,

तब उसका जहाज फट गया।

काठ के एक पाटिये से वह समुद्र को पार कर रहे हुए मणियों को प्राप्त करने की इच्छा से सिंहपुर में सत्यघोष के पास आया।

रङ्ग के समान आते हुए उसे देखकर उसके मणियों को हरने के लिए सत्यघोष ने विश्वास की पूर्ति के लिए समीप बैठे हुए लोगों से कहा कि यह पुरुष जहाँ

उस सेठ ने आकर उसी प्रकार कहा कि हे सत्यघोष पुरोहित!

मैं धन कमाने के लिए आया था।



धनोपार्जनकरनेकेबादमेरेऊपरबड़ासंकटआपड़ाहै, इसलिएमैंनेजोरतुम्हेंरखनेकेलिएदियेथे, वेरत्नकृपाकरमुझेदेदीजिये। जिससेजहाजफटजानेकेकारणनिर्धनताकोप्राप्तमैंअपनाउद्धारकरसकूँ। उसकेवचनसुनकरकपटीसत्यघोषनेपासमेंबैठेहुएलोगोंसेकहाकिदेखो, मैंनेपहलेआपलोगोंसेबातकहीथी, वहसत्यनिकली। लोगोंनेकहाकिआपहीजानतेहैं, इसपागलकोइसस्थानसेनिकालदियाजावे। ऐसाकहकरउन्होंनेसमुद्रदत्तकोघरसेनिकालदिया। वहपागलहै, ऐसाकहाजानेलागा। सत्यघोषनेमेरेपाँचबहुमूल्यरत्नलेलियेहैं, इसप्रकार राजभवनकेपासइमलीकेएकवृक्षपरचढ़करवहपिछलीरातमेंरोताहुआयहीकहताथा। यहकरतेहुएउसेछहमाहनिकलआये।

एकदिनउसकारोनासुनकररामदत्तारानीनेराजासिंहसेनसेकहाकिदेव! यहपुरुषपागलनहींहै।  
 राजानेभीकहाकितीक्यासत्यघोषसेचोरीकीसम्भावनाकीजासकतीहै? रानीनेफिरकहाकिदेव!  
 उसकेचोरीकीसम्भावनाहोसकतीहै, क्योंकियहसदायहीबातकहताहै।  
 यहसुनकरराजानेकहाकियदिसत्यघोषपरचोरीकीसम्भावनाहै, तोतुमपरीक्षाकरो।  
 आज्ञापाकररामदत्तानेएकदिनराजाकीसेवाकेलिएआतेहुएसत्यघोषकोबुलाकरपूछाकिआजबहुतदेरसेक्योंआयेहैं?  
 सत्यघोषनेकहाकिआजमेरीब्राह्मणीकाभाईपाहुनाबनकरआयाथा, उसेभोजनकरातेहुएबहुतदेरलगगई। रानीनेफिरकहा-  
 अच्छा! यहाँथोड़ीदेरबैठो, मुझेबहुतशौकहै। आजअक्षक्रीड़ाकरें, जुआखेलें।  
 राजाभीवहींआगयेऔरउन्होंनेकहदियाकिऐसाहीकरो।

तदनन्तरजबजुआखेलशुरूहोगया,  
 तबरामदत्तारानीनेनिपुणमतिनामकीस्त्रीसेउसकेकानमेंलगकरकहाकितुम सत्यघोषपुरोहितजोकिरानीकेपासबैठाहै,  
 उन्होंनेमुझेपागलकेरत्नमांगनेकेलिएभेजाहै, ऐसाउसकीब्राह्मणीकेआगेकहकरवेरत्नमांगकरशीघ्रलाओ।  
 तदनन्तरनिपुणमतिनेजाकरवेरत्नमांगे, परन्तुब्राह्मणीनेनहींदिये,  
 क्योंकिसत्यघोषनेउसेपहलेहीमनाकररखाथाकिकिसीकेमांगनेपररत्ननहींदेना।  
 निपुणमतिनेआकररानीकेकानमेंकहाकिवहनहींदेतीहै। अनन्तररानीनेपुरोहितकीअंगूठीजीतली।  
 उसेपहिचानकेरूपमेंदेकरनिपुणमतिकोफिरसेभेजा, परन्तुउसनेफिरभीनहींदिये।  
 अबकीबाररानीनेपुरोहितकाकैचीसहितजनेऊजीतलिया। निपुणमतिनेउसेपहिचानकेरूपमेंदियाऔरदिखाया।  
 उसेदेखकरउसेविश्वासहुआतथा, यदिरत्ननहींदूंगीतोवेकुपितहोंगे,  
 इसप्रकारभयभीतहोकरब्राह्मणीनेपंचरत्ननिपुणमतिकोदेदियेऔरउसनेलाकररानीरामदत्ताकोसौंपदिये।  
 रामदत्तानेराजाकोदिखाये। राजानेउनरत्नोंकोऔरबहुतसेरत्नोंमेंमिलाकरउसपागलसेकहाकिअपनेरत्नपहिचानकरउठालो।  
 उसनेअपनेसबरत्नछाँटकरउठालिये, तबराराजाऔररानीनेउसेवणिक्पुत्र-सेठमानलियाकिवास्तवमेंयहपागलनहींहै,  
 यहतोवणिक्पुत्रहै।

तदनन्तरराजानेसत्यघोषसेपूछाकितुमनेयहकार्यकियाहै? उसनेकहाकिदेव! मैंयहकामनहींकरताहूँ।  
 मुझेऐसाकरनाक्यायुक्तहै? तदनन्तरअत्यन्तकुपितहुएराजानेउसकेलिएतीनदण्डनिर्धारितकिये- १. तीनथालीगोबरखाओ, २.  
 पहलवानोंकेतीनमुक्केखाओअथवा३. समस्तधनदेदो। उसनेविचारकरपहलेगोबरखानाप्राप्तकिया,  
 परजबगोबरखानेमेंअसमर्थरहातबपहलवानोंकेमुक्केसहनकरनाशुरूकिया।  
 किन्तुजबउसमेंभीअसमर्थरहातबसबधनदेनाप्राप्तकिया।  
 इसप्रकारतीनोंदण्डोंकोभोगकरवहमराऔरतीव्रलोभकेकारणराजाकेखजानेमेंअगन्धनजातिकासांपहुआ।  
 वहाँभीमरकरदीर्घसंसारिहुआ। इसप्रकारद्वितीयअव्रतकीकथापूर्णहुई।

चोरीसेतापसबहुतदुःखकोप्राप्तहुआ, इसकीकथाइसप्रकारहै-

तापसकीकथा

वत्सदेशकीकौशाम्बीनगरीमेंराजासिंहरथरहताथा। उसकीरानीकानामविजयाथा। वहाँएकचोरकपटसेतापसहोकररहताथा।  
 वहदूसरेकीभूमिकास्पर्शनकरताहुआलटकतेहुएसीकेपरबैठकरदिनमेंपञ्चाग्नितपकरताथाऔररात्रिमेंकौशाम्बीनगरीकोलूटताथा।  
 एकसमय, नगरलुटगयाहै, इसतरहमहाजनसेसुनकरराजानेकोटृपालसेकहा- 'रेकोटृपाल!  
 सातरात्रिकेभीतरचोरकोपकड़लाओयाफिरअपनासिरलाओ।' तदनन्तरचोरकोनपाताहुआकोटृपालचिन्तामेंनिमग्रहोअपराह्नकालमेंबैठ  
 कोटृपालनेकहा- 'हेब्राह्मण! तुमअभिप्रायकोनहींजानते। मुझेतोप्राणोंकासन्देहहोरहाहैऔरतुमभोजनमांगरहेहो?'  
 यहवचनसुनकरब्राह्मणनेपूछाकि'तुम्हेंप्राणोंकासन्देहकिसकारणहोरहाहै?' कोटृपालनेकारणकहा।  
 उसेसुनकरब्राह्मणनेफिरपूछा- 'यहाँक्याकोईअत्यन्तनिस्पृहवृत्तिवालापुरुषरहताहै?' कोटृपालनेकहाकिविशिष्टतपस्वीरहताहै,  
 परन्तुयहकार्यउसकाहो, ऐसासम्भवनहींहै। ब्राह्मणनेकहाकिवहीचोरहोगा, क्योंकिवहअत्यन्तनिःस्पृहहै।  
 इसविषयमेंमेरीकहानीसुनिये (१) मेरीब्राह्मणीअपनेआपकोमहासतीकहतीहैऔरकहतीहैकिमैंपर-  
 पुरुषकेशरीरकास्पर्शनहींकरती। यहकहकरतीव्रकपटसेसमस्तशरीरकोकपड़ेसेआच्छादितकरअपनेपुत्रकोस्तनदेतीहै-  
 दूधपिलातीहै, परन्तुरात्रिमेंगृहकेवरेदीकेसाथकुर्मकरतीहै।

(२) यह देख मुझे वैराग्य उत्पन्न होगया और मैं मार्ग में हितकारी भोजन के लिए सुवर्णशलाका को बांसकी लाठी के बीच रख कर तीर्थयात्रा के लिए निकल आगे चलने पर मुझे एक ब्रह्मचारी बालक मिल गया। वह हमारे साथ होगया। मैं उसका विश्वास नहीं करता था, इसलिए उस लाठी की बड़े यत्न से रक्षा करता था। उस बालक ने ताड़ लिया अर्थात् उसने समझ लिया कि यह लाठी सगर्भ है अर्थात् इसके भीतर कुछ धन अवश्य है। एक दिन वह बालक रात्रि में कुम्भकार के घर सोया। प्रातः वहाँ से चल कर जब दूर आ गया, तब मस्तक में लगे हुए सड़ते तृण को देख कर कपट वश उसने मेरे आगे कहा कि हाय! हाय! मैं दूसरे के तृण को ले आया। ऐसा कह कर वह लौटा और उस तृण को उसी कुम्भकार के घर पर डाल कर सायंकाल के समय मुझसे आमिला, जब कि मैं भोजन कर चुका था। वह बालक जब भिक्षा के लिए जाने लगा, तब मैंने सोचा कि यह तो बहुत पवित्र है, इस तरह उस पर विश्वास कर कुत्ते आदिको भगाने के लिए मैंने वह लाठी उसको दे दी। उसे लेकर वह चला गया।

(३) तदनन्तर महा अटवी में जाते हुए मैंने एक वृद्ध पक्षी का बड़ा कपट देखा। एक बड़े वृक्ष पर रात्रि के समय बहुत पक्षियों का समूह एकत्र हुआ। उसमें अत्यन्त वृद्ध पक्षी ने रात्रि के समय अपनी भाषा में दूसरे पक्षियों से कहा कि हे पुत्रों! अब मैं अधिक चलन नहीं सकता। कदाचित् भूख से पीड़ित होकर आप लोगों के पुत्रों का भक्षण करने लगूँ, इसलिए प्रातः काल आप लोग हमारे मुख को बाँध कर जाइये। पक्षियों ने कहा कि हाय पिताजी! आप तो हमारे बाबा हैं, आपमें इसकी सम्भावना कैसी जा सकती है? वृद्ध पक्षी ने कहा कि 'बुभुक्षितः किं करोति पापम्' भूख प्राणी क्या पाप नहीं करता? इस तरह प्रातः काल सब पक्षी उस वृद्ध के कहने से उसके मुख को बाँध कर चले गये। वह बँध हुआ वृद्ध पक्षी, सब पक्षियों के चले जाने पर अपने पैरों से मुख बाबन्धन दूर कर उन पक्षियों के बच्चों को खा गया और जब उनके आने का समय हुआ तब फिर से पैरों के

(४) अनन्तर मैं एक नगर में पहुँचा। वहाँ मैंने चौटा कपट देखा। वह इस प्रकार है कि उस नगर में एक चोर तपस्वी का रूप रख कर तथा दोनों हाथों से मस्तक के ऊपर एक बड़ी शिला को उठा कर दिन में खड़ा रहता है जीव हटो मैं पैर रख रहा हूँ, इस प्रकार कहता हुआ भ्रमण करता था। समस्त भक्तजन उसे 'अपसर जीव' इस नाम से कहने लगे थे। वह चोर जब कोई गङ्गा आदि एकान्त स्थान मिलता तो सब ओर देख कर सुवर्ण से विभूषित प्रणाम करते हुए एकाकी पुरुष को उस शिला से मार डाला इन चार तीव्र कपटों को देख कर मैंने यह शङ्कोक बनाया था।

अबालेति- पुत्र का स्पर्शन करने वाली स्त्री, तृण का घातन करने वाला ब्राह्मण, वन में काष्ठमुख पक्षी और नगर में अपसर जीव कये चार महा कपट मैंने देखे हैं।

ऐसा कह कर तथा कोट्टपाल को धीरज बँधा कर वह ब्राह्मण सी के मेरुहने वाले तपस्वी के पास गया। तपस्वी के सेवकों ने उससे कहा कि सेनिकालना भी चाहा, परन्तु वह रात्र्यन्ध बन कर वहीं पड़ा रहा और एक कोने में बैठ गया। तपस्वी के उन सेवकों ने 'यह सचमुच में ही रात्र्यन्ध है या नहीं' इसकी परीक्षा करने के लिए तृण की काड़ी तथा अंगुली आदि उसके नेत्रों के पास चलाये परन्तु वह देखता हुआ भी नहीं देखता रहा। जब रात काफी हो गई तब उसने गुहारूप अन्धकूप में रखे जाते हुए नगर के धन को देखा और उन लोगों के खान-पान आदिको देखा। प्रातः काल उसने जो कुछ रात्रि में देखा था, उसे कह कर राजा के द्वारामें जाने वाले कोट्टपाल की रक्षा की। सी के मैं बैठने वाला वह तपस्वी उस कोट्टपाल के द्वारा पकड़ा गया और बहुत भारी यातनाओं से दुःखी होता हुआ मर कर दुर्गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार तृतीय अव्रत की कथा पूर्ण हुई।

कुशील सेवन से निवृत्ति होने के कारण यमदण्ड को तवालने दुःख प्राप्त किया। इसकी कथा इस प्रकार है-

यमदण्ड को तवाल की कथा

आहीर देश के नासिक्यनगर में राजा कनकरथ रहते थे। उनकी रानी का नाम कनकमाला था। उनका एक यमदण्ड नाम का कोतवाल था। उसकी माता अत्यन्त सुन्दरी थी। वह यौवन अवस्थामें ही विधवा होगई थी तथा व्यवभिचारिणी बन गई थी। एक दिन उसकी पुत्रवधू ने उसे खने के लिए एक आभूषण दिया। उस आभूषण को पहन कर वह रात्रि में अपने पहले से संकेतित जार के पास जा रही थी। यमदण्ड ने उसे देखा और एकान्त में उसका सेवन किया। यमदण्ड ने उसका आभूषण लाकर अपनी स्त्री को दे दिया। स्त्री ने उसे देख कर कहा कि यह आभूषण तो मेरा है, मैंने खने के लिए सास के हाथ में दिया था। स्त्री के वचन सुन कर यमदण्ड को तवालने विचार किया कि मैंने जिसका उपभोग किया है, वह मेरी माता होगी। तदनन्तर यमदण्ड ने माता के जार के संकेत गृह (मिलने के स्थान) पर जा कर उसका पुनः सेवन किया और उसमें आसक्त हो कर गूढ़रीति से उसके साथ कुकर्म करने लगा।

एक दिन उसकी स्त्री को जब यह सहन नहीं हुआ तब उसने अत्यन्त कुपित हो कर धोबिन से कहा कि हमारा पति अपनी माता के साथ रमण करता है धोबिन ने मालिन से कहा, मालिन कनकमाला रानी की अत्यन्त विश्वासपात्र थी। वह उसके निमित्त फूल लेकर गयी।

रानीनेकुतूहलवशउससेपूछाकि कोईअपूर्वबातजानतीहो?

मालिनकोतवालसेद्वेषरखतीथी, अतः

उसनेरानीसेकहदियाकिदेवि!

यमदण्डकोतवालअपनीमाताकेसाथरमणकरताहै।

कनकमालानेयहसमाचारराजासेकहाऔरराजानेगुप्तचरकेद्वाराउसकेकुक्कर्मकानिश्रयकरकोतवालकोपकड़वाया।

दण्डितहोनेपरवहदुर्गतिकोप्राप्तहुआ।

इसप्रकारचतुर्थअव्रतकीकथापूर्णहुई।

परिग्रहपापसेनिवृत्तिहोनेकेकारणशमश्रुनवनीतनेबहुतदुःखप्राप्तकिया।इसकीकथाइसप्रकारहै-

शमश्रुनवनीतकीकथा

अयोध्यानगरीमेंभवदत्तनामकासेठरहताथा।उसकीस्त्रीकानामधनदत्ताथाऔरपुत्रकानामलुब्धदत्तथा।

एकबारवहलुब्धदत्तव्यापारकेनिमित्तदूरगया।वहाँउसनेजोधनकमायाथा, वहसबचोरोनेचुरालिया।

तदनन्तरअत्यन्तनिर्धनहोकरवहकिसीमार्गसेआरहाथा।वहाँउसनेकिसीसमयएकगोपालसेपीनेकेलिएछाछमांगी।

छाछपीचुकनेपरउसकाकुछमक्खनमूछोंमेंलगगया।उसेदेखउसने‘अरे!

यहतोमक्खनहै’यहविचारकरउसेनिकाललियाकिइससेव्यापारहोगा।इसतरहवहप्रतिदिनमक्खनकासंचयकरनेलगा।

जिससेउसकाशमश्रुनवनीतयहनामप्रसिद्धहोगया।

इसप्रकारउसकेपासजबएकप्रस्थप्रमाणघीहोगया,

तबवहघीकेबर्तनकोअपनेपैरोंकेसमीपरखकरतथाशीतकालहोनेसेझोंपड़ीकेद्वारपरपैरोंकेसमीपअग्रिरखकरबिस्तरपरपड़गया।

वहबिस्तरपरपड़ा-पड़ाविचारकरताहैकिइसघीसेबहुतधनकमाकरमैंसेठहोजाऊँगा, फिरधीरे-धीरेसामन्त-महासामन्त,

राजाऔरअधिराजाकापदप्राप्तकरक्रमसेसबकाचक्रवर्तीबनजाऊँगा।उससमयमैंसातखण्डकेमहलमेंशय्यातलपरपड़ाहूँगा।

चरणोंकेसमीपबैठीहुईसुन्दरस्त्रीमुट्टीसेमेरेपैरदाबेगीऔरमैंस्नेहवशउससेकहूँगाकितुझेपैरदबानाभीनहींआता।

ऐसाकहकरमैंपैरसेउसेताड़ितकरूँगा।

ऐसाविचारकरउसनेअपनेआपकोसचमुचहीचक्रवर्तिसमझलियाऔरपैरसेताड़ितकरघीकाबर्तनगिरादिया।

उसघीसेद्वारपररखीहुईअग्निबहुतजोरसेप्रज्वलितहोगयी।द्वारजलनेलगा,

जिससेइच्छाओंकेपरिमाणसेरहितवहनिकलनेमेंअसमर्थहोवहींजलकरमरगयाऔरदुर्गतिकोप्राप्तहुआ।

इसप्रकारपञ्चमअव्रतकीकथापूर्णहुई ॥१९॥

+ श्रावक के आठ मूलगुण -

## मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

**अन्वयार्थ :** [श्रमणोत्तमाः] मुनियों में उत्तम गणधरादिक देव [मद्यमांसमधुत्यागैः] मद्यत्याग, मांसत्याग और मधुत्याग [सह] के साथ [अणुव्रतपञ्चकम्] पाँच अणुव्रतों को [गृहिणां] गृहस्थों के [अष्टौ] आठ [मूलगुणान्] मूलगुण [आहूः] कहते हैं।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

**गृहिणामष्टौ मूलगुणानाहुः** । के ते ? श्रमणोत्तमा जिनाः । किं तत् ? **अणुव्रतपञ्चकम्** । कैः सह ? **मद्यमांसमधुत्यागैः** मद्यं च मांसं च मधु च तेषां त्यागास्तैः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

श्रमण मुनियों को कहते हैं । इनमें जो उत्तम श्रेष्ठ गणधरादिक देव हैं, वे श्रमणोत्तम कहलाते हैं । उन्होंने गृहस्थों के आठ मूलगुण इस तरह कहे हैं- १. मद्यत्याग, २. मांसत्याग, ३. मधुत्याग, ४. अहिंसाणुव्रत, ५. सत्याणुव्रत, ६. अचौर्याणुव्रत, ७. ब्रह्मचर्याणुव्रत, ८. परिग्रहपरिमाणानुव्रत ।

# गुणव्रत-अधिकार

+ गुणव्रतों के नाम -

## दिग्व्रतमनर्थदण्ड, व्रतं च भोगोपभोग-परिमाणं अनुबृंहणाद् गुणाना-माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥

**अन्वयार्थ :** [आर्याः] तीर्थङ्कर देव आदि उत्तम पुरुष, [गुणानाम्] आठ मूलगुणों की [अनुबृंहणाद्] वृद्धि करने के कारण [दिग्व्रतम्] दिग्व्रत, [अनर्थदण्डव्रतम्] अनर्थदण्डव्रत और [भोगोपभोग-परिमाणं] भोगोपभोग-परिमाण-व्रत को [गुणव्रतानि] गुणव्रत [आख्यान्ति] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एवं पञ्चप्रकारमणुव्रतं प्रतिपाद्येदानीं त्रिप्रकारं गुणव्रतं प्रतिपादयन्नाह --

**आख्यान्ति** प्रतिपादयन्ति । कानि ? **गुणव्रतानि** । के ते ? **आर्याः** गुणैर्गुणवद्भिर्वा जयन्ते प्राप्यन्त इत्यार्यास्तीर्थङ्करदेवादयः । किं तद्गुणव्रतम् ? **दिग्व्रतं** दिग्विरति । न केवलमेतदेव किन्तु **अनर्थदण्डव्रतं** चानर्थदण्डविरतिम् । तथा **भोगोपभोगपरिमाणम्** सकृद्भुज्यत इति भागोऽशनपानगन्धमाल्यादिः पुनः पुनरुपभुज्यत इत्युपभोगो वस्त्राभरणयानशयनादिस्तयोः परिमाणं कालनियमेन यावज्जीवनं वा । एतानि त्रीणि कस्माद्गुणव्रतान्युच्यन्ते ? **अनुबृंहणात्** वृद्धिं नयनात् । केषाम् ? **गुणानाम्** अष्टमूलगुणानाम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्ते प्राप्यन्त इत्यार्यास्तीर्थङ्करदेवादयः' जो गुणों अथवा गुणवान मनुष्यों के द्वारा प्राप्त किये जावें, उन्हें आर्य कहते हैं । वे आर्य तीर्थङ्करदेव, गणधर, प्रतिगणधर तथा आचार्य कहलाते हैं । गुण के लिए जो व्रत हैं, उन्हें गुणव्रत कहते हैं ।

दिग्व्रत -- दशों दिशाओं में आने-जाने की सीमा बाँधना दिग्व्रत कहलाता है ।

अनर्थदण्डव्रत -- मन, वचन, काय की निष्प्रयोजन प्रवृत्ति के परित्याग को अनर्थदण्डव्रत कहते हैं ।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत -- भोग और उपभोग की वस्तुओं का कुछ समय अथवा जीवन पर्यन्त के लिए परिमाण करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत है । जो वस्तु एक बार भोगने में आती है, वह भोग है । जैसे- भोजन, पेय पदार्थ तथा गन्धमाला आदि । और जो बार-बार भोगने में आवे, उसे उपभोग कहते हैं । जैसे- वस्त्र, आभूषण, पालकी, वाहन, शय्या आदि । इन सभी वस्तुओं का कुछ काल के लिए या जीवनपर्यन्त के लिए दोनों प्रकार का त्याग होता है । इस प्रकार उपरितन श्लोक में कहे गये आठ मूलगुणों की वृद्धि में सहायक होने से दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोगपरिमाणव्रत इन तीनों को आर्य पुरुषों ने गुणव्रतों में परिगणित किया है ।

+ दिग्व्रत का लक्षण -

## दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्युपापविनिवृत्तयै ॥६८॥

**अन्वयार्थ :** [आमृति] मरणपर्यन्त [अणुपापविनिवृत्तयै] सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए [दिग्वलयं] दिशाओं के समूह को [परिगणितं] मर्यादा सहित [कृत्वा] करके [अहम्] मैं [अतः] इससे [बहिः] बाहर [न] नहीं [यास्यामि] जाऊँगा, [इति] ऐसा [संकल्पः] संकल्प करना दिग्व्रत होता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तत्र दिग्व्रतस्वरूपं प्ररूपयन्नाह --

दिग्रतं भवति । कोऽसौ ? सङ्कल्पः । कथम्भूतम् ? अतोऽहं बहिर्न यास्यामीत्येवं रूपः । किं कृत्वा ? दिग्वलयं परिगणितं कृत्वा समर्यादं कृत्वा । कथम् ? अमृति मरणपर्यन्तं यावत् । किमर्थम् ? अणुपापविनिवृत्यै सूक्ष्मस्यापि पापस्य विनिवृत्त्यर्थम् ॥

### आर्यिका-आदिमति :

दसों दिशाओं में सीमा निर्धारित करके ऐसा संकल्प करना कि मैं इस सीमा से बाहर नहीं जाऊंगा, इसे दिग्रत कहते हैं । दिग्रत मरणपर्यन्त के लिए धारण किया जाता है । दिग्रत का प्रयोजन सूक्ष्म पापों से निवृत्त होता है । अर्थात् मर्यादा के बाहर सर्वथा जाना-आना बन्द हो जाने से वहाँ सूक्ष्म पाप की भी निवृत्ति हो जाती है ।

#### + मर्यादा की विधि -

### मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

अन्वयार्थ : [दशानां] दसों [दिशाम्] दिशाओं के [प्रतिसंहारे] परिमाण करने में [प्रसिद्धानि] प्रसिद्ध [मकराकर] समुद्र, [सरित्] नदी, [अटवी] जंगल, [गिरी] पर्वत, [जनपद] देश और [योजनानि] योजन को मर्यादा [प्राहुः] कहते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

तत्र दिग्वलयस्य परिगणितत्वे कानि मर्यादा इत्याह --

प्राहुर्मर्यादाः । कानीत्याह -- मकराकरे त्यादि-मकराकरश्च समुद्रः, सरितश्च नद्यो गङ्गाद्याः, अटवी दण्डकारण्यादिका, गिरिश्च पर्वतः सह्याविन्ध्यादिः, जनपदो देशो वराटवापीतटादिः, योजनानि विंशतित्रिंशदादिसङ्ख्यानि । किंविशिष्टान्येतानि ? प्रसिद्धानि दिग्विरतिमर्यादानां दातुर्गृहीतुश्च प्रसिद्धानि । कासां मर्यादाः ? दिशाम् । कतिसङ्ख्यावच्छिन्नानां दशानाम् । कस्मिन् कन्ताव्ये सति मर्यादाः ? प्रतिसंहारे इतः परतो न यास्यामीति व्यावृत्तौ ॥

### आर्यिका-आदिमति :

मकराकर समुद्र को कहते हैं । सरित्- गंगा, सिन्धु आदि नदियाँ । अटवी- दण्डकवन आदि सघन जंगल को कहते हैं । गिरि का अर्थ पर्वत है, जैसे सह्याचल, विन्ध्याचल आदि । जनपद का अर्थ देश है, जैसे- वराट, वापीतट आदि देश । और योजन का अर्थ बीस योजन, तीस योजन आदि । व्रत देने वाले और व्रत लेने वालों को जिसका परिचय हो, उन्हें प्रसिद्ध कहते हैं । पूर्वादि दशों दिशाओं सम्बन्धी सीमा निश्चित करने के लिए समुद्र, नदी, जंगल, देश और योजन आदि को मर्यादा रूप से स्वीकार किया है ।

#### + दिग्रत की मर्यादा के बाहर अणुव्रतों के महाव्रतपना -

### अवधे-र्बहिरणुपाप-प्रतिविरतेर्दिग्रतानि धारयतां पञ्च महाव्रतपरिणति-मणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥

अन्वयार्थ : [दिग्रतानि धारयताम्] दिग्रतों के धारक [अणुव्रतानि अवधेःबहिः] अणुव्रत की मर्यादा के बाहर [अणुपाप प्रति विरतेः] सूक्ष्म पापों की भी निवृत्ति हो जाने से [पञ्च महाव्रत परिणति] पञ्च-महाव्रत रूप परिणति को [प्रपद्यन्ते] प्राप्त होते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

एवं दिग्विरतिव्रतं धारयतां मर्यादातः परतः किं भवतीत्याह --

अणुव्रतानि प्रपद्यन्ते । काम् ? पञ्चमहाव्रतपरिणतिम् । केषाम् ? धारयताम् । कानि ? दिग्रतानि । कुतस्तत्परिणतिं प्रपद्यन्ते ? अणुपापप्रतिविरतेः सूक्ष्ममपि पापं प्रतिविरतेः व्यावृत्तेः । क्व ? बहिः । कस्मात् ? अवधेः कृतमर्यादायाः ॥

### आर्यिका-आदिमति :

जो मनुष्य दसों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा करके मर्यादा के बाहर नहीं आता-जाता, इसलिए स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही प्रकार के पाप छूट जाते हैं । अतएव मर्यादा के बाहर अणुव्रत भी महाव्रतपने को प्राप्त हो जाते हैं ।



+ सो कैसे ? उसका समाधान -

## प्रत्याख्यानतनुत्वान्, मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः सत्त्वेन दुरवधारा, महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥७१॥

**अन्वयार्थ :** [प्रत्याख्यानतनुत्वात्] प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का मन्द उदय होने से [मन्दतराः] अत्यन्त मन्द अवस्था को प्राप्त हुए, यहाँ तक कि [सत्त्वेन दुरवधाराः] जिनके अस्तित्व का निर्धारण करना भी कठिन है ऐसे [चरणमोहपरिणामाः] चारित्रमोह के परिणाम [महाव्रताय] महाव्रत के व्यवहार के लिए [प्रकल्प्यन्ते] उपचरित होते हैं- कल्पना किये जाते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तथा तेषां तत्परिणतावपरमपि हेतुमाह --

**चरणमोहपरिणामाः** भावरूपाश्चारित्रमोहपरिणतयः । **कल्प्यन्ते** उपचर्यन्ते । किमर्थम् ? महाव्रतनिमित्तम् । कथम्भूताः सन्तः ? **सत्त्वेन दुरवधारा** अस्तित्वेन महता कष्टेनावधार्यमाणाः सन्तोऽपि तेऽस्तित्वेन लक्षयितुं न शक्यन्त इत्यर्थः । कुतस्ते दुरवधाराः ? **मन्दतरा** अतिशयेनानुत्कटाः । मन्दतरत्वमप्येषां कुतः ? **प्रत्याख्यानतनुत्वात्** प्रत्याख्यानशब्देन हि प्रत्याख्यानावरणाः द्रव्यक्रोधमानमायालोभा गृह्यन्ते । नामैकदेशे हि प्रवृत्ताः शब्दा नाम्यपि वर्तन्ते भीमादिवत् । प्रत्याख्यानं हि सविकल्पेन हिंसादिविरतिलक्षणः संयमस्तदावृण्वन्ति ये ते प्रत्याख्यानावरणा द्रव्यक्रोधादयः, यदुदये ह्यात्मा कात्स्त्र्यात्तद्विरतिं कर्तुं न शक्नोति, अतो द्रव्यरूपाणां क्रोधादीनां तदुत्वान्मन्दोदयत्वाद्भावरूपाणामेषां मन्दतरत्वं सिद्धम् ॥ ७१॥

**आर्थिका-आदिमति :**

चरणमोहपरिणाम अर्थात् भावरूप जो चारित्रमोह परिणति है, जो महाव्रत के लिए कल्पित की गयी है । यहाँ पर प्रत्याख्यान शब्द से प्रत्याख्यानावरण द्रव्य क्रोध, मान, माया, लोभ का ग्रहण होता है, क्योंकि नाम के एकदेश से सर्वदेश का ग्रहण होता है । जिस प्रकार 'भीम' पद से भीमसेन का बोध होता है, उसी प्रकार प्रत्याख्यान शब्द का अर्थ सविकल्पपूर्वक हिंसादि पापों का त्यागरूप संयम होता है । उस संयम को जो आवृत करे अर्थात् जिसके उदय से यह जीव हिंसादि पापों का पूर्ण रूप से त्याग करने में समर्थ नहीं हो पाता है, वे प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ कहलाते हैं । यह कषाय द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार की है, पौद्गलिक कर्मप्रकृति द्रव्यकषाय है और उसके उदय से होने वाले परिणाम भावकषाय हैं । जब गृहस्थ के इन द्रव्यरूप क्रोधादि का इतना मन्द उदय हो जाता है कि चारित्रमोह के परिणाम का अस्तित्व भी बड़ी कठिनता से समझा जाता है, तब उसके उपचार से महाव्रत जैसी अवस्था हो जाती है । दिग्व्रतधारी के मर्यादा के बाहर क्षेत्र में स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के हिंसादि पापों की पूर्णरूप से निवृत्ति हो जाती है । इसलिए उसके अणुव्रत भी उपचार से महाव्रत सरीखे जान पड़ते हैं, परमार्थ से नहीं । अतः द्रव्य क्रोधादिक का मन्दोदय होने से भावक्रोधादि का भी मन्दतरत्व सिद्ध होता है ।

+ महाव्रत का लक्षण -

## पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥

**अन्वयार्थ :** [हिंसादीनां] हिंसा आदिक [पञ्चानां] पाँच [पापानां] पापों का [मनोवचःकायैः] मन-वचन-काय और [कृतकारितानुमोदैः] कृत-कारित-अनुमोदना से [त्यागः] त्याग करना [महतां] प्रमत्तविरत आदि गुणस्थानवर्ती महापुरुषों का [महाव्रतं] महाव्रत [भवति] होता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

ननु कुतस्ते महाव्रताय कल्प्यन्ते न पुनः साक्षान्महाव्रतरूपा भवन्तीत्याह --

**त्यागस्तु** पुनर्महाव्रतं भवति । केषां त्यागः **हिंसादीनां पञ्चानाम्** । कथम्भूतानां **पापानां** पापोपार्जनहेतुभूतानाम् । कैस्तेषां त्यागः **मनोवचःकायैः** । तैरपि कैः कृत्वा त्यागः ? **कृतकारितानुमोदैः** । अयमर्थः- हिंसादीनां मनसा कृतकारितानुमोदैस्त्यागः । तथा वचसा कायेन चेति । केषां तैस्त्यागो महाव्रतम् ? **महतां** प्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिनां विशिष्टात्मनाम् ॥

## आर्यिका-आदिमति :

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह ये पाँच पाप पापोपार्जन के हेतु हैं । इसलिए इनका मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना इन नौ कोटि से त्याग करना महाव्रत कहलाता है । यह महाव्रत प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती विशिष्ट मुनियों के ही होता है, अन्य के नहीं ।

### + दिग्व्रत के अतिचार -

## ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥७३॥

**अन्वयार्थ :** अज्ञान अथवा प्रमाद से [ऊर्ध्व] ऊपर, [अधस्तात्] नीचे [तिर्यग्] और समान धरातल की [व्यतिपाताः] सीमा का उल्लंघन करना, [क्षेत्रवृद्धि] क्षेत्र की मर्यादा को बढ़ा लेना और [अवधीनाम्] की हुई मर्यादा को [विस्मरणम्] भूल जाना, ये [पञ्च] पाँच [दिग्विरतेः] दिग्विरति व्रत के [अत्याशाः] अतिचार [मन्यन्ते] माने जाते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

इदानीं दिग्विरतिव्रतस्यातिचारानाह --

**दिग्विरतेरत्याशा** अतीचाराः **पञ्च मन्यन्तेऽ** भ्युपगम्यन्ते । तथा हि । अज्ञानात् प्रमादाद्वा ऊर्ध्वदिशोऽधस्ताद्विशस्तिर्यग्दिशश्च व्यतिपाता विशेषेणातिक्रमणानि त्रयः । तथाऽज्ञानात् प्रमादाद्वा **क्षेत्रवृद्धिः** क्षेत्राधिक्यावधारणम् । तथाऽवधीनां दिग्विरतेः कृतमर्यादानां **विस्मरण** मिति ॥

## आर्यिका-आदिमति :

दिग्व्रत के पाँच अतिचार हैं । अज्ञान अथवा प्रमाद के ऊपर पर्वतादि पर चढ़ते समय, नीचे कुए आदि में उतरते समय और तिर्यग् अर्थात् समतल पृथ्वी पर चलते समय की हुई मर्यादा को भूलकर सीमा का उल्लंघन करना । प्रमाद अथवा अज्ञानता से किसी दिशा का क्षेत्र बढ़ा लेना और व्रत लेते समय दसों दिशाओं की जो मर्यादा की थी, उसे भूल जाना । ये पाँच अतिचार दिग्व्रत के हैं ।

### + अनर्थदण्ड व्रत -

## अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥७४॥

**अन्वयार्थ :** [व्रतधराग्रण्यः] व्रत धारण करने वाले मुनियों में प्रधान तीर्थङ्कर-देवादि [दिगवधेः] दिग्व्रत की सीमा के [अभ्यन्तरं] भीतर [अपार्थिकेभ्यः] प्रयोजन रहित [सपापयोगेभ्यः] पापसहित योगों से [विरमणमन] निवृत्त होने को [अनर्थदण्डव्रतं] अनर्थदण्डव्रत [विदुः] कहते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

इदानीमनर्थदण्डविरतिलक्षणं द्वितीयं वृणव्रतं व्याख्यातुमाह --

अनर्थदण्डव्रतं विदुर्जानन्ति । के ते ? **व्रतधराग्रण्यः** व्रतधराणां यतीनां मध्येऽग्रण्यः प्रधानभूतास्तीर्थङ्करदेवादयः । **विरमणं** व्यावृत्तिः । केभ्यः ? **सपापयोगेभ्यः** पापेन सह योगः सम्बन्धः पापयोगस्तेन सह वर्तमानेभ्यः पापोपदेशाद्यनर्थदण्डेभ्यः । किंविशिष्टेभ्यः ? **अपार्थिकेभ्यः** निष्प्रयोजनेभ्यः । कथं तेभ्यो विरमणम् ? **अभ्यन्तरं दिगवधेः** दिगवधेरभ्यन्तरं यथा भवेत्येवं तेभ्यो विरमणम् । अतएव दिग्विरतिव्रतादस्य भेदः । तद्व्रते हि मर्यादातो बहिः पापोपदेशादिविरमणम् अनर्थदण्डविरतिव्रते तु ततोऽभ्यन्तरे तद्विरमणम् ॥

## आर्यिका-आदिमति :

व्रतधर का अर्थ पंचमहाव्रतों को धारण करने वाले यति, मुनि, उनमें जो प्रधानभूत तीर्थङ्कर-देवादि वे व्रतधराग्रणी कहलाते हैं । इस तरह व्रतधारियों में अग्रणी तीर्थङ्कर-देव ने अनर्थदण्ड-व्रत का लक्षण इस प्रकार बतलाया है कि दिग्व्रत की मर्यादा के भीतर निष्प्रयोजन, पापरूप मन-वचन-काय की निवृत्ति होती है और अनर्थदण्डव्रत में दिग्व्रत की सीमा के भीतर होने वाले पापपूर्ण व्यर्थ के कार्यों से निवृत्ति होती है । यही इन दोनों में अन्तर है ।

+ अनर्थदण्ड के भेद -

## पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥७५॥

**अन्वयार्थ :** [अदण्डधराः] गणधरदेवादिक [पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः] पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और [प्रमादचर्याम्] प्रमादचर्या [पञ्च] इन पाँच को [अनर्थदण्डान्] अनर्थदण्ड [प्राहुः] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथ के ते अनर्थदण्डा यतो विरमणं स्यादित्याह --

**दण्डा इव** दण्डा अशुभमनोवाक्कायाः परपीडाकरत्वात्, तान्न धरन्तीत्यदण्डधरा गणधरदेवादयस्ते प्राहुः । कान् ? **अनर्थदण्डान्** । कति ? ‘पञ्च’ । कथमित्याह **पापेत्यादि** । पापोपदेशश्च हिंसादानं च अपध्यानं च दुःश्रुतिश्च एताश्चतस्रः प्रमादचर्या चेति पञ्चामी ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

दण्ड-मन, वचन, काय के अशुभ व्यापार को दण्ड कहते हैं । क्योंकि ये दण्डों के समान परपीड़ाकारक होते हैं । उन दण्डों को नहीं धारण करने वाले गणधरादि देवों ने पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या इन पाँच को अनर्थदण्ड कहा है । इन पाँचों से निवृत्त होना ही पाँच प्रकार का अनर्थदण्डव्रत है ।

+ पापोपदेश का लक्षण -

## तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् कथाप्रसङ्गः प्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः ॥७६॥

**अन्वयार्थ :** [तिर्यक्क्लेशवणिज्या] पशुओं को क्लेश पहुँचाने वाली क्रियाएँ, ऐसा व्यापार, [हिंसारम्भ] हिंसा, आरम्भ तथा [प्रलम्भनादीनाम्] ठगई आदि की [कथाप्रसङ्गः] कथाओं के प्रसङ्ग [प्रसवः] उत्पन्न करना [पाप उपदेशः] पापोपदेश नाम का अनर्थदण्ड [स्मर्त्तव्यः] स्मरण करना चाहिए ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तत्र पापोपदेशस्य तावत् स्वरूपं प्ररूपयन्नाह --

**स्मर्त्तव्यो** ज्ञातव्यः । कः ? **पापोपदेशः** पापः पापोपार्जनहेतुरुपदेशः । कथम्भूतः ? **कथाप्रसङ्गः** कथानां तिर्यक्क्लेशादिवार्तानां प्रसङ्गः पुनः पुनः प्रवृत्तिः । किंविशिष्टः ? **प्रसवः** प्रसूत इति प्रभवः उत्पादकः । केषामित्याह -- **तिर्यगित्यादि**, तिर्यक्क्लेशश्च हस्तिदमनादिः, वणिज्या च वणिजां कर्म क्रयविक्रयादि, हिंसा च प्राणिवधः, आरम्भश्च कृष्यादिः, प्रलम्भनं च वञ्चनं तानि आदिर्येषां मनुष्यक्लेशादीनां तानि तथोक्तानि तेषाम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जो उपदेश पाप को उत्पन्न करने में कारण हो, उसे पापोपदेश कहते हैं । उसके तिर्यक्क्लेशादि भेद कहते हैं, अर्थात् तिर्यञ्चों को वश में करने की प्रक्रिया तिर्यक्क्लेश है । जैसे -- हाथी आदि को वश में करने की क्रिया । लेन-देन आदि का व्यापार वाणिज्य है । प्राणियों का वध करना हिंसा है । खेती आदि का कार्य आरम्भ कहलाता है । तथा दूसरों को ठगने आदि की कला प्रलम्भन है । तिर्यक्क्लेश के समान मनुष्यक्लेश भी होता है, अर्थात् मनुष्यों के साथ इस प्रकार की क्रिया करना जिनसे उनको दुःख-क्लेश हो । इन सभी प्रकार की कथा-वार्ताओं का प्रसङ्ग उपस्थित करना अर्थात् बार-बार इनका उपदेश देना वह पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड है । इनके परित्याग करने से पापोपदेश अनर्थदण्डव्रत होता है ।

+ हिंसादान अनर्थदण्ड -

## परशुकृपाणखनित्र-ज्वलनायुध-शृङ्गिशृङ्खलादीनाम् वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥७७॥

**अन्वयार्थ :** [बुधाः] गणधरदेवादिक विज्ञपुरुष [परशु] फरसा, [कृपाण] तलवार, [खनित्र] कुदारी, [ज्वलनायुध] अग्नि, शस्त्र, [शृङ्ग] विष तथा [शृङ्खलादीनाम्] सांकल आदिक [वधहेतूनां] हिंसा के कारणों के [दानं] दान को [हिंसादानं] हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड [ब्रुवन्ति] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथ हिंसादानं किमित्याह --

**हिंसादानं ब्रुवन्ति** । के ते ? **बुधा** गणधरदेवादयः किं तत् ? **दानं** । यत्केषाम् ? **वधहेतूनां** हिंसाकारणानाम् । केषां तत्कारणानामित्याह- **परश्वि** इत्यादि । परशुश्च कृपाणश्च खनित्रं च ज्वलनश्चाऽऽयुधानि च क्षुरिकालकुटादीनि शृङ्गि च विषसामान्यं शृङ्खला च ता आदयो येषां ते तथोक्तास्तेषाम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

हिंसा के उपकरण दूसरों को देना, इसे गणधरदेवादिकों ने हिंसादान कहा है । फरसा आदि को परशु कहते हैं । तलवार कृपाण है । पृथ्वी को खोदने के साधन कुदाली, फावड़ा आदि खनित्र कहे जाते हैं । अग्नि को ज्वलन कहते हैं । छुरी, लाठी आदि आयुध हैं । विषसामान्य को शृङ्गी कहते हैं और बन्धन का साधन सांकल है । ये सब हिंसा के कारण हैं । इनको दूसरों के लिए देना हिंसादान अनर्थदण्ड है, इसका त्याग करना हिंसादान अनर्थदण्डव्रत है ।

+ अपध्यान अनर्थदण्ड -

**वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः  
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥७८॥**

**अन्वयार्थ :** [जिनशासने विशदाः] जिनागम में निपुण पुरुष [द्रवेषात्] द्वेष के कारण किसी के [वधबन्धच्छेदादे] नाश होने, बांधे जाने और छेदे जाने आदि का [च] तथा [रागात्] राग के कारण [परकलत्रादेः] परस्त्री आदि का [आध्यानम्] चिन्तन करने को [अपध्यान्म्] अपध्यान नाम का अनर्थ-दण्ड [शासति] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानीमपध्यानस्वरूपं व्याख्यातुमाह --

**अपध्यानं शासति** प्रतिपादयन्ति । के ते ? **विशदा** विचक्षणाः । क ? **जिनशासने** । किं तत् ? **आध्यानं** चिन्तनम् । कस्य ? **वधबन्धच्छेदादेः** । कस्मात् ? **द्वेषात्** । न केवलं द्वेषादपि **रागाद्वा** ध्यानम् । कस्य ? **परकलत्रादेः** ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

द्वेष के वश किसी के मर जाने, बन्धन प्राप्त होने का अथवा अंग-उपांगादि छिद जाने का और राग के कारण परस्त्री आदि का आध्यान बार-बार चिन्तन करना सो अपध्यान नामक अनर्थदण्ड है । ऐसा जिनशासन के ज्ञाता पुरुष कहते हैं ।

+ दुःश्रुति अनर्थदण्ड -

**आरम्भसङ्गसाहस - मिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः  
चेतः कलुषयतां श्रुति-रवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७९॥**

**अन्वयार्थ :** आरंभ, [संग] परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, [मदमदनैः] मद और कामभोग लोभ आदि से [चेतः] मन को [कलुषयताम्] मलिन करने वाले ऐसे [अवधीनाम्] शास्त्रों / पुस्तकों का [श्रुति] सुनना या पढ़ना अथवा पढ़ाना यह सब दुःश्रुति नाम का अनर्थदण्ड [भवति] है ॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

साम्प्रतं दुःश्रुतिस्वरूपं प्ररूपयन्नाह --

**दुःश्रुतिर्भवति** । कासौ ? श्रुतिः श्रवणं । केषाम् ? **अवधीनां** शास्त्राणाम् । किं कुर्वताम् ? **कलुषयतां** मलिनयताम् । किं तत् ? **चेतः** क्रोधमानमायालोभाद्याविष्टं चित्तं कुर्वतामित्यर्थः । कैः कृत्वेत्याह -- **आरम्भेत्यादि** आरम्भश्च कृष्यादिः सङ्गश्च परिग्रहः तयोः प्रतिपादनं वार्तानीतौ विधीयते । 'कृषिः पशुपाल्यं वाणिज्यं च वार्ता' इत्यभिधानात्, साहसं चात्यद्भुतं कर्म वीरकथायां

प्रतिपाद्यते, मिथ्यात्वं चाद्वैतक्षणिकमित्यादि, प्रमाणविरुद्धार्थप्रतिपादकशास्त्रेण क्रियते, द्वेषश्च विद्वेषीकरणादिशास्त्रेणाभिधीयते रागश्च वशीकरणादिशास्त्रेण विधीयते, मदश्च 'वर्णानां ब्राह्मणो गुरु' रित्यादिग्रन्थाज्ज्ञायते, मदनश्च रतिगुणविलासपताकादिशास्त्रादुत्कटो भवति तैः एतैः कृत्वा चेतः कलुषयतां शास्त्राणां श्रुतिर्दुःश्रुतिर्भवति ॥३३॥

### आर्यिका-आदिमति :

खेती आदि करना आरम्भ है और संग-परिग्रह है । इन दोनों का प्रतिपादन वार्तानीति में किया जाता है । 'कृषिः पशुपाल्यं-वाणिज्यं च वार्ता' इति अभिधानात् अर्थात् खेती, पशुपालन और व्यापार यह सब वार्ता है, ऐसा कहा गया है। अर्थशास्त्र को वार्ता कहते हैं । साहस का अर्थ अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य है । जिसका वर्णन वीर पुरुषों की कथाओं में किया जाता है । अद्वैतवाद तथा क्षणिकवाद मिथ्यात्व हैं। इनका वर्णन प्रमाणविरुद्ध अर्थ के प्रतिपादक शास्त्रों के द्वारा किया जाता है । द्वेष-विद्वेषीकरण द्वेष को उत्पन्न करने वाले शास्त्रों के द्वारा कहा जाता है । वशीकरण आदि शास्त्रों के द्वारा राग उत्पन्न किया जाता है । मद-अहंकार है । इसकी उत्पत्ति 'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः' वर्णों का गुरु ब्राह्मण है इत्यादि ग्रन्थों से जानी जाती है । मदन का अर्थ काम है । यह रतिगुण विलासपताका आदि शास्त्रों से उत्कट होता है । इस प्रकार आरम्भादि के द्वारा चित्त को कलुषित करने वाले शास्त्रों का श्रवण करना दुःश्रुति नामक अनर्थदण्ड है । इसका त्याग करना दुःश्रुति अनर्थदण्डव्रत है ।

+ प्रमादचर्या अनर्थदण्ड -

## क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम् सरणं सारणमपि च प्रमादचर्या प्रभाषन्ते ॥८०॥

**अन्वयार्थ :** [विफलं] निष्प्रयोजन [क्षिति] पृथिवी, [सलिल] पानी, [दहन] अग्नि और [पवन] वायु सम्बन्धी पाप करना, [वनस्पतिच्छेदम्] वनस्पति का छेदना, [सरणं] स्वयं घूमना [च] और [सारणम्] दूसरों को घुमाना [अपि] भी, इस सबको प्रमादचर्या नाम का अनर्थदण्ड [प्रभाषन्ते] कहते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

अधुना प्रमादचर्यास्वरूपं निरूपयन्नाह --

**प्रभाषन्ते** प्रतिपादयन्ति । काम ? **प्रमादचर्याम्** । किं तदित्याह -- **क्षितीत्यादि** । क्षितिश्च सलिलं च दहनश्च तेषामारम्भं क्षितिखननसलिलप्रक्षेपणदहनप्रज्वलनपवनकरणलक्षणम् । किंविशिष्टम् ? **विफलं** निष्प्रयोजनम् । तथा **वनस्पतिच्छेदं** विफलम् । न केवलमेतदेव किन्तु **सरणं सारणमपि** च सरणं स्वयं निष्प्रयोजनं पर्यटनं सारणमन्यस्य निष्प्रयोजनं गमनप्रेरणम् ॥

### आर्यिका-आदिमति :

प्रमादचर्या का प्रतिपादन करते हैं, तद्यथा -- निष्प्रयोजन पृथ्वी को खोदना, पानी छिड़कना, अग्नि जलाना, हवा करना, निष्कारण फल-फूलादि वनस्पति को तोड़ना, इतना ही नहीं किन्तु निष्प्रयोजन स्वयं घूमना और दूसरों को घुमाना, यह सब प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड है । इससे निवृत्त होना प्रमादचर्या अनर्थदण्डव्रत है ।

+ अनर्थदण्डव्रत के अतिचार -

## कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥८१॥

**अन्वयार्थ :** [कन्दर्पं] हंसी करते हुए अशिष्ट वचन बोलना, [कौत्कुच्यं] शरीर की कुचेष्टा करना, [मौखर्यम्] बकवास करना, [अतिप्रसाधनं] भोगोपभोग की सामग्री का अधिक संग्रह करना [च] और [असमीक्ष्य अधिकरणं] बिना प्रयोजन के ही किसी कार्य का अधिक आरम्भ करना ये [पञ्च] पाँच अनर्थदण्ड-विरति-व्रत के [व्यतीतयः] अतिचार हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

एवमनर्थदण्डविरतिव्रतं प्रतिपाद्येदानीं तस्यातीचारानाह --

**व्यतीतयो** ऽतीचारा भवन्ति । कस्य ? **अनर्थदण्डकृद्विरतेः** अनर्थ निष्प्रयोजनं दण्डं दोषं कुर्वन्तीत्यनर्थदण्डकृतः पापोपदेशादयस्तेषां विरतिर्यस्य तस्य । कति ? **पञ्च** । कथमित्याह -- **कन्दर्पेत्यादि**, रागोद्रेकात्प्रहासमिश्रो भण्डिमाप्रधानो



वचनप्रयोगः कन्दर्पः, प्रहासो भण्डिमावचनं भण्डिमोपेतकायव्यापारप्रयुक्तं कौतुक्यं, धाष्टर्यप्रायं बहुप्रलापित्वं मौख्यं, यावतार्थेनोपभोगपरिभोगौ भवतस्ततोऽधिकस्य करणमतिप्रसाधनम्, एतानि चत्वारि, असमीक्ष्याधिकरणं पञ्चमम् असमीक्ष्य प्रयोजनमपर्यालोच्य आधिक्येन कार्यस्य करणमसमीक्ष्याधिकरणम् ॥

### आर्यिका-आदिमति :

निष्प्रयोजन दोषा करने को अनर्थदण्ड कहते हैं । इनके त्याग को अनर्थदण्डव्रत कहते हैं । इसके पाँच अतिचार हैं । यथा -- यद्यपि कन्दर्प का अर्थ काम है, किन्तु यहाँ पर राग के उद्रेक से हास्य मिश्रित, काम को उत्तेजित करने वाले अश्लील भेदे वचन बोलना कन्दर्प कहा गया है । भेदे वचन बोलते हुए हाथ आदि अङ्गों से शरीर की कुचेष्टा करना कौतुक्य कहलाता है । धृष्टता से निष्प्रयोजन बहुत बोलना मौख्य कहलाता है । जितने पदार्थों से अपने भोगोपभोग की पूर्ति होती है, उससे अधिक संग्रह करना अतिप्रसाधन कहलाता है तथा बिना प्रयोजन ही अधिक कार्य करना असमीक्ष्याधिकरण कहलाता है । ये पाँच अनर्थदण्डव्रत के अतिचार हैं ।

+ भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत -

## अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥८२॥

**अन्वयार्थ :** [अर्थवताम्] प्रयोजनभूत [अपि] भी [अवधौ] विषयों के परिणाम के भीतर [रागरतीनां] विषय संबंधी राग से होने वाली आसक्तियों को [तनूकृतये] कृश करने के लिए [अक्षार्थानां] इंद्रिय विषयों का [परिसंख्यानं] परिगणन करना / सीमा निर्धारित करना [भोगोपभोगपरिमाणम्]- भोगोपभोगपरिमाण गुणव्रत है

### प्रभाचन्द्राचार्य :

साम्प्रतं भोगोपभोगपरिमाणलक्षणं गुणव्रतमाख्यातुमाह --

**भोगोपभोगपरिमाणं** भवति । किं तत् ? **यत्परिसंख्यानं** परिगणनम् । केषाम् ? **अक्षार्थानां** मिन्द्रियविषयाणां कथम्भूतानामपि तेषाम् ? **अर्थवतामपि** सुखादिलक्षणप्रयोजनसपादकानामपि अथवाऽर्थवतां सग्रन्थामपि श्रावकाणाम् । तेषां परिसंख्यानम् । किमर्थम् ? **तनूकृतये** कृशतरत्वकरणार्थम् । कासाम् ? **रागरतीनां** रागेण विषयेषु रागोद्रेकेण रतयः आसक्तयस्तासाम् । कस्मिन् सति ? अवधौ विषयपरिमाणे ॥

### आर्यिका-आदिमति :

परिग्रह परिमाणव्रत में परिग्रह की जो सीमा निर्धारित की थी, उसमें भी इंद्रिय-विषयों का जो परिसंख्यान / नियम किया जाता है, वह भोगोपभोग परिमाणव्रत है । यहाँ पर टीकाकार ने 'अर्थवतां' का अर्थ ऐसा भी किया है कि अर्थ-परिग्रह रहित मुनि तो सुखादि लक्षणरूप आवश्यक प्रयोजनक वस्तुओं का परिगणन करते ही हैं, किन्तु अर्थवान् गृहस्थ श्रावक भी राग के तीव्र उद्रेक से होने वाली इंद्रियविषयों में तीव्र आसक्ति को अत्यन्त कृश करने के लिए भोग सामग्री की नियमरूप परिगणना करते हैं । यह भोगोपभोग परिमाण नामक गुणव्रत है ।

+ भोग-उपभोग के लक्षण -

## भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः ॥८३॥

**अन्वयार्थ :** [अशन] भोजन [वसन] वस्त्र [प्रभृतिः] आदिक [पञ्चेन्द्रियः] विषयः; पाँचों इंद्रिय सम्बन्धी जो विषय [भुक्त्वा] भोगकर के [परिहातव्यः] छोड़ दी जाती है वह [भोगः] भोग है [च] और [भुक्त्वा] भोगकर [पुनः] वापस [भोक्तव्यः] भोगने में आती है वह [उपभोगः] उपभोग है ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

अथ को भोगः कश्चोपभोगो यत्परिमाणं क्रियते इत्याशङ्क्याह --

पञ्चेन्द्रियाणामयं **पाञ्चेन्द्रियो** विषयः । **भुक्त्वा परिहातव्य** स्त्याज्यः स 'भोगो' ऽशनपुष्पगन्धविलेपनप्रभृतिः । यः पूर्वं भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः स 'उपभोगो' वसनाभरणप्रभृतिः वसनं वस्त्रम् ॥

## आर्यिका-आदिमति :

जो पदार्थ एक बार भोगकर छोड़ दिये जाते हैं, वे पुनः काम में नहीं आते, ऐसी भोजन, पुष्प, गन्ध और विलेपन आदि वस्तुएँ भोग कहलाती हैं तथा जो पहले भोगी हुई वस्तु बार-बार भोगने में आवे, वह उपभोग है। जैसे -- वस्त्र, आभूषण आदि। इन भोग और उपभोग की वस्तुओं का नियम करना भोगोपभोग परिमाणव्रत कहलाता है।

+ सर्वथा त्याज्य पदार्थ -

## त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहतये मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

**अन्वयार्थ :** [जिनचरणौ] जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की [शरणम्] शरण को [उपयातैः] प्राप्त हुए पुरुषों के द्वारा [त्रसहतिपरिहरणार्थं] त्रस जीवों की हिंसा परिहार करने के लिए [क्षौद्रं] मधु और [पिशितं] मांस [च] तथा [प्रमादपरिहतये] प्रमाद का परिहार करने के लिए [मद्यं] मदिरा [वर्जनीयं] छोड़ने योग्य है।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

मध्वादिर्भोगरूपोऽपि त्रसजन्तुवधहेतुत्वादणुव्रतधारिभिस्त्याज्य इत्याह --

**वर्जनीयम्** । किं तत् ? **क्षौद्रं** मधु । तथा **पिशितं** । किमर्थम् ? **त्रसहतिपरिहरणार्थं** त्रसानां द्वीन्द्रियादीनां हतिर्वधस्तत्परिहरणार्थम् । तथा **मद्यं च** वर्जनीयम् । किमर्थम् ? **प्रमादपरिहतये** माता भार्येति विवेकाभावः प्रमादस्तस्य परिहतये परिहारार्थम् । कैरेतद्वर्जनीयम् ? **शरणमुपयातैः** शरणमुपगतैः । कौ ? **जिनचरणौ** श्रावकैस्त्याज्यमित्यर्थः ॥

## आर्यिका-आदिमति :

जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की शरण लेने वाले श्रावक को द्वीन्द्रियादि त्रस जीवों की हिंसा से बचने के लिए मधु और मांस का त्याग करना चाहिए तथा प्रमाद से बचने के लिए मदिरा-शराब का त्याग करना चाहिए। यह माता है या स्त्री इस प्रकार के विवेक के अभाव को प्रमाद कहते हैं।

+ अन्य त्याज्य पदार्थ -

## अल्पफलबहुविघातान् मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥८५॥

**अन्वयार्थ :** [अल्पफल] फल थोड़ा और [बहुविघातात्] बहुत त्रस जीवों का विघात होने से [आर्द्राणि] सचित्त [मूलकम्] जमीकंद, [शृङ्गवेराणि] जहरीले / काँटों वाले बेर, [नवनीत] मक्खन, [निम्बकुसुमं] नीम के फूल और [कैतकम्] केतकी-केवड़ा के फूल [इति] इत्यादि [एवं] इसी प्रकार के अन्य पदार्थ [अवहेयम्] छोड़ने योग्य हैं।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

तथैतदपि तैस्त्याज्यमित्याह --

**अवहेयं** त्याज्यम् । किं तत् ? **मूलकम्** । तथा **शृङ्गवेराणि** आद्ररकाणि । किं विशिष्टानि ? **आर्द्राणि** अशुष्काणि । तथा नवनीतं च । निम्बकुसुममित्युपलक्षणं सकलकुसुमविशेषाणां तेषाम् । तथा कैतकं केतक्या इदं कैतकं गुधरा इत्येवम्, इत्यादि सर्वमवहेयम् । कस्मात् **अल्पफलबहुविघातात्** । अल्पं फलं यस्यासावल्पफलः, बहूनां त्रसजीवानां विघातो विनाशो बहुविघातः अल्पफलश्चासौ बहुविघातश्च तस्मात् ॥३९॥

## आर्यिका-आदिमति :

मूली, गीला अर्थात् बिना सूखा अदरक तथा उपलक्षण से आलू, सकरकन्द, गाजर, अरबी इत्यादि मक्खन, नीम के फूल, उपलक्षण से सभी प्रकार के फूल तथा केवड़ा के फूल, इसी प्रकार और भी अन्य ऐसे पदार्थ जिनके सेवन से फल तो अल्प हो और बहुत जीवों का घात हो, वे छोड़ने योग्य हैं।

+ व्रत का स्वरूप -

## यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥८६॥

**अन्वयार्थ :** [यत्] जो वस्तु [अनिष्टम्] अनिष्ट / अहितकर हो [तद्] उसे [व्रतयेत्] छोड़ें [च] और [यत्] जो [अनुपसेव्यम्] सेवन करने योग्य न हो, [एतदपि] वह भी [जह्यात्] त्याग करें [यतः] क्योंकि [योग्यात्] योग्य [विषयात्] विषय से [अभिसन्धिकृता] अभिप्राय-पूर्वक की हुई [विरतिः] निवृत्ति [व्रतम्] व्रत [भवति] होती है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

प्रासुकमपि यदेवंविधं तत्त्याज्यमित्याह --

**यदनिष्टम्** उदरशूलादिहेतुतया प्रकृतिसात्म्यकं यन्न भवति **तद्व्रतयेत्** व्रतनिवृत्तिं कुर्यात् त्यजेदित्यर्थः । न केवलमेतदेव व्रतयेदपितु **यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्** । यच्च यदपि गोमूत्र-करभदुग्ध-शङ्खचूर्ण-ताम्बूलोद्गाललाला-मूत्र-पुरीष-श्लेष्मादिकमनुपसेव्यं प्रासुकमपि शिष्टलोकानामास्वादनायोग्यम् एतदपि जह्यात् व्रतं कुर्यात् । कुत एतदित्याह- अभिसन्धीत्यादि-अनिष्टतया अनुपसेव्यतया च व्यावृत्तेर्योग्यविषयादभिसन्धिकृताऽभिप्रायपूर्विका या विरतिः सा यतो व्रतं भवति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जो वस्तु भक्ष्य होने पर भी अनिष्ट, अहितकर हो, प्रकृतिविरुद्ध हो अर्थात् उदरशूल आदि का कारण हो, उसे छोड़ देना चाहिए। इतना ही नहीं किन्तु गोमूत्र, ऊंटनी का दूध, शंखचूर्ण, पान का उगाल, लार, मूत्र, पुरीष तथा श्लेष्मादि वस्तुएँ अनुपसेव्य हैं । शिष्ट पुरुषों के सेवन करने योग्य नहीं हैं, इसलिए इनका भी त्याग करना चाहिए । क्योंकि अनिष्टपने और अनुपसेव्यपने के कारण छोड़ने योग्य विषय से अभिप्रायपूर्वक निवृत्ति होने को व्रत कहते हैं ।

+ यम और नियम -

## नियमो यमश्च विहितौ, द्वेधा भोगोपभोगसंहारात् नियमः परिमितकालो, यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

**अन्वयार्थ :** [भोगोपभोगसंहारात्] भोग और उपभोग के परिमाण का आश्रय कर [नियमः] नियम [च] और [यमः] यम [द्वेषा] दो प्रकार से [विहितौ] व्यवस्थापित हैं / प्रतिपादित हैं, उनमें [परिमितकालः] जो काल के परिमाण से सहित है वह [नियमः] नियम है और जो [यावज्जीवं] जीवन-पर्यन्त के लिए [ध्रियते] धारण किया जाता है, वह [यमः] यम कहलाता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तच्च द्विधा भिद्यत इति --

**भोगोपभोगसंहारात्** भोगोपभोगयोः संहारात् परिमाणात् तमाश्रित्य । **द्वेधा विहितौ** द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां द्वेधा व्यवस्थापितौ । कौ ? **नियमो यमश्च** त्येतौ । तत्र को नियमः कश्च यम इत्याह -- **नियमः परिमितकालो** वक्ष्यमाणः परिमितः कालो यस्य भोगोपभोगसंहारस्य स नियमः । **यमश्च यावज्जीवं ध्रियते** ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

भोग और उपभोग का परिमाण यम और नियम के भेद से दो प्रकार का कहा गया है । जो परिमाण परिमितकाल के लिए अर्थात् समय की मर्यादा लेकर किया जाता है, वह नियम कहलाता है तथा जो जीवनपर्यन्त के लिए धारण किया जाता है वह यम कहलाता है ।

+ भोगोपभोग सामग्री -

भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु  
ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसङ्गीतगीतेषु ॥८८॥  
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा  
इति कालपरिच्छित्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

**अन्वयार्थ :** भोजन, [वाहन] सवारी, [शयन] शय्या, स्नान, [पवित्राङ्गरागकुसुमेषु] पवित्र अंग में सुगन्ध पुष्पादिक धारण करना, [ताम्बूल] पान, [वसन] वस्त्र, [भूषण] आभूषण, [मन्मथ] काम-सेवन, [सङ्गीतगीतेषु] संगीत और गीत के विषय में, [अद्य] आज, [दिवा] एक दिन, [रजनी] एक रात, [वा] अथवा [पक्षो] एक पक्ष, [मासः] एक माह, [ऋतुः] एक ऋतु / दो माह [वा] अथवा [अयनम्] एक अयन / छह माह [इति] इस प्रकार [कालपरिच्छित्या] समय के विभागपूर्वक [प्रत्याख्यानं] त्याग करना [नियमः] नियम [भवेत्] होता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तत्र परिमितकाले तत्संहारलक्षणनियमं दर्शयन्नाह --

युगलम् । नियमो भवेत् । किं तत् ? प्रत्याख्यानम् । कया ? कालपरिच्छित्या । तामेव कालपरिच्छितिं दर्शयन्नाह- अद्येत्यादि, अद्येति प्रवर्तमानघटिकाप्रहरादिलक्षणकालपरिच्छित्या प्रत्याख्यानम् । तथा दिवेति । रजनी रात्रिरिति वा । मास इति वा । ऋतुरिति वा मासद्वयम् । अयनमिति वा षण्मासा । इत्येवं कालपरिच्छित्या प्रत्याख्यानम् । केचित्याह- भोजनेत्यादि भोजनं च वाहनं च घोटकादि, शयनं च पल्यङ्गादि, स्थानं च पवित्राङ्गरागश्च पवित्रश्चावङ्गरागश्च कुङ्कुमादिविलेपनम् । उपलक्षणमेतदञ्जनतिलकादीनां पवित्रविशेषणं दोषापनयनार्थं तेनौषधाद्यङ्गरागो निरस्तः । कुसुमानि च तेषु विषयभूतेषु । तथा ताम्बूलं च वसनं च वस्त्रं भूषणं च कटकादि मन्मथश्च कामसेवा सङ्गीतं च गीतनृत्यवादित्रयं गीतं च केवलं नृत्यवाद्यरहितं तेषु च विषयेषु अद्येत्यादिरूपं कालपरिच्छित्या यत्प्रत्याख्यानं स नियम इति व्याख्यातम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

काल की मर्यादा लेकर जो प्रत्याख्यान-त्याग किया जाता है, वह नियम है । भोजन का अर्थ तो प्रसिद्ध है ही । घोड़ा आदि को वाहन कहते हैं । पलंग आदि शयन हैं । स्नान का अर्थ भी प्रसिद्ध ही है । केशर आदि के विलेपन को पवित्राङ्गराग कहते हैं । यह अङ्गराग अञ्जनतिलक आदि का उपलक्षण है । अङ्गराग के साथ जो पवित्र विशेषण है, वह दोषों को दूर करने के लिए दिया है । इससे सदोष औषधि और अङ्गराग का निराकरण हो जाता है । कुसुम-फूल । ताम्बूल-पान । वसन-वस्त्र । कटक-आभूषण को कहते हैं । कामसेवन को मन्मथ कहते हैं । जिसमें गीत नृत्य वादित्र तीनों हों, वह संगीत कहलाता है । जिसमें मात्र गीत ही हो, नृत्य वादित्र न हो, वह गीत कहलाता है । इन सभी के विषय में समय की मर्यादा लेकर जो त्याग किया जाता है, वह नियम कहलाता है । प्रवर्तमान समय में एक घड़ी, एक पहर आदि काल की मर्यादा लेकर त्याग करना, जैसे आज का त्याग है । दिन-रात तो प्रसिद्ध है । पन्द्रह दिन को पक्ष कहते हैं । तीस दिन को महीना कहते हैं । दो महीने की एक ऋतु होती है । छह मास को अयन कहते हैं । इस प्रकार समय की अवधि रखकर भोजन आदि का त्याग करना नियम कहलाता है ।

+ भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार -

## विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवौ भोगोपभोगपरिमा व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥९०॥

**अन्वयार्थ :** [विषयविषतः] विषयरूपी विष से [अनुपेक्षा] उपेक्षा नहीं होना अर्थात् उसमें आदर रखना, [अनुस्मृतिः] भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना, [अतिलौल्यम्] वर्तमान विषयों में अधिक लम्पटता रखना, [अतितृषाऽनुभवौ] आगामी विषयों की अधिक तृष्णा रखना और वर्तमान विषय का अत्यन्त आसक्ति से अनुभव करना [पञ्च] ये पाँच [भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः] भोगोपभोग-परिमाण-व्रत के अतिचार कहे गए हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

भोगोपभोगपरिमाणस्येदानीमतीचारानाह --

भोगोपभोगपरिमाणं तस्य व्यतिक्रमा अतीचाराः पञ्च कथ्यन्ते । के ते इत्याह विषयेत्यादि- विषय एव विषं प्राणिना दाहसन्तापादिविधायित्वात् तेषु ततोऽनुपेक्षा उपेक्षायास्त्यागस्याभावोऽनुपेक्षा आदर इत्यर्थः । विषयवेदनाप्रतिकारार्थं हि विषयानुभवस्तस्मात्प्रतीकारे जातेऽपि पुनर्यत्सम्भाषणालिङ्गनाद्यादरः सोऽत्यासक्तिसाधनत्वादनुचारः । अनुस्मृतिस्तदनुभवात्प्रतीकारे जातेऽपि पुनर्विषयाणां सौन्दर्यसुखसाधनत्वादनस्मरणमत्यासक्तिहेतुत्वादतीचारः । अतिलौल्यमतिगृह्णतिस्तत्प्रतीकारजातेऽपि पुनः पुनस्तदनुभवाकाङ्क्षेत्यर्थः । अतितृषा भाविभोगोपभोगादेरतिगृह्य प्राप्याकाङ्क्षा । अत्यनुभवो नियतकालेऽपि यदा भोगोपभोगावनु भवति तदाऽत्यासक्त्यानु भवति न पुनर्वेदनाप्रतीकारतयाऽतोऽतीचारः ॥

इति प्रभाचन्द्रविरचितायां समन्तभद्रस्वामिविरचितोपासकाध्ययनटीकायां तृतीयः परिच्छेदः ॥

### आर्यिका-आदिमति :

भोगोपभोगपरिमाणव्रत के पाँच अतिचारों का कथन करते हैं । इन्द्रियविषय विष के समान हैं । क्योंकि जिस प्रकार विष प्राणियों को दाह सन्ताप आदि उत्पन्न करता है, उसी प्रकार विषय भी करते हैं । इस विषयरूप विष की उपेक्षा नहीं करना, उनके प्रति आदर बनाये रखना, अनुपेक्षा नामक अतिचार है । विषयों का उपभोग विषयसम्बन्धी वेदना के प्रतिकार के लिए किया जाता है । विषयों का उपभोग कर लेने पर, वेदना का प्रतिकार हो जाने पर भी पुनः संभाषण, आलिंगन आदि में जो आदर होता है, वह अत्यन्त आसक्ति का जनक होने से अतिचार माना जाता है । विषय अनुभव से वेदना का प्रतिकार हो जाने पर भी सौन्दर्य जनित सुख का साधन होने से विषयों का बार-बार स्मरण करना यह अनुस्मृति नाम का अतिचार है । यह अत्यन्त आसक्ति का कारण होने से अतिचार है । विषयों में अत्यन्त गृद्धता रखना, विषयों का प्रतिकार हो जाने पर भी बार-बार उसके अनुभव की आकांक्षा रखना अतिलौल्य नाम का अतिचार है । आगामी भोगों की प्राप्ति की अत्यधिक गृद्धता रखना अतितृष्णा नाम का अतिचार है । नियतकाल में भी जब भोगोपभोग का अनुभव करता है, तब अत्यन्त आसक्ति से करता है । वेदना के प्रतिकार की भावना से नहीं, अतः यह अतिअनुभव नाम का अतिचार है ।

इस प्रकार समन्तभद्रस्वामिविरचित उपासकाध्ययन की प्रभाचन्द्राचार्यविरचित टीका में तृतीय परिच्छेद पूर्ण हुआ ।

# शिक्षाव्रत-अधिकार

+ शिक्षाव्रत -

देशावकाशिकं वा सामायिकं प्रोषधोपवासो वा  
वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥

अन्वयार्थ : [देशावकाशिकं] देशव्रत और [सामायिकं] सामायिक, [प्रोषधोपवासः] प्रोषधोपवास [वा] और [वैयावृत्यं] वैयावृत्य ये [चत्वारि] चार [शिक्षाव्रतानि] शिक्षाव्रत [शिष्टानि] कहे गये हैं ।

प्रभाचन्द्राचार्य :

साम्प्रतं शिक्षाव्रतस्वरूपणार्थमाह --

शिष्टानि प्रतिपादितानि । कानि ? शिक्षाव्रतानि । कति ? चत्वारि । कस्मात् ? देशावकाशिकमित्यादिचतुःप्रकारसद्भावात् । वाशब्दोऽत्र परस्परप्रकारसमुच्चये । देशावकाशिकादीनां लक्षणं स्वयमेवाग्रे ग्रन्थकारः करिष्यति ॥

आर्यिका-आदिमति :

शिक्षाव्रत के चार भेद हैं । १. देशावकाशिक, २. सामायिक, ३. प्रोषधोपवास, ४. वैयावृत्य । इन सबका लक्षण ग्रन्थकार स्वयं आगे कहेंगे । श्लोक में जो वा शब्द है, वह परस्पर समुच्चय के लिए प्रयुक्त किया है ।

+ देशावकाशिक शिक्षाव्रत -

देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य  
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥

अन्वयार्थ : [विशालस्य] दिग्व्रत में जो दशों दिशाओं की लम्बी चौड़ी [देशस्य] क्षेत्र की मर्यादा का थी [कालपरिच्छेदनेन] काल के विभाग से [प्रत्यहम्] प्रतिदिन [प्रतिसंहारः] त्याग करना [अणुव्रतानां] अणुव्रत पालक श्रावकों का देशावकाशिक



व्रत [स्यात्] कहलाता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तत्र देशावकाशिकस्य तावल्लक्षणम् --

देशावकाशिकं देशे मर्यादीकृतदेशमध्येऽपि स्तोकप्रदेशेऽवकाशो नियतकालमवस्थानं सोऽस्यास्तीति देशावकाशिकं शिक्षाव्रतं स्यात् । कोऽसौ ? प्रतिसंहारो व्यावृत्तिः । कस्य ? देशस्य । कथम्भूतस्य ? विशालस्य बहोः । केन ? कालपरिच्छेदनेन दिवसादिकालमर्यादया । कथम् ? प्रत्यहं प्रतिदिनम् । केषाम् ? अणुव्रतानाम् अणूनि सूक्ष्माणि व्रतानि तेषां केषां श्रावकाणामित्यर्थः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

मर्यादित देश में भी नियतकाल तक स्तोक स्थान में रहना देशावकाश है। यह देशावकाश जिस व्रत का प्रयोजन है, वह देशावकाशिक शिक्षाव्रत है । दिग्व्रत में जीवनपर्यन्त के लिए जो विशाल क्षेत्र की सीमा बांधी थी, उसमें भी एक दिन, एक पहर आदि काल की मर्यादा लेकर और भी कम करना वह देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहलाता है । यह व्रत अणुव्रती श्रावकों के होता है । 'अणूनि सूक्ष्माणि व्रतानि येषां ते अणुव्रताः, तेषाम्' इस प्रकार समास करने से अणुव्रतधारी श्रावक ही होते हैं ।

+ देशव्रत में मर्यादा की विधि -

**गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च  
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीमां तपोवृद्धाः ॥९३॥**

**अन्वयार्थ :** [तपोवृद्धाः] गणधरदेवादिक [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक शिक्षाव्रत के क्षेत्र की [गृह] घर, [हारि] गली, [ग्राम] गाँव [च] और [क्षेत्र] खेत, नदी, [दाव] वन तथा योजनों की [सीमां] सीमा [स्मरन्ति] स्मरण करते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथ देशावकाशिकस्य का मर्यादा इत्याह --

तपोवृद्धाश्चिरन्तनाचार्या गणधरदेवादयः । सीमां स्मरन्ति मर्यादाः प्रतिपाद्यन्ते । सीमामित्यत्र 'स्मृत्यर्थदयीशां कर्म' इत्यनेन षष्ठी । केषां सोमाभूतानाम् ? गृहहारिग्रामाणां हारिः कटकम् । तथा क्षेत्रनदीदावयोजनानां च दावो वनम् । कस्यैतेषां सीमाभूतानाम् ? देशावकाशिकस्य देशनिवृत्तिव्रतस्य ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

'तपोभिः वृद्धाः तपोवृद्धाः' इस निरुक्ति के अनुसार तप से वृद्ध चिरकालीन आचार्य गणधर देवादिक का ग्रहण होता है । उन्होंने देशावकाशिकव्रत की सीमा निर्धारित करते हुए घर, छावनी, गाँव, खेत, नदी, वन और योजनों की सीमा रूप से मर्यादित करना कहा है । यहाँ कर्म अर्थ में 'स्मृत्यर्थदयीशां कर्म' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है । इस सूत्र का अर्थ है स्मृत्यर्थक धातुएँ तथा दय और ईश धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है ।

+ देशव्रत में काल मर्यादा -

**संवत्सरमृतुरयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च  
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥**

**अन्वयार्थ :** [प्राज्ञाः] गणधरदेव / आचार्य [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक-व्रत की [कालावधिं] काल-मर्यादा [संवत्सरम्] एक वर्ष, [अयनम्] छह मास, [ऋतु] दो मास, [मास] एक माह, [चातुर्मास] चार माह, [पक्ष] पंद्रह दिन [च] और [ऋक्षम्] एक नक्षत्र को [प्राहुः] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एवं द्रव्यावधिं योजनावधिं चास्य प्रतिपाद्य कालावधिं प्रतिपादयन्नाह --

देशावकाशिकस्य कालावधिं कालमर्यादां प्राहुः । के ते ? प्राज्ञाः गणधरदेवादयः । किं तदित्याह संवत्सरमित्यादिऋ- संवत्सरं यावदेतावत्येव देशे मयाऽवस्थातव्यम् । तथा ऋतुमयनं वा यावत् । मासचतुर्मासपक्षं यावत् । ऋक्षं च चन्द्रभुक्त्या

आदित्यभुक्त्या वा इदं नक्षत्रं यावत् ॥

### आर्यिका-आदिमति :

देशावकाशिकव्रत में काल की मर्यादा बतलाते हुए गणधरदेवादिक ने एक वर्ष, एक ऋतु, एक अयन, एक मास, चार मास, एक पक्ष अथवा एक नक्षत्र को काल की अवधि कहा है अर्थात् इस प्रकार देशावकाशिक व्रत में आने-जाने की कालमर्यादा की जाती है, ऐसा कहा है ।

+ यह व्रत भी उपचार से महाव्रत है -

## सीमान्तानां परतः स्थूलेतर पञ्चपापसंत्यागात् देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥९५॥

**अन्वयार्थ :** [सीमान्तानां] सीमाओं के अन्तभाग के [परतः] आगे [स्थूल] स्थूल और [इतर] सूक्ष्म [पञ्चपाप] पाँचों पापों का [संत्यागात्] सम्यक् प्रकार त्याग हो जाने से [देशावकाशिकेन] देशावकाशिक-व्रत के द्वारा [महाव्रतानि] महाव्रत [प्रसाध्यन्ते] सिद्ध किये जाते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

एवं देशावकाशिकव्रते कृते सति ततः परतः किं स्यादित्याह --

प्रसाध्यन्ते व्यवस्थाप्यन्ते । कानि ? महाव्रतानि । केन ? देशावकाशिकेन च न केवलं दिग्विरत्यापितु देशावकाशिकेनापि । कुतः ? स्थूलेतरपञ्चपापसंत्यागात् स्थूलेतराणि च तानि हिंसादिलक्षणपञ्चपापानि च तेषां सम्यक् त्यागात् । क्व ? सीमान्तानां परतः देशावकाशिकव्रतस्य सीमाभूता ये 'अन्ताधर्मा' गृहादयः संवत्सरादिविशेषाः तेषां वा अन्ताः पर्यन्तास्तेषां परतः परिस्मन् भागे ॥

### आर्यिका-आदिमति :

देशावकाशिकव्रत में गृह आदि और वर्ष, मास आदि काल की अपेक्षा जो सीमा निर्धारित की थी, उसके आगे स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार से हिंसादि पंच पापों का पूर्णरूप से त्याग हो जाने से सीमा के बाहर दिग्व्रत के समान देशावकाशिकव्रत में महाव्रत की सिद्धि होती है ।

+ देशावकाशिक व्रत के अतिचार -

## प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥९६॥

**अन्वयार्थ :** देशावकाशिक व्रत में की हुई मर्यादा के बाहर [प्रेषण] किसी मनुष्य को भेज देना, [शब्द] मर्यादा के बाहर काम करने वाले के प्रति ताली, चुटकी, हुंकार आदि शब्द से संकेत करना, [आनयनम्] मर्यादा के बाहर से कोई वस्तु मंगाना, [रूपाभिव्यक्ति] मर्यादा के बाहर वाले को अपना शरीर आदि दिखाना और [पुद्गलक्षेपौ] मर्यादा के बाहर काम करने वाले का इशारा करने हेतु कंकड़ आदि फेंकना इस प्रकार से प्रेषण, शब्द, आनयन, रूपाभिव्यक्ति और पुद्गलक्षेप ये पाँच [अत्ययाः] अतिचार [देशावकाशिकस्य] देशावकाशिक व्रत के [व्यपदिश्यन्ते] कहे जाते हैं ॥

### प्रभाचन्द्राचार्य :

इदानीं तदतिचारान् दर्शयन्नाह --

अत्यया अतिचाराः । पञ्च व्यपदिश्यन्ते कथ्यन्ते । के ते ? इत्याह -- प्रेषणेत्यादिमर्यादीकृते देशे स्वयं स्थितस्य ततो बहिरिदं कुर्विति विनियोगः प्रेषणम् । मर्यादीकृतदेशाद्वहिर्यापारं कुर्वतः कर्मकरान् प्रति खात्करणादिः शब्दः । तद्देशाद्वहिः प्रयोजनवशादिदमानयेत्याज्ञापनमानयनम् । मर्यादीकृतदेशे स्थितस्य बहिर्देशे कर्म कुर्वतां कर्मकरणां स्वविग्रहप्रदर्शनं रूपाभिव्यक्तिः । तेषामेव लोष्टादिनिपातः पुद्गलक्षेपः ॥

### आर्यिका-आदिमति :

देशावकाशिकव्रत के पाँच अतिचार कहते हैं -- स्वयं मर्यादित क्षेत्र में स्थित रहकर 'तुम यह काम करो', इस प्रकार मर्यादा के बाहर भेजना प्रेषण नाम का अतिचार है । मर्यादा के बाहर कार्य करने वालों के प्रति खांसी आदि शब्द करना शब्द नाम का अतिचार है । मर्यादा के बाहर रहने वाले व्यक्ति से प्रयोजनवश आज्ञा देना कि 'तुम अमुक वस्तु लाओ' यह आनयन नाम का अतिचार है । स्वयं मर्यादित क्षेत्र में स्थित होकर मर्यादा से बाहर काम करने वालों को अपना शरीर दिखाना रूपाभिव्यक्ति नाम का अतिचार है और उन्हीं लोगों को लक्ष्य करके कंकर, पत्थर आदि फेंकना पुद्गलक्षेप नाम का अतिचार है । इस प्रकार ये देशावकाशिकव्रत के पाँच अतिचार हैं ।

+ सामायिक शिक्षाव्रत -

## आसमयमुक्तिमुक्तं पञ्चाधानामशेषभावेन सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

**अन्वयार्थ :** [सामयिकाः] सामायिक के ज्ञाता गणधरदेवादिक [अशेषभावेन] मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से [सर्वत्र] सब जगह [आसमयमुक्ति] सामायिक के लिए निश्चित समय तक [पञ्चाधानाम] पाँच पापों के [मुक्तं] त्याग करने को [सामयिकं] सामायिक नाम का शिक्षाव्रत [शंसन्ति] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एवं देशावकाशिकस्वरूपं शिक्षाव्रतं व्याख्यायेदानीं सामायिकरूपं तद्व्याख्यातुमाह --

सामयिकं नाम स्फुटं शंसन्ति प्रतिपादयन्ति । के ते ? सामयिकः समयमागमं विन्दन्ति ये ते सामयिका गणधरदेवादयः । किं तत् ? मुक्तं मोचनं परिहरणं यत् तत् सामयिकम् । केषां मोचनम् ? पञ्चाधानां हिंसादिपञ्चपापानाम् । कथम् ? आसमयमुक्तिवक्ष्यमाणलक्षणसमयमोचनं आ-समन्ताद्व्याप्य गृहीतनियमकालमुक्तिं यावदित्यर्थः । कथं तेषां मोचनम्? अशेषभावेन सामस्त्येन न पुनर्देशतः । सर्वत्र च अवधेः परभागे च । अनेन देशावकाशिकादस्य भेदः प्रतिपादितः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

निश्चित समय की अवधि तक पंच पापों का पूर्णरूप से त्याग करने को गणधरदेवादि ने सामायिक नामक शिक्षाव्रत कहा है । देशावकाशिक व्रत में मर्यादा के बाहर क्षेत्र में पंच पापों का पूर्णरूप से त्याग होता है। किन्तु सामायिक शिक्षाव्रत में मर्यादा के भीतर-बाहर दोनों ही क्षेत्रों में पंच पापों का पूर्ण त्याग होता है, इस प्रकार से देशावकाशिक की अपेक्षा सामायिक शिक्षाव्रत में कहा गया है ।

+ समय शब्द की व्युत्पत्ति -

## मूर्धरूहमुष्टिवासोबन्धं पर्य्यकबन्धनं चापि स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

**अन्वयार्थ :** [समयज्ञाः] आगम के ज्ञाता पुरुष [मूर्धरूहबन्धं] सर के केश के बंध, [मुष्टिबन्धं] मुष्टि के बंध (fist) और [वासोबन्धं] वस्त्र के बन्ध के काल को [च] और [पर्य्यकबन्धनं] पालथी बांधने के काल को [वा] अथवा [उपवेशनं] खड़े होने के काल को और [स्थानं] बैठने के काल को [समयं] सामायिक का समय [जानन्ति] जानते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

आसमयमुक्तीत्यत्र यः समयशब्दः प्रतिपादितस्तदर्थं व्याख्यातुमाह --

समयज्ञा आगमज्ञाः । समयं जानन्ति । किं तत् ? मूर्धरूहमुष्टिवासोबन्धं, बन्धशब्दः प्रत्येकमभिसम्बद्धयते मूर्धरूहाणां केशानां बन्धं बन्धकालं समयं जानन्ति । तथा मुष्टिबन्धं वासोबन्धं वस्त्रग्रन्थि पर्यङ्कबन्धनं चापि उपविष्टकायोत्सर्गमपि च स्थानमूर्ध्वकायोत्सर्ग उपवेशनं वा सामान्येनोपविष्टावस्थानमपि समयं जानन्ति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

मूर्धरूह, मुष्टि और वासस् इन तीन शब्दों का द्वन्द्व समास हुआ है । यहाँ पर बन्ध शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होता है । अतः मूर्धरूहबन्ध, मुष्टिबन्ध और वासोबन्ध ये तीन शब्द बने हैं । बन्ध का अर्थ बन्ध का काल है । जैसे -- जब तक चोटी में गांठ लगी है, मुठ्ठी बंधी है, वस्त्र में गांठ लगी है, आसन लगाकर बैठा हूँ, कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ा हूँ अथवा पद्मासन से बैठा

हूँ, तब तक सामायिक करूँगा । इनमें जो काल लगता है, वह सब सामायिक का काल कहलाता है । तथा इसको सामायिक का काल जानते हैं ।

+ सामायिक योग्य स्थान -

## एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

**अन्वयार्थ :** [निर्व्याक्षेपे] उपद्रव-रहित [एकान्ते] एकांत स्थान में, [वनेषु] वन में, [वास्तुषु] घर / धर्मशाला में, [च] और [चैत्यालयेषु] चैत्यालयों में [अपि] और [वापि च] पर्वत पर गुफा में, श्मशान में जहाँ कहीं भी [प्रसन्नधिया] चित्त को प्रसन्न करके [सामयिकं] सामायिक [परिचेतव्यं] बढ़ाना चाहिये ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एवंविधे समये भवत् यत्सामायिकं पञ्चप्रकारपापात् साकल्येन व्यावृत्तिस्वरूपं तस्योत्तरोत्तरा वृद्धिः कर्तव्येत्याह --

परिचेतव्यं वृद्धिं नेतव्यम् । किं तत् ? सामायिकम् । क ? एकान्ते स्त्रीपशुपाण्डुकिविवर्जिते प्रदेशे । कथम्भूते ? निर्व्याक्षेपे चित्तव्याकुलतारहिते शीतवातदंशमशकादिबाधावर्जितः इत्यर्थः इत्थम्भूते एकान्ते । क ? वनेषु अटवीषु, वास्तुषु च गृहेषु, चैत्यालयेषु च अपिशब्दाद् गिरिगह्वरादिपरिग्रहः । केन चेतव्यम् ? प्रसन्नधिया प्रसन्ना अविक्षिप्ता धीर्यस्यात्मनस्तेन अथवा प्रसन्नासौ धीश्च तया कृत्वा आत्मना परिचेतव्यमिति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

सामायिक के लिए एकान्त स्थान होना चाहिए । एकान्त का अर्थ है, जिस स्थान में स्त्री, पशु और नपुंसक आदि का आवागमन न हो । निर्व्याक्षेप अर्थात् चित्त को व्याकुल करने वाले शीत, वायु तथा डांस मच्छर आदि की बाधा से रहित हो, एकान्त स्थान चाहे अटवी हो या घर, देवस्थान अथवा अपि शब्द से पर्वत, गुफा आदि कोई भी स्थान हो, वहाँ पर प्रसन्नचित्त होकर सामायिक करना चाहिए । प्रसन्नधिया शब्द का 'प्रसन्ना-अविक्षिप्ता धीर्यस्य स प्रसन्नधीस्तेन' इस प्रकार बहुब्रीहि समास और 'प्रसन्ना चासौ धीश्च इति प्रसन्नधीस्तया' इस प्रकार कर्मधारय समास भी होता है । इस विशेष्य और हेतु को बतलाया है ।

+ व्रत के दिन सामायिक का उपदेश -

## व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या सामायिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

**अन्वयार्थ :** [उपवासे] उपवास के दिन [वा] अथवा [एक भुक्ते] एकाशन के दिन [व्यापारवैमनस्यात्] शरीरादिक की चेष्टा और मन की व्यग्रता अथवा कलुषता से [विनिवृत्त्याम्] निवृत्ति होने पर [अन्तरात्मविनिवृत्त्या] मानसिक विकल्पों की विशिष्ट निवृत्तिपूर्वक [सामायिकम्] सामायिक को [बध्नीयात्] बढ़ाना चाहिए ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इत्थम्भूतेषु स्थानेषु कथं तत्परिचेतव्यमित्याह --

बध्नीयादनुतिष्ठेत् । किं तत् ? सामायिकम् । कस्यां सत्याम् ? विनिवृत्त्याम् । कस्मात् ? व्यापारवैमनस्यात् व्यापारः कायादिचेष्टा वैमनस्यं मनोव्यग्रता चित्तकालुष्यं वा तस्माद्विनिवृत्त्यामपि सत्याम् अन्तरात्मविनिवृत्त्या कृत्वा तद्वध्नीयात् अन्तरात्मनो मनोविकल्पस्य विशेषेण निवृत्त्या । कस्मिन् सति तस्यां तया तद्वध्नीयात् ? उपवासे चैकभुक्ते वा ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

सामायिक की वृद्धि किन भावों से करे ? इसके उत्तर स्वरूप में बतलाते हैं कि व्यापार-शरीर की चेष्टा और वैमनस्य- मन की व्यग्रता अथवा चित्त की कलुषता से रहित होकर मानसिक विकल्पों को विशेषरूप से हटाते हुए उपवास अथवा एकाशन के दिन विशेषरूप से सामायिक को बढ़ाना चाहिए । यहाँ पर चकार से उससे अन्य समय का भी ग्रहण होता है अर्थात् उपवास और एकाशन के सिवाय अन्य दिनों में भी सामायिक को बढ़ानी चाहिए ।



+ प्रातिदिन सामायिक का उपदेश -

## सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यम् व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

**अन्वयार्थ :** [व्रतपञ्चक] हिंसा त्याग आदि पाँच व्रतों की [परिपूरण] पूर्ति का [कारणम्] कारण [सामायिकं] सामायिक [अनलसेन] आलस्य से रहित और [अवधानयुक्तेन] चित्त की एकाग्रता से युक्त पुरुष के द्वारा [प्रतिदिवसं] प्रतिदिन [यथावत्] शास्त्रोक्त विधि के अनुसार [चेतव्यम्] बढ़ाया जाना चाहिए ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इत्थम्भूतं तर्कं कदाचित्परिचेतव्यमन्यथा वेत्यत्राह --

चेतव्यं वृद्धिं नेतव्यम् । किं ? सामायिकम् । कदा ? प्रतिदिवसमपि न पुनः कदाचित् पर्वदिवस एव । कथम् ? यथावदपि प्रतिपादितस्वरूपानतिक्रमेणैव । कथम्भूतेन ? अनलसेनाऽऽलस्यरहितेन उद्यतेनेत्यर्थः । तथाऽवधानयुक्तेनैकाग्रचेतसा । कुतस्तदित्यं परिचेतव्यम् ? व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणं यतः व्रतानां हिंसाविरत्यादीनां पञ्चकं तस्य परिपूरणत्वं महाव्रतरूपत्वं तस्य कारणम् । यथोक्तसामायिकानुष्ठानकाले हि अणुव्रतान्यपि महाव्रतत्वं प्रतिपद्यन्तेऽतस्तत्कारणम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

यहाँ पर बतला रहे हैं कि कोई यह न समझ ले कि उपवास अथवा एकाशन के दिन ही सामायिक करनी चाहिए, अन्य दिनों में नहीं । इसी का निराकरण करते हुए कहते हैं कि शास्त्रोक्त विधि का अतिक्रमण नहीं करते हुए प्रतिदिन सामायिक करनी चाहिए । सामायिक करने वाला पुरुष आलस्य रहित तथा चित्त की एकाग्रता से युक्त होना चाहिए । क्योंकि सामायिक में हिंसादि पंच पापों की निवृत्ति हो जाती है, इसलिए पाँचों व्रतों की परिपूर्णता स्वरूप सामायिक के काल में अणुव्रत भी महाव्रतरूपता के कारण हैं ।

+ सामायिक के समय मुनितुल्यता -

## सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ॥१०२॥

**अन्वयार्थ :** [सामयिके] सामायिक के काल में [सारम्भाः] आरम्भ सहित [सर्वेऽपि] सभी (अन्तरंग-बहिरंग) [परिग्रहा] परिग्रह [नैव] नहीं [सन्ति] होते हैं, इसलिए [तदा] उस समय [गृही] गृहस्थ [चेलोपसृष्ट] उपसर्ग के कारण वस्त्र से वेष्टित [मुनिरिव] मुनि के समान [यतिभावम्] मुनिपने को [आयाति] प्राप्त होता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एतदेव समर्थयमानः प्राह --

सामयिके सामायिकावस्थायाम् । नैव सन्ति न विद्यन्ते । के ? परिग्रहाः सङ्गाः । कथम्भूताः ? सारम्भाः कृष्याद्यारम्भसहिताः । कति ? सर्वेऽपि बाह्याभ्यन्तराश्चेतनेतरादिरूपा वा । यत एवं ततो याति प्रतिपद्यते । कम् ? यतिभावं यतित्वम् । कोऽसौ ? गृही श्रावकः । कदा ? सामायिकावस्थायाम् । क इव ? चेलोपसृष्टमुनिरिव चेलेन वस्त्रेण उपसृष्टः उपसर्गवशाद्वेष्टितः स चासौ मुनिश्च स इव तद्वत् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जिस समय गृहस्थ सामायिक करता है, उस काल में उसके खेती आदि के आरम्भ से सहित सभी बहिरंग-अन्तरंग तथा चेतन-अचेतन परिग्रह नहीं होते हैं । इसलिए वह गृहस्थ सामायिक अवस्था में उपसर्ग से वस्त्राच्छादित मुनि के समान मुनिपने को प्राप्त होता है ।

+ परीषह—उपसर्ग सहन का उपदेश -

## शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

**अन्वयार्थ :** [सामायिक] सामायिक को [प्रतिपन्ना] धारण करने वाले [मौनधरा:] मौनधारी [च] और [अचलयोगा:] योगों की चंचलता रहित गृहस्थ [शीतोष्णदंशमशकपरीषहम्] शीत, उष्ण तथा दंशमशक परीषह को [च] और [उपसर्गम्] उपसर्ग को [अपि] भी [अधिकुर्वीरन्] सहन करें ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तथा सामायिकं स्वीकृतवन्तो ये तेऽपरमपि किं कुर्वन्तीत्याह --

अधिकुर्वीरन् सहेरन्नित्यर्थः । के ते ? सामयिकं प्रतिपन्नाः सामायिकं स्वीकृतवन्तः । किं विशिष्टाः सन्तः ? अचलयोगाः स्थिरसमाधयः प्रतिज्ञानुष्ठानापरित्यागिनो वा । तथा मौनधरास्तत्पीडायां सत्यामपि क्लीबादिवचनानुच्चारकाः दैन्यादिवचनानुच्चारकाः । कमधिकुर्वीरन्नित्याह- शीत्येत्यादि-शीतोष्णदंशमशकानां पीडाकारिणां तत्परिसमन्तात् सहनं तत्परीषहस्तं, न केवलं तमेव अपि तु उपसर्गमपि च देवमनुष्यतिर्यक्कृतम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जिन्होंने सामायिक को स्वीकार किया है, ऐसे गृहस्थ ध्यान में स्थिर होकर ध्यान करने की प्रतिज्ञा से चलायमान नहीं होते हुए तथा मौनव्रतधारी बनकर शीत-उष्ण, डांस-मच्छर आदि की पीड़ाकारक परीषह को तथा देव-मनुष्य एवं तिर्यञ्चों के द्वारा किये गये उपसर्ग को दीनतापूर्वक शब्दों का उच्चारण नहीं करते हुए सहन करें ।

+ सामायिक के समय चतन -

**अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्  
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥**

**अन्वयार्थ :** [सामयिके] सामायिक में [अशरणम्] अशरण-रूप, [अशुभम्] अशुभ-रूप, [अनित्यम्] अनित्य-रूप, [दुःखम्] दुःख-रूप और [अनात्मानम्] अनात्म-स्वरूप [भवम्] संसार में [आवसामि] निवास करता हूँ और [मोक्षः] मोक्ष [तद्विपरीतात्मा] उससे विपरीत स्वरूप वाला है [इति] इस प्रकार [ध्यायन्तु] विचारें ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तं चाधिकुर्वाणाः सामायिके स्थिता एवंविधं संसारमोक्षयोः स्वरूपं चिन्तयेयुरित्याह --

तथा सामायिके स्थिता ध्यायन्तु । कम् ? भवं स्वोपात्तकर्मवशाच्चतुर्गतिपर्यटनम् । कथम्भूतम् ? अशरणं न विद्यते शरणमपायपरिरक्षकं यत्र । अशुभमशुभकारणप्रभवत्वादशुभकार्यकारित्वाच्चाशुभम् । तथाऽनित्यं चतसृष्वपि गतिषु पर्यटनस्य नियतकाललयाऽनित्यत्वादनित्यम् । तथा दुःखहेतुत्वादुःखम् । तथानात्मानमात्मस्वरूपं न भवति । एवंविधं भवमावसामि एवंविधे भवे तिष्ठामीत्यर्थः । यद्येवंविधः संसारस्तर्हि मोक्षः कीदृश इत्याह- मोक्षस्तद्विपरीतात्मा तस्मादुक्तभवस्वरूपाद्विपरीतस्वरूपतः शरणशुभादिस्वरूपः इत्येवं ध्यायन्तु चिन्तयन्तु सामायिके स्थिताः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

सामायिक में स्थित गृहस्थ इस प्रकार विचार करे- अपने उपार्जित कर्मों के द्वारा जीव चारों गतियों में भ्रमण करता है, वह भव कहलाता है । इस भव-संसार में मृत्यु से बचाने वाला कोई भी रक्षक नहीं है । अशुभ कारणों से उत्पन्न होने तथा अशुभ कार्य को करने के कारण अशुभ है । चारों गतियों में परिभ्रमण करने का काल नियत होने से अनित्य है । दुःख का कारण होने से दुःखरूप है और आत्मस्वरूप से भिन्न होने के कारण अनात्मा है । ऐसी संसार की स्थिति है तथा मैं इस संसार में स्थित हूँ, इस प्रकार का विचार सामायिक में स्थित श्रावक करे । तथा मोक्ष इस संसार के विपरीत है अर्थात् शरणरूप है, शुभ है, नित्यादिरूप है । इस प्रकार मोक्ष के स्वरूप का भी विचार करे ।

+ सामायिक के अतिचार -

**वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे  
सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥१०५॥**

**अन्वयार्थ :** [वाक्कायमानसानाम्] वचन काय और मन की [दुःप्रणिधानानि] खोटी प्रवृत्ति [अनादरास्मरणे] अनादर और अस्मरण ये [पञ्च] पाँच [भावेन] परमार्थ से [सामयिकस्य] सामायिक के [अतिगमाः] अतिचार [व्यज्यन्ते] प्रकट किये जाते हैं ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

साम्प्रतं सामायिकस्यातीचारानाह --

व्यज्यन्ते कथ्यन्ते । के ते ? अतिगमाः अतिचारा । कस्य ? सामयिकस्य । कति ? पञ्च । कथम् ? भावेन परमार्थेन । तथा हि । वाक्कायमानसानां दुष्प्रणिधानमित्येतानि त्रीणि । अनादरोऽनुत्साहः । अस्मरणमनैकाग्र्यम् ॥

## आर्यिका-आदिमति :

सामायिक के पाँच अतिचार कहते हैं, यथा- मनदुष्प्रणिधान, वचनदुष्प्रणिधान, कायदुष्प्रणिधान इन तीन योगों की खोटी प्रवृत्तिरूप तीन अतिचार और अनादक तथा अस्मरण-एकाग्रता का अभाव ये सब मिलकर सामायिक के पाँच अतिचार हैं ।

+ प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत -

## पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

अन्वयार्थ : [पर्वणि] चतुर्दशी [च] और [अष्टम्यां] अष्टमी के दिन [सदा] हमेशा के लिए [इच्छाभिः] व्रतविधान की वाञ्छा से [चतुरभ्यवहार्याणां] चार प्रकार के आहारों का [प्रत्याख्यानं] त्याग करना [प्रोषधोपवासः] प्रोषधोपवास [ज्ञातव्यः] जानना चाहिए ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

अथेदानीं प्रोषधोपवासलक्षणं शिक्षाव्रतं व्याचक्षाणः प्राह --

प्रोषधोपवासः पुनर्ज्ञातव्यः । कदा ? पर्वणि चतुर्दश्याम् । न केवलं पर्वणि, अष्टम्यां च । किं पुनः प्रोषधोपवासशब्दाभिधेयम् ? प्रत्याख्यानम् । केषाम् ? चतुरभ्यवहार्याणां चत्वारि अशनपानखाद्यलेह्यलक्षणानि तानि चाभ्यवहार्याणि च भक्षणीयानि तेषाम् । किं कस्याञ्चिदेवाष्टम्यां चतुर्दश्यां च तेषां प्रत्याख्यानमित्याह- सदा सर्वकालम् । काभिः इच्छाभिर्व्रतविधानवाञ्छाभिस्तेषां प्रत्याख्यानं न पुनर्व्यवहार कृतधरणकादिभिः ॥

## आर्यिका-आदिमति :

प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी-पर्व के दिनों में अन्न, पान, खाद्य और लेह्य इन चार प्रकार के आहार का त्याग करना प्रोषधोपवास कहलाता है । यहाँ पर जो 'सदा' शब्द दिया है, उससे यह सिद्ध होता है कि चार प्रकार के आहार का त्याग सदा के लिए अर्थात् जीवनपर्यन्त की प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी के लिए होना अनिवार्य है । यह त्याग व्रत की भावना से होना चाहिए, न कि लोकव्यवहार में किये गये धरणा आदि की भावना से अर्थात् अपनी किसी मांग को स्वीकार करने के लिए त्याग आदि करना धरणा है । ऐसे त्याग को प्रोषधोपवास नहीं कहते हैं ।

+ उपवास के दिन व्याज्या कार्य -

## पञ्चानां पापानामलङ्क्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात् ॥१०७॥

अन्वयार्थ : [उपवासे] उपवास के दिन [पञ्चानां] पाँच [पापानाम्] पापों का तथा [अलङ्क्रिया] अलंकार धारण करना, [आरम्भ] खेती आदि का आरम्भ करना, [गन्धपुष्पाणाम्] चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना, पुष्पमालाएँ धारण करना या पुष्पों को सूँघना, [स्नान] स्नान करना, [अञ्जन] काजल / सुरमा आदि लगाना तथा [नस्या] नाक से नस्य आदि का सूँघना इन सबका [परिहृतिं] परित्याग [कुर्यात्] करना चाहिए ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

उपवासदिने चोपोषितेन किं कर्तव्यमित्याह --

उपवासदिने परिहृतिं परित्यागं कुर्यात् । केषाम् ? पञ्चानां हिंसादीनाम् । तथा अलङ्क्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् अलङ्क्रियामण्डनं आरम्भो वाणिज्यादिव्यापारः गन्धपुष्पाणामित्युपलक्षणं रागहेतूनां गीतनृत्यादीनाम् । तथा स्नानाञ्जननस्यानां स्नानं च अञ्जनं च नस्यञ्च तेषाम् ॥

## आर्यिका-आदिमति :

उपवास करने वाले व्यक्ति को उपवास के दिन हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों का त्याग करना चाहिए । तथा शरीर-सज्जा, वाणिज्यादि व्यापार, गन्धपुष्प आदि के प्रयोग का और स्नान, अञ्जन, नस्यादि के सेवन का त्याग करना चाहिए । यह सब उपलक्षण हैं, अतः इसमें गीत, नृत्यादि राग के सभी कारणों का त्याग भी आ जाता है ।

+ उपवास के दिन कर्तव्य -

## धर्माभूतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान् ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालूः ॥१०८॥

**अन्वयार्थ :** [उपवसन] उपवास करने वाला व्यक्ति [अतन्द्रालूः] आलस्य-रहित होता [सतृष्णः] उत्कंठित होता हुआ [श्रवणाभ्यां] कानों से [धर्माभूतं] धर्मरूपी अमृत को [पिबतु] स्वयं पीवे [वा] अथवा [अन्यान्] दूसरों को [पाययेत्] पिलावे अथवा आलस्य रहित होता हुआ [ज्ञानध्यानपरो] ज्ञान और ध्यान में तत्पर [भवतु] होवे ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एतेषां परिहारं कृत्वा किं तद्दिनेऽनुष्ठातव्यमित्याह --

उपवसन्नपवासं कुर्वन् । धर्माभूतं पिबतु धर्मम् एवामृतं सकलपाणिनामाप्यायकत्वात् तत् पिबतु । काभ्याम् ? श्रवणाभ्याम् । कथम्भूतः ? सतृष्णः साभिलाषः पिबन् न पुनरुपरोधादिवशात् । पाययेद् वान्यान् स्वमेवावगतधर्मस्वरूपस्तु अन्यतो धर्माभूतं पिबन् अन्यानविदिततत्स्वरूपान् पाययेत् तत् । ज्ञानध्यानपरो भवतु, ज्ञानपरो द्वादशानुप्रेक्षाद्युपयोगनिष्ठः ।

अधुरवाशरणे चैव भव एकत्वमेव च

अन्यत्वमशुचित्वं च तथैवास्रवसंवरो ॥१॥

निर्जरा च तथा लोकबोधदुर्लभधर्मता

द्वादशैता अनुप्रेक्षा भाषिता जिनपुङ्गवैः ॥२॥

ध्यानपरः आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयलक्षणधर्मध्याननिष्ठो वा भवतु । किंविशिष्टः ? अतन्द्रालूः निद्रालस्यरहितः ॥

## आर्यिका-आदिमति :

उपवास करने वाला धर्मरूपी अमृत को कानों से पीवे । धर्म को अमृत कहा है, क्योंकि यह समस्त प्राणियों के सन्तोष का कारण है । यदि उपवास करने वाला व्यक्ति वस्तुस्वरूप का ज्ञाता नहीं है, तो उत्सुकतापूर्वक अन्य विशिष्टजनों से धर्म के उपदेश को अपने कानों से सुने । यदि स्वयं तत्त्ववेत्ता है तो दूसरों को धर्मोपदेश सुनावे तथा आलस्य-प्रमाद को छोड़कर ध्यान-स्वाध्याय में लीन होते हुए अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म इन बारह भावनाओं के चिन्तन में उपयोग को लगावे अथवा आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय लक्षणरूप धर्मध्यान में तत्पर रहे ।

+ प्रोषध और उपवास का लक्षण -

## चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०९॥

**अन्वयार्थ :** [चतुराहार] चार प्रकार के आहार का [विसर्जनम्] त्याग करना [उपवासः] उपवास है । [सकृद्] एक बार [भुक्ति] भोजन करना [प्रोषधः] प्रोषध / एकासन है और [यत्] इसप्रकार [उपोष्य] उपवास करने के बाद [आरम्भं] एकाशन को [आचरति] करना [सः] वह [प्रोषधोपवासः] प्रोषधोपवास है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अधुना प्रोषधोपवासस्य लक्षणं कुर्वन्नाह --



चत्वारश्च ते आहाराश्चाशनपानखाद्येह्यलक्षणाः । अशनं हि भक्तमुद्रादि, पानं हि पेयमथितादि, खाद्यं मोदकादि, लेह्यं रब्रादि, तेषां विसर्जनं परित्यजनमुपवासोऽभिधीयते । प्रोषधः पुनः सकृद्भुक्तिर्धारणकदिने एकभक्तविधानम् । यत्पुनरुपोष्य उपवासं कृत्वा पारणकदिने आरम्भं सकृद्भुक्तिमाचरत्यनुतिष्ठति स प्रोषधोपवासोऽभिधीयते इति ॥

### आर्यिका-आदिमति :

आहार चार प्रकार का है- अशन, पान, खाद्य, लेह्य। भात, मूंग आदि अशन कहलाते हैं। छाछ आदि पीने योग्य वस्तु पेय कहलाती है। लड्डू आदि खाद्य हैं। रबड़ी आदि चाटने योग्य पदार्थ लेह्य हैं। इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास कहलाता है। एक बार भोजन करने को प्रोषध कहते हैं। धारणा के दिन एकाशन और पर्व के दिन उपवास करना पुनः पारणा के दिन एकाशन करना प्रोषधोपवास कहलाता है।

#### + प्रोषधोपवासव्रत के अतिचार -

### ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे यत्प्रोषधोपवासव्यतिलंघनपंचकं तदिदम् ॥११०॥

**अन्वयार्थ :** [यत्] जो [अदृष्टमृष्टानि] बिना देखे तथा बिना शोधे [ग्रहणविसर्गास्तरणानि] पूजा आदि के उपकरणों को ग्रहण करना, मलमूत्रादि को छोड़ना और संस्तर आदि को बिछाना तथा [अनादरास्मरणे] आवश्यक आदि में अनादर और योग्य क्रियाओं को भूल जाना, [तदिदं] वे ये [षधोपवासव्यतिलंघनपंचकं] प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

अथ केऽस्यातीचारा इत्याह --

प्रोषधोपवासस्य व्यातिलङ्घनपञ्चकमतिचारपञ्चकम् । तदिदं पूर्वार्धप्रतिपादितप्रकारम् । तथा हि । ग्रहणविसर्गास्तरणानि त्रीणि । कथम्भूतानि ? अदृष्टमृष्टानि दृष्टं दर्शनं जन्वतः सन्ति न सन्तीति वा चक्षुषावलोकनं मृष्टं मदनोपकरणेन प्रमार्जनं तदुभौ न विद्येते येषु ग्रहणादिषु तानि तथोक्तानि तत्र बुभुक्षापीडितस्यादृष्टमृष्टस्यार्हदादिपूजोपकरणस्यात्मपरिधानाद्यर्थस्य च ग्रहणं भवति । तथा अदृष्टमृष्टायां भूमौ मूत्रपुरीषादेरुत्सर्गो भवति । तथा अदृष्टमृष्टे प्रदेशे आस्तरणं संस्तरोपक्रमो भवतीत्येतानि त्रीणि । अनादरास्मरणे च द्वे । तथा आवश्यकादौ हि बुभुक्षा पीडितत्वादनादरोऽनैकाग्रतालक्षणमस्मरणं च भवति ॥

### आर्यिका-आदिमति :

यहाँ पर जीव जन्तु हैं कि नहीं ? इस प्रकार चक्षु से अवलोकन करना दृष्ट कहलाता है और कोमल उपकरण से परिमार्जन करना मृष्ट कहलाता है। जिसमें ये दोनों न हों, वह अदृष्टमृष्ट कहलाता है। अदृष्टमृष्ट का सम्बन्ध ग्रहण, विसर्ग, आस्तरण इन तीनों के साथ है। इसलिए अदृष्टमृष्ट ग्रहण, अदृष्टमृष्ट विसर्ग, अदृष्टमृष्टास्तरण ये तीन अतिचार हैं। अदृष्टमृष्टग्रहण अतिचार उसके होता है जो भूख से पीडित होकर अर्हन्तादि की पूजा के उपकरण तथा अपने वस्त्रादि को बिना देखे और बिना शोधे ग्रहण करता है। अदृष्टमृष्टविसर्ग जो भूख से पीडित होने के कारण बिना देखी, बिना शोधी भूमि पर मलमूत्रादि विसर्जित करते हैं। अदृष्टमृष्टास्तरण भूख से पीडित होकर बिना देखी, बिना शोधी भूमि पर बिस्तर आदि बिछाना। इन तीन के सिवाय अनादर और अस्मरण ये दो अतिचार और हैं। यथा- भूख से पीडित होने के कारण आवश्यक कार्यों में आदर नहीं करना, उपेक्षा का होना अनादर नाम का अतिचार है और चित्तविक्षिप्त होना एकाग्रता नहीं होना अस्मरण नाम का अतिचार है।

#### + वैयावृत्य का लक्षण -

### दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

**अन्वयार्थ :** [तपोधनाय] तपरूप धन से युक्त तथा [गुणनिधये] सम्यग्दर्शनादि गुणों के भण्डार [अगृहाय] गृहत्यागी-मुनीश्वर के लिए [विभवेन] विधि, द्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार [अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्] प्रतिदान और प्रत्युपकार की अपेक्षा से रहित [धर्माय] स्व-पर के धर्म की वृद्धि के लिए जो [दानम्] दान दिया जाता है, वह [वैयावृत्यं] वैयावृत्य कहलाता है।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

इदानीं वैयावृत्यलक्षणशिक्षाव्रतस्य स्वरूपं प्ररूपयन्नाह --

भोजनादिदानमपि वैयावृत्यमुच्यते । कस्मै दानम् ? तपोधनाय तप एव धनं यस्य तस्मै । किंविशिष्टाय ? गुणनिधये गुणानां सम्यग्दर्शनादीनां निधिराश्रयस्तस्मै । तथाऽगृहाय भावद्रव्यागाररहिताय किमर्थम् ? धर्माय धर्मनिमित्तम् । किंविशिष्टं तद्दानम् ? अनपेक्षितोपचारोपक्रियम् उपचारः प्रतिदानम् उपक्रिया मन्त्रतन्त्रादिना प्रत्युपकरणं ते न अपेक्षिते येन । कथं तद्दानम् ? विधिद्रव्यादिसम्पदा ॥

### आर्यिका-आदिमति :

तप ही जिनका धन है तथा सम्यग्दर्शनादि गुणरूप निधि जिनके आश्रित है, ऐसे भाव आगार और द्रव्य आगार से रहित मुनीश्वरों के लिए धर्म के निमित्त प्रतिदान और मन्त्रतन्त्रादि प्रति उपकार की भावना की अपेक्षा से रहित आहारादि का दान देना वैयावृत्य कहलाता है ।

+ वैयावृत्य का दूसरा लक्षण -

## व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात् वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२॥

**अन्वयार्थ :** [गुणरागात्] सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्रीति से [संयमिनाम्] देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमीजनों को [व्यापत्तिव्यपनोदः] आई हुई नाना प्रकार की आपत्ति को दूर करना [पदयोः] पैरों का, उपलक्षण से हस्तादिक अङ्गों का [संवाहनं] दाबना [च] और [अन्योऽपि] अन्य भी [यावान्] जितना [उपग्रहः] उपकार है, वह वैयावृत्य कहा जाता है ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

न केवलं दानमेव वैयावृत्यमुच्यतेऽपि तु --

व्यापत्तयो विविधा व्याध्यादिजनिता आपदस्तासां व्यपनोदो विशेषेणोपनोदः स्फोटनं यत्तद्वैयावृत्यमेव । तथा पदयोः संवाहनं पादयोर्मर्दनम् । कस्मात् ? गुणरागात् भक्तिवशादित्यर्थः- न पुनर्व्यवहारात् दृष्टफलापेक्षणाद्वा । न केवलमेतावदेव वैयावृत्यं किन्तु अन्योऽपि संयमिनां देशसकलव्रतानां सम्बन्धी यावान् यत्परिमाण उपग्रह उपकारः स सर्वो वैयावृत्यमेवोच्यते ॥

### आर्यिका-आदिमति :

संयमी दो प्रकार के हैं, देशव्रती और सकलव्रती । इन संयमीजनों पर व्याधि आदि अनेक प्रकार की आयी हुई आपत्तियों को गुणानुराग-भक्ति से प्रेरित होकर दूर करना, उसके पैर आदि अंगों का मर्दन करना-दबाना तथा अन्य भी अनुकूल सेवा वैयावृत्ति करना यह वैयावृत्य नामक शिक्षाव्रत है । यह वैयावृत्ति केवल व्यवहार अथवा किसी दृष्टफल की अपेक्षा से न करके भक्ति के वशीभूत होकर की जाती है ।

+ दान का लक्षण -

## नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

**अन्वयार्थ :** [सप्तगुणसमाहितेन] सात गुणों से सहित और [शुद्धेन] कौलिक, आचारिक तथा शारीरिक शुद्धि से सहित दाता के द्वारा [अपसूनारम्भाणाम्] गृहसम्बन्धी कार्य तथा खेती आदि के आरम्भ से रहित [आर्याणां] सम्यग्दर्शनादि गुणों से सहित मुनियों का [नवपुण्यैः] नवधाभक्ति पूर्वक [प्रतिपत्तिः] आहारादि के द्वारा गौरव किया जाता है, वह दान [इष्यते] माना जाता है ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

अथ किं दानमुच्यत इत्यत आह --

दानमिष्यते । कासौ ? प्रतिपत्तिः गौरवा आदरस्वरूपा । केषाम् ? आर्याणां सदृशनादिगुणोपेतमुनीनाम् । किंविशिष्टानाम् ? अपसूनारम्भाणां सूनाः पञ्चजीवघातस्थानानि । यदुक्तम् --

खण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भः प्रमार्जनी

पञ्चसूना गृहस्थस्य तेन मोक्षं न गच्छति ॥

खण्डनी उल्लूखलं, पेषणी घट्टः, चुल्ली चुलूकः, उदकुम्भः उदकघटः, प्रमार्जनी बोहारिका। सूनाश्चारम्भाश्च कृष्णादयस्तेऽपगता येषां तेषाम्। केन प्रतिपत्तिः कर्त्तव्या? सप्तगुणसमाहितेन । तदुक्तम् --

श्रद्धा तुष्टिर्भक्तर्विज्ञानमलुब्धता क्षमा सत्यम्

यस्यैते सप्तगुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति ॥

इत्येतैः सप्तभिर्गुणैः समाहितेन सहितेन तु दात्रा दानं दातव्यम्। कै कृत्वा? नवपुण्यैः । तदुक्तम् --

पडिगहमुच्चट्टाणं पादोदयमच्चणं च पणमं च

मणवयणकायसुद्धी एसणसुद्धी य णवविहं पुण्णं ॥

एतैर्नवभिः पुण्यैः पुण्योपार्जनहेतुभिः ॥

### आर्यिका-आदिमति :

सम्यग्दर्शनादि गुण से सहित मुनियों का आहार आदि दान के द्वारा जो गौरव और आदर किया जाता है, वह दान कहलाता है । जीवघात के स्थान को सूना कहते हैं । सूना के पाँच भेद हैं । जैसे कि कहा है -- खण्डनी-ऊखली से कूटना, पेषणी-चक्की से पीसना, चुल्ली-चूल्हा जलाना, उदकुम्भ-पानी भरना और प्रमार्जनी-बुहारी से जमीन झाड़ना । गृहस्थ के पाँच हिंसा के कार्य होते हैं, इसलिए गृहस्थ मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता । खेती आदि व्यापार सम्बन्धी कार्य आरम्भ कहलाते हैं । जो पंचसूना और आरम्भ से रहित हैं, वे साधु हैं । ऐसे साधुओं को सात गुणों से सहित दाता के द्वारा दान दिया जाता है । जैसा कि कहा है -- श्रद्धा, सन्तोष, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, सत्य ये सात गुण जिस दाता के होते हैं, वह दाता प्रशंसनीय कहलाता है । इन सात गुणों के सिवाय दाता की शुद्धि होना भी आवश्यक है । दाता की शुद्धता तीन प्रकार से बतलाई है, कुल से, आचार से और शरीर से । जिसकी वंश परम्परा शुद्ध है, वह कुलशुद्धि कही जाती है। जिसका आचरण शुद्ध है, वह आचार शुद्धि है । जिसने स्नानादि कर शुद्ध वस्त्र पहने हैं, जो हीनांग, विकलांग नहीं है तथा जिसके शरीर से खून पीपादि नहीं झरते हों, वह कायशुद्धि है । दान, नवधाभक्तिपूर्वक दिया जाता है । कहा भी है -- पडगाहन, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजन, प्रणाम, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और आहारशुद्धि पुण्योपार्जन के इन नौ कारणों के साथ आहारदान दिया जाता है । यही नवधाभक्ति कहलाती है ।

### + दान का फल -

**गृहकर्मणापि निचितं कर्मविमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्  
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥११४॥**

**अन्वयार्थ :** जिस प्रकार [वारि] जल [रुधिरमलं] खून को [धावते] धो देता है, [निचितं] निश्चय से उसी प्रकार [गृहविमुक्तानाम्] गृहरहित निग्रन्थ मुनियों के लिए दिया हुआ [प्रतिपूजा] दान [खलु] वास्तव में [गृहकर्मणापि] गृहस्थी सम्बन्धी [कर्म] कार्यों से उपार्जित अथवा सुदृढ़ भी [कर्मविमार्ष्टि] कर्म को नष्ट कर देता है ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

इत्थं दीयमानस्य फलं दर्शयन्नाह --

विमार्ष्टि स्फोटयति । खलु स्फुटम् । किं तत् ? कर्म पापरूपम् । कथम्भूतम् ? निचितमपि उपार्जितमपि पुष्टमपि वा । केन ? गृहकर्मणा सावद्यव्यापारेण । कासौ कर्त्री ? प्रतिपूजा दानम् । केषाम् ? अतिथीनां न विद्यते तिथिर्येषां तेषाम् । किंविशिष्टानाम् ? गृहविमुक्तानां गृहरहितानाम् । अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थं दृष्टान्तमाह -- रुधिरमलं धावते वारि । अलंशब्दो यथार्थः । अयमर्थो रुधिरं यथा मलिनमपवित्रं च वारि कर्तृ निर्मलं पवित्रं च धावते प्रक्षालयति तथा दानं पापं विमार्ष्टि ॥

### आर्यिका-आदिमति :

जिनके सभी तिथियाँ एक समान हैं, ऐसे गृहत्यागी अतिथियों को दान देने से पापरूप व्यापारादि कार्यों से उपार्जित किये हुए घोर पाप भी नष्ट कर दिये जाते हैं । इसी अर्थ का समर्थन करने के लिए दृष्टान्त देते हैं -- जिस तरह मलिन रक्त को पवित्र जल धो डालता है, उसी प्रकार दान देने से पापकर्म नष्ट हो जाते हैं ।

+ नवधा भक्ति का फल -

## उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो, दानादुपासनात्पूजा भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥

**अन्वयार्थ :** [तपोनिधिषु] तप के खजाने स्वरूप मुनियों को [प्रणतेः] नमस्कार करने से [उच्चैर्गोत्रं] उच्चगोत्र, [दानात्] आहारादि दान देने से [भोगः] भोग, [उपासनात्] उपासना आदि करने से [पूजा] सम्मान, [भक्तेः] भक्ति करने से [सुन्दररूपं] सुन्दररूप और [स्तवनात्] स्तुति करने से [कीर्तिः] सुयश [प्राप्यते] प्राप्त किया जाता है।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

साम्प्रतं नवप्रकारेषु प्रतिग्रहादिषु क्रियमाणेषु कस्मात् किं फलं सम्पद्यत इत्याह --

तपोनिधिषु यतिषु । प्रणतेः प्रणामकरणादुच्चैर्गोत्रं भवति । तथा दानादशनशुद्धिलक्षणाद्भोगो भवति । उपासनात् प्रतिग्रहणादिरूपात् सर्वत्र पूजा भवति । भक्तेर्गुणानुरागजनितान्तः श्रद्धाविशेषलक्षणायाः सुन्दररूपं भवति । स्तवनात् श्रुतजलधीत्यादिस्तुतिविधानात् सर्वत्र कीर्तिर्भवति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

यतियों को प्रणाम करने से उच्चगोत्र का बंध होता है । भोजन की शुद्धिपूर्वक दान देने से भोगों की प्राप्ति होती है । पडगाहनादि करने से सर्वत्र पूजा-प्रभावना होती है । भक्ति -- उनके गुणानुराग से उत्पन्न अन्तरङ्ग में श्रद्धाविशेष से सुन्दररूप और स्तुति अर्थात् 'आप ज्ञान के सागर स्वरूप हैं' इत्यादि स्तुति करने से कीर्ति प्राप्त होती है ।

+ अल्पदान से महाफल -

## क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥

**अन्वयार्थ :** [काले] उचित समय में [पात्रगतं] योग्य पात्र के लिए दिया हुआ [अल्पमपि] थोड़ा भी [दानं] दान [क्षितिगतं] उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए [वटबीजमिव] वटवृक्ष के बीज के समान [शरीरभृताम्] प्राणियों के लिए [छायाविभवं] माहात्म्य और वैभव से युक्त, पक्ष में छाया की प्रचुरता से सहित [बहु] बहुत भारी [इष्टं] अभिलषित [फलं] फल को [फलती] फलता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

नन्वेवंविधं विशिष्टं फलं स्वल्पं दानं कथं सम्पादयतीत्याशङ्क्याऽपनोदार्थमाह --

अल्पमपि दानमुचितकाले । पात्रगतं सत्पात्रे दत्तम् । शरीरभृतां संसारिणाम् । इष्टं फलं बहूनेकप्रकारं सुन्दररूपभोगोपभोगादिलक्षणं फलति । कथम्भूतम् ? छायाविभवं छाया माहात्म्यं विभवः सम्पत् तौ विद्येते यत्र । अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थं क्षितीत्यादिदृष्टान्तमाह । क्षितिगतं सुक्षेत्रे निष्पत्तिं यथा अल्पमति वटबीजं बहुफलं फलति । कथम्? छायाविभवं छाया आतपनिरोधिनी तस्या विभवः प्राचुर्यं यथा भवत्येवं फलति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

सत्पात्र को दिया गया अल्प भी दान संसारी प्राणियों को सुन्दर रूप तथा भोगोपभोगादि अनेक प्रकार के इष्ट फल प्रदान करता है । दान के पक्ष में छाया विभवं का समास - 'छाया माहात्म्यं विभवः सम्पत् तौ विद्येते यत्र' यह फल का विशेषण है । छाया का अर्थ माहात्म्य होता है और विभव का अर्थ सम्पत्ति होता है । छाया और माहात्म्य ये दोनों जिस फल में विद्यमान हैं, उस फल की प्राप्ति दान देने से होती है । जिस प्रकार उत्तम भूमि में बोया गया छोटा-सा वट का बीज प्राणियों को बहुत भारी छाया और बहुत अधिक रूप में फल प्रदान करता है । 'छाया-आतपनिरोधिनी तस्या विभवः प्राचुर्यं यथाभवत्येवं' इस प्रकार वटबीज पक्ष में छाया का अर्थ धूप का अभाव और विभव का अर्थ प्राचुर्य-अधिकता लिया गया है ।

+ दान के भेद -



# आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११७॥

**अन्वयार्थ :** [चतुरस्राः] चार ज्ञान-धारी (गणधर-देव) [आहारौषधयोः] आहार, औषध [च] और [उपकरणावासयोः] अपि उपकरण तथा आवास के भी [दानेन] दान से [वैयावृत्यं] वैयावृत्य को [चतुरात्मत्वेन] चार प्रकार का [ब्रुवते] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तच्चैवंविधफलसम्पादकं दानं चतुर्भेदं भवतीत्याह --

वैयावृत्यं दानं ब्रुवते प्रतिपादयति । कथम् ? चतुरात्मत्वेन चतुःप्रकारत्वेन । के ते ? चतुरस्राः पण्डिताः । तानेव चतुष्प्रकारान् दर्शयन्नाहारेत्याद्याह- आहारश्च भक्तपानादिः औषधं च व्याधिसफोटकं द्रव्यं तयोर्द्रवयोरपि दानेन । न केवलं तयोरेव अपि तु उपकरणावासयोश्च उपकरणं ज्ञानोपकरणादिः आवासो वसतिकादिः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

पण्डितों ने दान का चार प्रकार से निरूपण किया है । यथा -- आहार-भक्त-पानादि को आहार कहते हैं । रोग दूर करने वाले द्रव्य को औषधि कहते हैं । ज्ञानोपकरणादि को उपकरण कहते हैं । वसति आदि को आवास कहते हैं । इन चारों प्रकार की वस्तुओं की देने से वैयावृत्ति के चार प्रकार होते हैं ।

+ वैयावृत्य में अर्हत पूजा -

## श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

**अन्वयार्थ :** श्रीषेण राजा आहार दान के फल से श्री शांतिनाथ तीर्थकर हुये हैं। वृषभसेना ने औषधिदान के प्रभाव से अपने शरीर के स्पर्शित जल से बहुतों के दुःख दूर किये हैं। कौण्डेश ने मुनि को शास्त्रदान देकर अपने श्रुतज्ञान को पूर्ण कर प्रसिद्धि पाई है और सूकर ने मुनि को अभयदान देने के पुण्य से देवगति को प्राप्त किया है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तच्चतुष्प्रकारं दानं किं केन दत्तमित्याह --

चतुर्विकल्पस्य चतुर्विधवैयावृत्यस्य दानस्यैते श्रीषेणादयो दृष्टान्ता मन्तव्याः ।

तत्राहारदाने श्रीषेणो दृष्टान्तः । अस्य कथा --

मलयदेशे रत्नसञ्चयपुरे श्रीषेणो राज्ञो सिंहनन्दिता द्वितीया अनन्दिता च । पुत्रौ क्रमेण तयोरिन्द्रोपेन्द्रौ । तत्रैव ब्राह्मणः सात्यकिनामा, ब्राह्मणी जम्बू, पुत्री सत्यभामा । पाटलिपुत्रनगरे ब्राह्मणो रुद्रभट्टो वटुकान् वेदं पाठयति । तदीयचेटिकापुत्रश्च कपिलनामा तीक्ष्णमतित्वात् छद्मना वेदं शृण्वन् तत्पारगो जातो । रुद्रभट्टेन च कुपितेन पाटलिपुत्रान्निर्घाटितः । सोत्तरीयं यज्ञोपवीतं परिधाय ब्राह्मणो भूत्वा रत्नसञ्चयपुरे गतः । सात्यकिना च तं वेदपारगं सुरूपं च दृष्ट्वा सत्यभामया योग्योऽयमिति मत्वा सा तस्मै दत्ता । सत्यभामा च रतिसमये विटचेष्टां तस्य दृष्ट्वा कुलजोऽयं न भविष्यतीति सा सम्प्रधार्य चित्ते विषादं वहन्ती तिष्ठति । एतस्मिन् प्रस्तावे रुद्रभट्टस्तीर्थयात्रां कुर्वाणो रत्नसञ्चयपुरे समायातः । कपिलेन प्रणम्य निजधवलगृहे नीत्वा भोजनपरिधानादिकं कारयित्वा सत्यभामायाः सकललोकानां च मदीयोऽयं पितेति कथितम् । सत्यभामया चैकदा रुद्रीभट्टस्य विशिष्टं भोजनं बहुसुवर्णं च दत्त्वा पादयोर्लगित्वा पृष्ठं- तात ! तव शीलस्य लेशोऽपि कपिले नास्ति, ततः किमयं तव पुत्रो भवति न वेति सत्यं मे कथय । ततस्तेन कथितं, पुत्रि! मदीयचेटिकापुत्र इति । एतदाकर्ण्य तदुपरि विरक्ता सा हठादयं मामभिगमिष्यतीति मत्वा सिंहनन्दिताग्रमहादेव्याः शरणं प्रविष्टा, तया च सा पुत्री ज्ञाता । एवमेकदा श्रीषेणराजेन परमभक्त्या विधिपूर्वककर्मकीर्त्यामितगतिचारणमुनिभ्यां दानं दत्तम् । तत्फलेन राजा सह भोगभूमावुत्पन्ना । तदनुमोदनात् सत्यभामापि तत्रैवोत्पन्ना । स राजा श्रीषेणो दानप्रथमकारणात् पारम्पर्येण शान्तिनाथतीर्थङ्करो जातः । आहारदानफलम् ।

औषधदाने वृषभसेनाया दृष्टान्तः । अस्याः कथा-

जनपददेशे कावेरीपत्तने राजोग्रसेनः, श्रेष्ठी धनपतिः, भार्या धनश्रीः, पुत्री वृषभसेना, तस्या धात्री रूपवती नाम । एकदा वृषभसेनास्नानजलगर्तायां रोगगृहीतं कुक्कुरं पतितलुठितोऽस्थितं रोगरहितमालोक्य चिन्तितं धात्र्या-पुत्रीस्नानजलमेवास्यारोग्यत्वे कारणम् । ततस्तया धात्र्या निजजनन्या द्वादशवार्षिकाक्षिरोगगृहीताः कथिते तया लोचने तेन जलेन परीक्षार्थमेकदिने धौतदृष्टे च शोभने जाते । ततः सर्वरोगापनयने सा धात्री प्रसिद्धा तत्र नगरे सञ्जाता । एकदोग्रसेनेन

रणपिङ्गलमन्त्री बहुसैन्यपेतो मेघपिङ्गलोपरि प्रेषितः । स तं देशं प्रविष्टो विषोदकसेवनात् ज्वरेण गृहीतः । स च व्याघ्रुत्यागतः रूपवत्या च तेन जलेन नीरोगीकृतः । उग्रसेनोऽपि कोपात्तत्र गतः तथा ज्वरितो व्याघ्रुत्याघातो रणपिङ्गलाज्जलवृत्तान्तमाकर्ण्य तज्जलं याचितवान् । तो मन्त्री उक्तो धनश्रिया भोः श्रेष्ठिन् ! कथं नरपतेः शिरसि पुत्रीस्नानजलं क्षिप्यते ? धनपतिनोक्तं यदि पृच्छति राजा जलस्वभावं तदा सत्यं कथ्यते न दोषः । एवं भणिते रूपवत्या तेने जलेन नीरोगीकृत उग्रसेनः । ततो नीरोगेण, राज्ञा पृष्टा रूपवती जलस्य माहात्म्यम् । तया च सत्यमेव कथितम् । ततो राज्ञा व्याहृतः श्रेष्ठी, स च भीतः राज्ञः समीपमायातः । राज्ञा च गौरवं कृत्वा वृषभसेनां परिणेतुं स याचितः । ततः श्रेष्ठिना भणितं देव ! यद्यष्टाहिकां पूजां जिनप्रतिमानां करोषि तथा पञ्जरस्थान् पक्षिगणान् मुञ्चसि तथा गुप्तिषु सर्वमनुष्ठांश्च मुञ्चसि तदा ददामि । उग्रसेनेन च तत् सर्वं कृत्वा परिणीता वृषभसेना पट्टरानी च कृता । अतिवल्लभया तथैव च सह विमुच्यान्यकार्यं क्रीडां करोति । एतस्मिन् प्रस्तावे यो वाराणस्याः पृथिवीचन्द्रो नाम राजा धृत आस्ते सोऽतिप्रचण्डत्वात्तद्विवाहकालेऽपि न मुक्तः । ततस्तस्य या राज्ञी नारायणदत्ता तया मन्त्रिभिः सह मन्त्रयित्वा पृथिवीचन्द्रमोचनार्थं वाराणस्यां सर्वत्रावारितसत्कारा वृषभसेनाराज्ञीनाम्ना कारितास्तेषु भोजनं कृत्वा कावेरीपत्तनं ये गतास्तेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यस्तं वृत्तान्तमाकर्ण्य रुष्टया रूपवत्या भणिता वृषभसेने ! त्वं मामपृच्छन्ती वाराणस्यां कथं सत्कारान् कारयसि ? तया भणितमहं न कारयामि किन्तु मम नाम्ना केनचित्कारणेन केनापि कारिताः । तेषां शुद्धिं कुरु त्वमिति चरपुरुषैः कृत्वा यथार्थं ज्ञात्वा तया वृषभसेनायाः सर्वं कथितम् । तया च राजानं विज्ञाप्य मोचितः पृथ्वीचन्द्रः । तेन च चित्रफलके वृषभसेनोऽग्रसेनयो रूपे कारिते । तयोरधो निजरूपं सप्रणामं कारितम् । स फलकस्योर्दक्षितः भणिता च वृषभसेना राज्ञी- देवि ! त्वं मम मातासि त्वत्प्रसादादिदं जन्म सफलं मे जातम् । तत उग्रसेनः सन्मानं दत्वा भणितवान् त्वया मेघपिङ्गलस्योपरि गन्तव्यमित्युक्त्वा स च ताभ्यां वाराणस्यां प्रेषितः । मेघपिङ्गलोऽप्येतदाकर्ण्य ममायं पृथ्वीचन्द्रो मर्मभेदीति पर्यालोच्यागत्य चोऽग्रसेनस्यातिप्रसादितः सामन्तो जातः । उग्रसेनेन चास्थानस्थितस्य यन्मे प्राभूतमागच्छति तस्यार्थं मेघपिङ्गलस्य दास्यामि अर्थं च वृषभसेनाया इति व्यवस्था कृता । एवमेकदा रत्नकम्बलद्वयमागतमेकैकं सनामाङ्कं कृत्वा तयोर्दत्तम् । एकदा मेघपिङ्गलस्य राज्ञी विजयाख्या मेघपिङ्गलकम्बलं प्रावृत्य प्रयोजनेन रूपवतीपाश्वरे गता । तत्र कम्बलपरिवर्तो जातः । एकदा वृषभसेनाकम्बलं प्रावृत्य मेघपिङ्गलः सेवायामुग्रसेनसभायामागतः राजा च तमालोक्यातिकोपाद्रक्ताक्षो बभूव । मेघपिङ्गलश्च तं तथाभूतमालोक्य ममोपरि कुपितोऽयं राजेति ज्ञात्वा दूरं नष्टः । वृषभसेना च रुष्टेनोऽग्रसेनेन मारणार्थं समुद्रजले निक्षिप्ता । तया च प्रतिज्ञा गृहीता यदि एतस्मादुपसर्गादुद्धरिष्यामि तदा तपः करिष्यामीति । ततो व्रतमाहात्म्याज्जलदेवतया तस्याः सिंहासनादिप्रातिहार्यं कृतम् । तच्छ्रुत्वा पश्चात्तापं कृत्वा राजा तमानेतुं गतः । आगच्छता वनमध्ये गुणधरनामाऽवधिज्ञानी मुनिर्दृष्टः । स च वृषभसेनया प्रणम्य निजपूर्वभवं चेष्टितं पृष्टः । कथितं च भगवता । यथा- पूर्वभवे त्वमत्रैव, ब्राह्मणपुत्री नागश्रीनामा जातासि । राजकीयदेवकुले सम्मार्जनं करोषि तत्र देवकुले चैकदाऽपराह्णे प्राकाराभ्यन्तरे निर्वातगर्तायां मुनिः दत्तनामा मुनिः पर्यङ्ककायोत्सर्गेण स्थितः । त्वया च रुष्टया भणितः कटकाद्राजा समायातोऽत्रागमिष्यतीत्युत्तिष्ठोत्तिष्ठ सम्मार्जनं करोमि लग्नेति ब्रुवाणायास्तत्र मुनिः कायोत्सर्गं विधाय मौनेन स्थितः । ततस्त्वया कचवारेण पूरयित्वोपरि सम्मार्जनं कृतम् । प्रभाते तत्रागतेन राज्ञा तत्प्रदेशे क्रीडता उच्छ्वसितनः श्वसितप्रदेशं दृष्ट्वा उत्खन्य निःसारितश्च स मुनिः । ततस्त्वयात्मनिन्दां कृत्वा धर्मं रुचिः कृता । परमादरेण च तस्य मुनेस्त्वया तत्पीडोपशमनार्थं विशिष्टमौषधदानं वैयावृत्यं च कृतम् । तेन निदानेन मृत्वेह धनपतिधनश्रियोः पुत्री वृषभसेना नाम जातासि । औषधदानफलात् सर्वौषधद्रधिफलं जातम् । कचवारपूरणात् कलङ्किता च । इति श्रुत्वात्मानं मोचयित्वा वृषभसेना तत्समीपे आर्यिका जाता । औषधदानस्य फलम् ।

श्रुतदाने कौण्डेशो दृष्टान्तः । अस्य कथा --

कुरुमणिग्रामे गोपालो गोविन्दनामा । तेन च कोटरादुद्धृत्य चिरन्तनपुस्तकं प्रपूज्य भक्त्या पद्मनन्दिमुनये दत्तम् । तेन पुस्तकेन तत्राटव्यां पूर्वभट्टारकाः केचित् किल पूजां कृत्वा कारयित्वा च व्याख्यानं कृतवन्तः कोटरे च गतवन्तश्च । गोविन्देन च वाल्यात्प्रभृति तं दृष्ट्वा नित्यमेव पूजा कृता वृक्षकोटरस्यापि । एष स गोविन्दो निदानेन मृत्वा तत्रैव ग्रामकूटस्य पुत्रोऽभूत् । तमेव पद्मनन्दिमुनिमालोक्य जातिस्मरो जातः । तपो गृहीत्वा कोण्डेशनामा महामुनिः श्रुतधरोऽभूत् । इति श्रुतदानस्य फलम् ।

वसतिदाने सूकरो दृष्टान्तः । अस्य कथा --

मालवदेशे घटग्रामे कुम्भकारो देविलनामा नापितश्च धमिल्लनामा । ताभ्यां पथिकजनानां वसतिनिमित्तं देवकुलं कारितम् । एकदा देविलेन मुनये तत्र प्रथमं वसतिर्दत्ता धमिल्लेन च पश्चात् परिव्राजकस्तत्रानीय धृतः । ताभ्यां च धमिल्लपरिव्राजकाभ्यां निःसारितः स मुनिर्वृक्षमूले रात्रौ दंशमशकशीतादिकं सहमानः स्थितः । प्रभाते देविलधमिल्लौ तत्कारणेन परस्परं युद्धं कृत्वा मृत्वा विन्ध्ये क्रमेण सुकरव्याघ्रौ प्रौढौ जातौ । यत्र च गुहायां स सूकरस्तिष्ठति तत्रैव च गुहायामेकदा समाधिगुप्तात्रिगुप्तमुनी आगत्य स्थितौ । तौ च दृष्ट्वा जातिस्मरो भूत्वा देविलचरसूकरो धर्ममाकर्ण्य व्रतं गृहीतवान् । तत्प्रस्तावे मनुष्यगन्धमाघ्राय मुनिभक्षणार्थं स व्याघ्रोऽपि तत्रायातः । सूकरश्च तयो रक्षानिमित्तं गुहाद्वारे स्थितः । तत्रापि तौ परस्परं युद्धा मृतौ । सूकरो मुनिरक्षणाभिप्रायेण शुभाभिसन्धित्वात् मृत्वा सौधर्मे महद्रधिको देवो जातः । व्याघ्रस्तु मुनिभक्षणाभिप्रायेणातिरौद्राभिप्रायत्वान्मृत्वा नरकं गतः । वसतिदानस्य फलम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

श्रीषेण राजा आहारदान में, वृषभसेना औषधदान में, कौण्डेश उपकरणदान में और शूकर आवासदान में दृष्टान्त हैं, ऐसा जानना चाहिए ।

आहारदान में श्रीषेण राजा का दृष्टान्त है । इसकी कथा इस प्रकार है --

श्रीषेण राजा की कथा

यहाँ कथाएँ टाइप करनी हैं ।

+ दानों में प्रसिद्ध नाम -

## देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम् कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥११९॥

**अन्वयार्थ :** [आदृतः] श्रावक को आदर से युक्त होकर [नित्यम्] प्रतिदिन [देवाधिदेवचरणे] अरहन्त भगवान् के चरणों में [कामदुहि] मनोरथों को पूर्ण करने वाली और [कामदाहिनि] काम को भस्म करने वाली [सर्वदुःखनिर्हरणम्] समस्त दुःखों को दूर करने वाली [परिचरणं] पूजा [परिचिनुयात्] अवश्य करनी चाहिए ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

यथा वैयावृत्यं विदधता चतुर्विधं दानं दातव्यं तथा पूजादिविधानमपि कर्तव्यमित्याह --

आदृतः आदरयुक्तः नित्यं परिचिनुयात् पुष्टं कुर्यात् । किम् ? परिचरणं पूजाम् । किंविशिष्टम् ? सर्वदुःखनिर्हरणं निःशेषदुःखविनाशकम् । क्व ? देवाधिदेवचरणे देवानामिन्द्रादीनामधिको वन्द्यो देवो देवाधिदेवस्तस्य चरणः पादः तस्मिन् । कथम्भूते ? कामदुहि वाञ्छितप्रदे । तथा कामदाहिनि कामविध्वंसके ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

इन्द्रादिक देवों के द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान् देवाधिदेव कहलाते हैं । उनके चरणकमल वाञ्छित फल देने वाले हैं और कामदेव को विध्वंस करने वाले हैं । इसलिए गृहस्थों को चाहिए कि वे आदरपूर्वक प्रतिदिन अरहन्तदेव की पूजा करें, क्योंकि उनकी पूजा समस्त दुःखों का नाश करने वाली है ।

+ पूजा का माहात्म्य -

## अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत् भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥१२०॥

**अन्वयार्थ :** [राजगृहे] राजगृही में [भेकः] मेढ़क [प्रमोदमत्तः] प्रमोद से हिंसित हुआ [कुसुमेनैकेन] एक पुष्प के द्वारा [महात्मनाम्] भव्य जीवों के आगे [अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं] अर्हत पूजा के माहात्म्य को [अवदत्] प्रकट किया था ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

पूजामाहात्म्यं किं क्वापि केन प्रकटितमित्याशङ्क्याह --

भेको मण्डूकः । प्रमोदमत्तो विशिष्टधर्मानुरागेण हृष्टः । अवदत् कथितवान् । किमित्याह -- अर्हदित्यादि । अर्हतश्चरणौ अर्हच्चरणौ तयोः सपर्या पूजा तस्याः महानुभावं विशिष्टं माहात्म्यम् । केषामवदत्? महात्मनां भव्यजीवानाम् । केन कृत्वा ? कुसुमेनैकेन । क्व ? राजगृहे ।

अस्य कथा

मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिकः, श्रेष्ठी नागदत्तः, श्रेष्ठिनी भवदत्ता । स नागदत्तः श्रेष्ठी सर्वदा मायायुक्तत्वान्मृत्वा निजप्राङ्गणवाप्यां भेको जातः । तत्र चागतामेकदा भवदत्ताश्रेष्ठिनीमालोक्य जातिस्मरो भूत्वा तस्याः समीपे आगत्य उपर्युत्प्लुत्य चटितः । तया च पुनः पुनर्निर्घाटितो रटति, पुनरागत्य चटति च । ततस्तया कोऽप्ययं मदीयो इष्टो भविष्यतीति सम्प्रधार्यावधिज्ञानी सुव्रतमुनिः पृष्टः । तेन च तद्वृत्तान्ते कथिते गृहे नीत्वा परमगौरवेणासौ धृतः । श्रेणिकमहाराजश्चैकदा वर्धमानस्वामिनं वैभारपर्वते समागतमाकण्य आनन्दभेरीं दापयित्वा महता विभवेन तं वन्दितुं गतः । श्रेष्ठिन्यादौ च गृहजने वन्दनाभक्त्यर्थं गते स भेकः प्राङ्गणवापीकमलं पूजानिमित्तं गृहीत्वा गच्छन् हस्तिनः पादेन चूर्णयित्वा मृतः ।

पूजानुरागवशेनोपार्जितपुण्यप्रभावात् सौधर्मे महद्भक्तदेवो जातः । अवधिज्ञानेन पूर्वभववृत्तान्तं ज्ञात्वा निजमुकुटाग्रे भेकचिह्नं कृत्वा समागत्य वर्धमानस्वामिनं वन्दमानः श्रेणिकेन दृष्टः । ततस्तेन गौतमस्वामी भेकचिह्नेऽस्य किं कारणमिति पृष्ठः तेन च पूर्ववृत्तान्तः कथितः । तच्छ्रुत्वा सर्वे जनाः पूजातिशयविधाने उद्यताः सञ्जाता इति ॥

### आर्यिका-आदिमति :

विशिष्ट धर्मानुराग से हर्षित मेंढक ने राजगृही नगरी में भव्य जीवों को यह बतलाया कि एक फूल से अर्हन्त भगवन्त के चरणों की पूजा करने वालों को क्या फल होता है । इसकी कथा इस प्रकार है --

मेंढक की कथा

यहाँ कथा टाइप करनी है।

### + वैयावृत्य के अतिचार -

## हरितपिधाननिधाने, ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि वैयावृत्यस्यैते, व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥१२१॥

**अन्वयार्थ :** निश्चय से [हरितपिधाननिधाने] देने योग्य वस्तु को हरितपत्र आदि से ढकना तथा हरितपत्र आदि पर देने योग्य वस्तु को रखना, अनादर, अस्मरण और [मत्सरत्वानि] इर्ष्या ये पाँच वैयावृत्य के [व्यतिक्रमाः] अतिचार [कथ्यन्ते] कहे जाते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

इदानीमुक्तप्रकारस्य वैयावृत्यस्यातीचाराना --

पञ्चैते आर्यापूर्वार्धकथिता । वैयावृत्यस्य व्यतिक्रमाः कथ्यन्ते । तथाहि । हरितपिधाननिधाने हरितेन पद्मपत्रादिना पिधानं झम्पनमाहारस्य । तथा हरिते तस्मिन् निधानं स्थापनम् । तस्य अनादरः प्रयच्छतोऽप्यादराभावः । अस्मरणमाहारादिदानमेतस्यां वेलावेवंविधपात्राय दातव्यमिति आहार्यवस्तुष्विदं दत्तमदत्तमिति वा स्मृतेरभावः । मत्सरत्वमन्यदातृदानगुणासहिष्णुत्वमिति ॥

इति प्रभाचन्द्रविरचितायां समन्तभद्रस्वामिविरचितोपासकाध्ययनटीकायां चतुर्थः परिच्छेदः ।

### आर्यिका-आदिमति :

वैयावृत्य शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार कहते हैं, तद्यथा -- हरे कमल पत्र आदि से आहार को ढकना 'हरितपिधान' नाम का अतिचार है । हरे कमल पत्र आदि पर आहार को रखना 'हरितनिधान' नाम का अतिचार है। देते हुए भी आदर भाव नहीं होना 'अनादर' नाम का अतिचार है । आहारदान इस समय ऐसे पात्र के लिये देना चाहिए अथवा आहार में यह वस्तु दी है कि नहीं दी है, इस प्रकार की स्मृति का अभाव होना 'अस्मरण' नाम का अतिचार है । अन्य दाता के दान तथा गुणों को सहन नहीं करना 'मात्सर्य' कहलाता है । इस प्रकार वैयावृत्य के ये पाँच अतिचार कहे गये हैं ।

इस प्रकार समन्तभद्रस्वामी द्वारा रचित उपासकाध्ययन की प्रभाचन्द्रविरचित टीका में चतुर्थ परिच्छेद पूर्ण हुआ ।

# सल्लेखना-अधिकार

### + सल्लेखना का लक्षण -

# उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतिकारे धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥१२२॥

**अन्वयार्थ :** [आर्याः] गणधरादिक देव [निःप्रतीकारे] प्रतिकार रहित [उपसर्गे] उपसर्ग, [दुर्भिक्षे] दुष्काल, [जरसि] बुढ़ापा [च] और [रुजायां] रोग के उपस्थित होने पर [धर्माय] धर्म के लिए [तनुविमोचनं] शरीर के छोड़ने को [सल्लेखना] सल्लेखना [आहुः] कहते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अथ सागोरणाणुव्रतादिवत् सल्लेखनाप्यनुष्ठातव्या । सा च किं स्वरूपा कदा चानुष्ठातव्येत्याह-

आर्या गणधरदेवादयः सल्लेखनामाहुः । किं तत् ? तनुविमोचनं शरीरत्यागः । कस्मिन् सति ? उपसर्गे तिर्यङ्गनुष्यदेवाचेतनकृते । निःप्रतीकारे प्रतीकारागोचरे । एतच्च विशेषणं दुर्भिक्षजरारुजानां प्रत्येकं सम्बन्धनीयम् । किमर्थं तद्विमोचनम् ? धर्माय रत्नत्रयाराधनार्थं न पुनः परस्य ब्रह्महत्याद्यर्थम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

उपद्रव को उपसर्ग कहते हैं । वह तिर्यच, मनुष्य, देव और अचेतनकृत इस प्रकार चार प्रकार का है । जब अन्न की एकदम कमी हो जाती है, सभी जीव-जन्तु भूख से पीड़ित होने लगते हैं, वह दुर्भिक्ष-अकाल कहलाता है । वृद्धावस्था के कारण शरीर अत्यन्त जीर्ण हो जाता है, उसे जरा कहते हैं । रोग की उद्भूति को रुजा कहते हैं । ये चारों इस रूप में उपस्थित हो जायें कि जिनका प्रतिकार नहीं हो सके, तब रत्नत्रयधर्म की आराधना करने के लिए शरीर छोड़ने को सल्लेखना कहते हैं । किन्तु स्व और पर के प्राणघात के लिए जो शरीर का त्याग किया जाता है, वह सल्लेखना नहीं है ।

+ सल्लेखना की आवश्यकता -

## अन्तःक्रियाधिकरणं, तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥१२३॥

**अन्वयार्थ :** [सकलदर्शिनः] सर्वज्ञदेव [अन्तः क्रियाधिकरणं] अन्त समय समाधिमरणस्वरूप सल्लेखना को [तपः फलं] तप का फल [स्तुवते] कहते हैं [तस्मात्] इसलिए [यावद्विभवं] यथाशक्ति [समाधिमरणे] समाधिमरण के विषय में [प्रयतितव्यम्] प्रयत्न करना चाहिए ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

सल्लेखनायां भव्यैर्नियमेन प्रयत्नः कर्तव्यः, यत :-

सकलदर्शिनः स्तुवते प्रशसन्ति । किं तत् ? तपःफलं तपसः फलं तपःफलं सफलं तप इत्यर्थः । कथम्भूतं सत् ? अन्तःक्रियाधिकरणं अन्ते क्रियां संन्यासः तस्या अधिकरणं समाश्रयो यत्तपस्तत्फलम् । यत एवं, तस्माद्यावद्विभवं यथाशक्ति । समाधिमरणे प्रयतितव्यं प्रकृष्टो यत्नः कर्तव्यः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

अन्तिम समय में यानी जीवन के अन्त में संन्यास धारण करना ही तप का फल है, तप की सफलता है, ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं । अथवा सर्वदर्शी उसी तप के फल की प्रशंसा करते हैं, जो अन्त समय संन्यास का आश्रय लेता है । अतः समाधिमरण के लिए पूर्णरूप से प्रयत्न करना चाहिए ।

+ सल्लेखना की विधि और महाव्रत धारण का उपदेश -

## स्नेहं वैरं सङ्गं, परिग्रहं चापहाय-शुद्धमनाः स्वजनं परिजनमपि च, क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥ आलोच्य सर्वमेनः, कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम् आरोपयेन्महाव्रत-मामरणस्थायि निःशेषम् ॥१२५॥



**अन्वयार्थ :** सल्लेखनाधारी [स्नेहं] राग को [वैरं] बैर को [सङ्गं] ममत्वभाव को [च] और [परिग्रहं] परिग्रह को [अपहाय] छोड़कर [शुद्धमनाः सन्] स्वच्छ हृदय होता हुआ [प्रियैः वचनैः] मधुर वचनों से [स्वजनं] अपने कुटुम्बी जन तथा [परिजनमपि] परिकर के लोगों को [क्षान्त्वा] क्षमा कराकर [क्षमयेत्] स्वयं क्षमा करे । सल्लेखनाधारी [कृतकारितम्] कृत, कारित [च] और [अनुमतं] अनुमोदित [सर्वम्] समस्त [एनः] पापों को [निर्व्याजम्] छल कपट रहित या आलोचना के दोषों से रहित [आलोच्य] आलोचना करके [आमरणस्थायि] जीवनपर्यन्त रहने वाले [निःशेषम्] समस्त/पाँचों [महाव्रतम्] महाव्रतों को [आरोपयेत्] धारण करे ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तत्र यत्नं कुर्वाण एवं कृत्वेदं कुर्यादित्याह -

स्वयं क्षान्त्वा । प्रियैर्वचनैः स्वजनं परिजनमपि क्षमयेत् । किं कृत्वा ? अपहाय त्यक्त्वा । कम् ? स्नेहमुपकारके वस्तुनि प्रीत्यनुबन्धम् । वैरमनुपकारकं द्वेषानुबन्धम् । सङ्गं पुत्रस्त्र्यादिकम् । ममेदमहमस्येत्यादिसम्बन्धं परिग्रहं बाह्याभ्यन्तरम् । एतत्सर्वमपहाय शुद्धमना निर्मलचित्तः सन् क्षमयेत् । तथा आरोपयेत् स्थापयेदात्मनि । किं तत् ? महाव्रतं कथम्भूतम् । आमरणस्थायिमरणपर्यन्तं निःशेषं च पञ्चप्रकारमपि । किं कृत्वा ? आलोच्य । किं तत् ? एनो दोषम् । किं तत् ? सर्व कृतकारितानुमतं च । स्वयं हि कृतं हिंसादिदोषं, कारितं हेतुभावेन, अनुमतमन्येन क्रियमाणं मनसा शङ्काधितम् । एतत्सर्वमेनो निर्व्याजं दशालोचनादोषवर्जितं यथा भवत्येवमालोचयेत् । दश हि आलोचनादोषा भवन्ति । तदुक्तम् -  
आकम्पिय अणुमाणिय जं दिं बादरं च सुहमं च  
छत्रं सद्भाउलयं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी ॥ इति

**आर्थिका-आदिमति :**

उपकारक वस्तु में जो प्रीति उत्पन्न होती है, उसे स्नेह कहते हैं । अनुपकारक वस्तु में जो द्वेष के भाव होते हैं, उसे वैर कहते हैं । पुत्र, स्त्री आदि मेरे हैं और मैं उनका हूँ, इस प्रकार 'ममेदं' भाव को संग-परिग्रह कहते हैं । वह दो प्रकार का है- बाह्यपरिग्रह और आभ्यन्तरपरिग्रह । सल्लेखना धारण करने वाला पुरुष इन सब परिग्रहों को छोड़कर निर्मलचित्त होता हुआ स्वजन और परिजनों को प्रिय वचनों के द्वारा क्षमा करे और उनसे अपने आपको क्षमा करावे । जो हिंसादि पाप स्वयं किया जाता है, वह कृत है । जो दूसरों के द्वारा कराया जाता है, उसे कारित कहते हैं तथा दूसरे के द्वारा किये हुए पाप को जो मन से अच्छा समझा जाता है, उसे अनुमत कहते हैं । इन सभी पापों की निश्चल भाव से आलोचना कर मरणपर्यन्त स्थिर रहने वाले अहिंसादि महाव्रतों को धारण करें तथा आलोचना के दस दोषों से रहित होकर आलोचना करे । आलोचना के दस दोष इस प्रकार हैं- १. आकम्पित, २. अनुमानित, ३. दृष्ट, ४. बादर, ५. सूक्ष्म, ६. छत्र, ७. शब्दाकुलित, ८. बहुजन, ९. अव्यक्त और १०. तस्सेवी ।

+ स्वाध्याय का उपदेश -

**शोकं भयमवसादं, क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा  
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च, मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥**

**अन्वयार्थ :** [शोकं] शोक, [भयं] डर, [अवसादं] विषाद, [क्लेदं] स्नेह, [कालुष्यम्] रागद्वेष और [अरतिम्] अप्रीति को [अपि] भी [हित्वा] छोड़कर [च] और [सत्त्वोत्साहम्] बल और उत्साह को [उदीर्य] प्रकट करके [अमृतैः] अमृत के समान [श्रुतैः] शास्त्रों से [मनः] मन को [प्रसाद्यम्] प्रसन्न करना चाहिये ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एवंविधमालोचनां कृत्वा महाव्रतमारोप्यैतत् कुर्यादित्याह-

प्रसाद्यं प्रसन्नं कार्यम् । किं तत् ? मनः । कैः ? श्रुतैरागमवाक्यैः । कथम्भूतैः ? अमृतैः अमृतोपमैः संसारदुःखसन्तापापनोदकैरित्यर्थः । किं कृत्वा ? हित्वा । किं तदित्याह- शोकमित्यादि । शोकम्- इष्टवियोगे तद्गुणशोचनं, भयं- क्षुत्पिपासादिपीडानिमित्तमिहलोकादिभयं वा, अवसादं विषादं खेदं वा, क्लेदं स्नेहं, कालुष्यं क्वचिद्विषये रागद्वेषपरिणतिम् । न केवलं प्रागुक्तमेव अपि तु अरतिमपि अप्रसत्तिमपि । न केवलमेतदेव कृत्वा किन्तु उदीर्य च प्रकाशय च । कम् ? सत्त्वोत्साहं सल्लेखनाकरणेऽकातरत्वम् ॥

**आर्थिका-आदिमति :**

इष्ट का वियोग होने पर उसके गुणों का बार-बार चिन्तन करना शोक कहलाता है । क्षुधा-तृषा आदि की पीड़ा के निमित्त से जो डर लगता है, वह भय कहलाता है अथवा इहलोकभय, परलोकभय (व्याधि, मरण, असंयम, अरक्षण, आकस्मिक) आदि के भेद से भय सात प्रकार का है । विषाद अथवा खेद को अवसाद कहते हैं । स्नेह को क्लेद कहते हैं । किसी के विषय में राग-द्वेष की जो परिणति होती है, उसे कालुष्य कहते हैं । अप्रसन्नता को अरति कहते हैं । सल्लेखना करने में जो कायरता का अभाव है, उसे सत्त्वोत्साह कहते हैं । सल्लेखना करने वाला इन शोकादि को छोड़कर शास्त्ररूपी अमृत के द्वारा मन को प्रसन्न करे । यहाँ पर संसार के दुःखों से उत्पन्न हुए सन्ताप को दूर करने के लिए शास्त्र को अमृत कहा गया है । अतः सल्लेखना धारण करने वाला मनुष्य अपने मन को शास्त्र के पठन-श्रवण में लगावे ।

+ भोजन के त्याग का क्रम -

## आहारं परिहाप्य, क्रमशः स्निग्धं-विवर्द्धयेत्पानम् स्निग्धं च हापयित्वा, खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥

**अन्वयार्थ :** सल्लेखनाधारी को [क्रमशः] क्रम से [आहारं] अन्न के भोजन को [परिहाप्य] छोड़कर [स्निग्धं पानम्] दूध आदि स्निग्ध पेय को [विवर्द्धयेत्] बढ़ाना चाहिए [च] पश्चात् [स्निग्धं] दूध आदि स्निग्ध पेय को [हापयित्वा] छोड़कर [खरपानं] गर्म जल को [पूरयेत्] बढ़ाना चाहिए ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानीं सल्लेखनां कुर्वाणस्याहारत्यागे क्रमं दर्शयन्नाह-

स्निग्धं दुग्धादिरूपं पानम् । विवर्द्धयेत् परिपूर्णं दापयेत् । किं कृत्वा ? परिहाप्य परित्याज्य । कम् ? आहारं कवलाहाररूपम् । कथम् ? क्रमशः प्रागशनादिक्रमेण पश्चात् खरपानं कंजिकादि, शुद्धपानीयरूपं वा । किं कृत्वा ? हापयित्वा । किम् ? स्निग्धं च स्निग्धमपि पानकम् । कथम् ? क्रमशः । स्निग्धं हि परिहाप्य कंजिकादिरूपं खरपानं पूरयेत् विवर्द्धयेत् । पश्चात्तदपि परिहाप्य शुद्धपानीयरूपं खरपानं पूरयेदिति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

सल्लेखना को ग्रहण करने वाला आहारादि को इस क्रम से छोड़े- पहले कवलाहाररूप दाल-भात, रोटी आदि आहार को छोड़े और दूध आदि स्निग्धरूप पेय पदार्थों को ग्रहण करे । पश्चात् उसे भी छोड़कर खरपान-चिकनाई से रहित पेय पदार्थों कांजी, छाछ आदि को ग्रहण करे । फिर उसे भी छोड़कर केवल गर्म जल ग्रहण करे ।

## खरपानहापनामपि, कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्व-यत्नेन ॥१२८॥

**अन्वयार्थ :** [खरपानहापनामपि] गर्म जल का भी त्याग [कृत्वा] करके [शक्त्या] शक्ति के अनुसार [उपवासमपि] उपवास भी [कृत्वा] करके [सर्वयत्नेन] पूर्ण तत्परता से [पञ्चनमस्कारमनाः] पञ्चनमस्कार मंत्र में मन लगाता हुआ [तनुं] शरीर को [त्यजेत्] छोड़े ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

खरपानहापनामपि कृत्वा । कथम् ? शक्त्या स्वशक्तिमनतिक्रमेण स्तोकस्तोकतरादिरूपम् । पश्चादुपवासं कृत्वा तनुमपि त्यजेत् । कथम् ? सर्वयत्नेन सर्वस्मिन् व्रतसंयमचारित्रध्यानधारणादौ यत्नस्तात्पर्यं तेन । किंविशिष्टः सन् ? पञ्चनमस्कारमनाः पञ्चनमस्काराहितचित्तः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

तत्पश्चात् उस गर्म जल का भी त्यागकर अपनी शक्ति का अतिक्रमण नहीं करके कुछ उपवास भी करे । और अन्त में यत्नपूर्वक व्रत-संयम-चारित्र, ध्यान-धारणादि सभी कार्यों में तत्पर रहते हुए पञ्चनमस्कार मंत्र में अपने चित्त को लगाते हुए शरीर को भी छोड़ देवे ।

+ सल्लेखना के पांच अतिचार -

# जीवितमरणाशंसे, भयमित्र-स्मृतिनिदाननामानः सल्लेखनातिचाराः, पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥१२९॥

**अन्वयार्थ :** [जीवितमरणाशंसे] जीवितशंसा, मरणाशंसा [भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः] भय, मित्रस्मृति और निदान नाम से युक्त [पञ्च] पाँच [सल्लेखनातिचाराः] सल्लेखना के अतिचार [जिनेन्द्रैः] जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा [समादिष्टाः] कहे गये हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अधुना सल्लेखनाया अतिचारानाह -

जीवितं च मरणं च तयोराशंसे आकाङ्क्षे । भयमिहपरलोकभयम् । इहलोकभयं हि क्षुत्पिपासापीडादिविषयं परलोकभयं- एवंविधदुर्धरानुष्ठानाद्विशिष्टं फलं परलोके भविष्यति न वेति । मित्रस्मृतिः बाल्याद्यवस्थायां सहक्रीडितमित्रानुस्मरणम् । निदानं भाविभोगाद्याकाङ्क्षणम् । एतानि पञ्चनामानि येषां ते तन्नामानः सल्लेखनायाः पञ्चातिचाराः । जिनेन्द्रैस्तीर्थङ्करैः । समादिष्टा आगमे प्रतिपादिताः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

अब सल्लेखना के अतिचार कहते हैं- सल्लेखना धारण कर ऐसी इच्छा करना कि मैं कुछ समय के लिए और जीवित रहूँ, तो अच्छा है । यह जीविताशंसा नाम का अतिचार है । भूख, प्यास की वेदना होने पर ऐसी इच्छा होना कि मैं जल्दी मर जाऊँ तो अच्छा है, यह मरणाशंसा नाम का अतिचार है । इहलोकभय और परलोकभय की अपेक्षा भय दो प्रकार का है । 'मैंने सल्लेखना धारण तो की है, किन्तु अधिक समय तक मुझे भूख-प्यास की वेदना सहन नहीं करनी पड़े' इस प्रकार का भय होना इहलोकभय कहलाता है । तथा 'इस प्रकार के दुर्धर अनुष्ठान का परलोक में विशिष्ट फल प्राप्त होगा कि नहीं' ऐसा भय उत्पन्न होना परलोकभय है । बाल्यादि अवस्था में मित्रों के साथ जो क्रीड़ा की थी, उन मित्रों का स्मरण करना मित्रस्मृति नामक अतिचार है और आगामी भोगों की आकांक्षा रखना निदान नामक अतिचार है । इस प्रकार जिनेन्द्रदेव ने सल्लेखना के पाँच अतिचार आगम में प्रतिपादित किये हैं ।

+ सल्लेखना का फल -

**निःश्रेयसमभ्युदयं, निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्  
निः पिबति पीतधर्मा, सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥१३०॥**

**अन्वयार्थ :** [पीतधर्मा] धर्मरूपी अमृत का पान करने वाला कोई क्षपक [सर्वैः] समस्त [दुःखैः] दुःखों से [अनालीढः] रहित होता हुआ [निस्तीरं] अन्त रहित तथा [सुखाम्बुनिधिम्] सुख के समुद्र स्वरूप [निःश्रेयसम्] मोक्ष का [निःपिबति] अनुभव करता है और कोई क्षपक [दुस्तरं] बहुत समय में समाप्त होने वाले [अभ्युदयं] अहमिन्द्र आदि की सुख परम्परा का अनुभव करता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एवंविधैरतिचारै रहितां सल्लेखनाम् अनुतिष्ठन् कीदृशं फलं प्राप्नोत्याह-

निष्पिबति आस्वादयति अनुभवति वा कश्चित् सल्लेखनानुष्ठाता । किं तत् ? निःश्रेयसं निर्वाणम् । किंविशिष्टम् ? सुखाम्बुनिधिं सुखसमुद्रस्वरूपम् । तर्हि सपर्यन्तं तद्भविष्यतीत्याह- निस्तीरं तीरात्पर्यन्तान्निष्क्रान्तम् । कश्चित्पुनस्तदनुष्ठाता अभ्युदयमहमिन्द्रादिसुखपरम्परा निष्पिबति । कथम्भूतम् ? दुस्तरं महता कालेन प्राप्यपर्यन्तम् । किंविशिष्टः सन् ? सर्वैर्दुःखैरनालीढः सर्वैः शारीरमानसादिभिर्दुःखैरनालीढोऽसंस्पृष्टः । कीदृशः सन्नेतद्वयं निष्पिबति ? पीतधर्मा पीतोऽनुष्ठितो धर्म उत्तमक्षमादिरूपः चारित्रस्वपो वा येन ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

सल्लेखना धारण करने का फल मोक्ष और स्वर्गादिक के सुखों की प्राप्ति है । निःश्रेयस-निर्वाण को कहते हैं । वह सुख के समुद्ररूप है । निःश्रेयस- मोक्ष निस्तीर है अर्थात् आत्मोत्थसुख अन्त से रहित है । अहमिन्द्रादिक के पद को अभ्युदय कहते हैं । यह दुस्तर है अर्थात् सागरों पर्यन्त काल तक अहमिन्द्रादिक के सुखों का पान करते हैं । और शारीरिक, मानसिक आदि सभी दुःखों से अछूते रहते हैं, इस प्रकार दोनों ही पद सुख के समुद्ररूप हैं । सल्लेखना लेने वाला दोनों फलों को प्राप्त करता हुआ पीतधर्मा होता है अर्थात् वह उत्तमक्षमादिरूप अथवा चारित्ररूप धर्म का पान करने वाला होता है ।

+ मोक्ष का लक्षण -

## जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् निर्वाणं शुद्धसुखं, निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥१३१॥

**अन्वयार्थ :** [जन्मजरामयमरणैः] जन्म, बुढ़ापा, रोग, मरण, [शोकैः] शोक, [दुःखैः] दुःख [च] और [भयैः] भयों से [परिमुक्तम्] रहित [शुद्धसुखं] शुद्ध सुख से सहित [नित्यम्] नित्य-अविनाशी [निर्वाणं] निर्वाण [निःश्रेयसम्] निःश्रेयस [इष्यते] माना जाता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

किं पुनर्निःश्रेयसशब्देनोच्यत इत्याह-

निःश्रेयसमिष्यते । किम् ? निर्वाणम् । कथम्भूतं शुद्धसुखं शुद्धं प्रतिद्वन्द्वरहितं सुखं यत्र । तथा नित्यम् अविनश्वरस्वरूपम् । तथा परिमुक्तं रहितम् । कैः ? जन्मजरामयमरणैः, जन्म च पर्यायान्तरप्रादुर्भावः, जरा च वाद्बधक्यम्, आमयाश्च रोगाः, मरणं च शरीरादिप्रच्युतिः । तथा शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

निर्वाण / मोक्ष को निःश्रेयस कहते हैं । वहाँ पर शुद्ध सुख प्राप्त होता है, क्योंकि प्रतिपक्षी कर्मों का अभाव है । वह सुख नित्य अविनश्वर स्वरूप है तथा जन्म, बुढ़ापा, रोग और मरण से, शोक—दुःख भयों से सर्वथा रहित है । एक पर्याय से दूसरी पर्याय की प्राप्ति को जन्म कहते हैं । बुढ़ापा को जरा कहते हैं । रोग को आमय कहते हैं । शरीर का छूटना मरण कहा जाता है । शोक, दुःख, भय का अर्थ स्पष्ट ही है ।

+ मुक्तजीवों का लक्षण -

## विद्यादर्शन-शक्ति-स्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः निरतिशया निरवधयो, निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥१३२॥

**अन्वयार्थ :** [विद्यादर्शनशक्ति] केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य [स्वास्थ्यप्रह्लाद] परम उदासीनता, अनंतसुख [तृप्तिशुद्धियुजः] तृप्ति और शुद्धि को प्राप्त [निरतिशयाः] हिनाधिकता रहित और [निरवधयः] अवधि से रहित जीव [सुखम्] सुखस्वरूप [निःश्रेयसम्] मोक्षरूप निःश्रेयस में [आवसन्ति] निवास करते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इत्थम्भूते च निःश्रेयसे कीदृशाः पुरुषाः तिष्ठन्तीत्याह-

निःश्रेयसमावसन्ति निःश्रेयसे तिष्ठन्ति । के ते इत्याह- विद्येत्यादि । विद्या केवलज्ञानं, दर्शनं केवलदर्शनं, शक्तिरनन्तवीर्यं, स्वास्थ्यं परमोदासीनता, प्रह्लादोऽनन्तसौख्यं, तृप्तिर्विषयानाकाङ्क्षा, शुद्धिर्द्रव्यभावस्वरूपकर्ममलरहितता, एता युञ्जन्ति आत्मसम्बद्धाः कुर्वन्ति ये ते तथोक्ताः । तथा निरतिशया अतिशयाद्विद्यादिगुणहीनाधिकभावान्निष्क्रान्ताः । तथा निरवधयो नियतकालावधिरहिताः । इत्थम्भूता ये ते निःश्रेयसमावसन्ति । सुखं सुखरूपं निःश्रेयसम् । अथवा सुखं यथा भवत्येवं ते तत्रावसन्ति ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

निःश्रेयस—मोक्ष में वे जीव रहते हैं, जो विद्या—केवलज्ञान, दर्शन—केवलदर्शन, शक्ति—अनन्तवीर्य, स्वास्थ्य—परम उदसीनता, प्रह्लाद—अनन्तसुख, तृप्ति—विषयों की आकाङ्क्षा का अभाव, शुद्धि—द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहितपना, इन सभी से युक्त हैं । निरतिशय—विद्या आदि गुणों की हीनाधिकता से रहित हैं और निरवधि—काल की अवधि से रहित हैं । जो इन सब विशेषणों से युक्त हैं, वे जीव निःश्रेयस में सुख से निवास करते हैं ।

+ विकार का अभाव -

## काले कल्पशतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या उत्पातोऽपि यदि स्यात्, त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥

**अन्वयार्थ :** [कल्पशते काले] सैंकड़ो कल्पकालों के काल के [गते] बीतने पर [अपि] भी [यदि] अगर [त्रिलोकसम्भ्रान्ति करणपटुः] तीनों लोकों में खलबली पैदा करने वाला [उत्पातः] उपद्रव [अपि] भी [स्यात्] हो [तथापि] तो भी [पि च शिवानां] सिद्धों में [विक्रिया] विकार [न लक्ष्या] दृष्टिगोचर नहीं होता ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अनन्ते काले गच्छति कदाचित् सिद्धानां विद्याद्यन्यथाभावो भविष्यत्यतः कथं निरतिशया निरवधयश्चेत्याशङ्कयामाह -

न लक्ष्या न प्रमाणपरिच्छेद्या । कासौ ? विक्रिया विकारः स्वरूपान्यथाभावः । केषाम् ? शिवानां सिद्धानाम् । कदा ? कल्पशतेऽपि गते काले । तर्हि उत्पातवशात्तेषां विक्रिया स्यादित्याह- उत्पातोऽपि यदि स्यात् तथापि न तेषां विक्रिया लक्ष्या । कथाम्भूतः उत्पातः ? त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः त्रिलोकस्य सम्भ्रान्तिरावन्तस्तत्करणे पटुः समर्थः ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है । ऐसे सैंकड़ों कल्पकालों के बीत जाने पर भी सिद्धजीवों में कोई विकार लक्षित नहीं होता । तथा तीनों लोकों में क्षोभ उत्पन्न करने में समर्थ ऐसा भी उत्पात यदि हो जावे, तो भी सिद्धों में कोई विकार नहीं होता, इस प्रकार की सिद्धजीवों की अवस्था होती है ।

+ मुक्तजीव कहाँ रहते हैं ? -

**निःश्रेयसमधिपन्ना-स्तैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते  
निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकरभासुरात्मानः ॥१३४॥**

**अन्वयार्थ :** [निष्किट्टिकालिकात्] कीट और कालिमा से रहित [छविचामीकर] कान्तिवाले सुवर्ण के समान [भासुरात्मानः] जिसका स्वरूप प्रकाशवान हो रहा है ऐसे [निःश्रेयसमधिपन्नाः] मोक्ष को प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी [त्रैलोक्य] तीन लोक के [शिखामणिश्रियं] अग्रभाग पर चूड़ामणि की शोभा को [दधते] धारण करते हैं ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

ते तत्राविकृतात्मानः सदा स्थिताः किं कुर्वन्तीत्याह-

निःश्रेयसमधिपन्नाः प्राप्तास्ते दधते धरन्ति । काम् ? त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं त्रैलोक्यस्य शिखा चूडाऽप्रभागस्तत्र मणिश्रीः चूडामणिश्रीः ताम् । किंविशिष्टाः सन्त इत्याह- निष्किट्टेत्यादि । किट्टं च कालिका च ताभ्यां निष्क्रान्ता सा छविर्यस्य तच्चाामीकरं च सुवर्णं तस्येव भासुरो निर्मलतया प्रकाशमान आत्मा स्वरूपं येषाम् ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जिस प्रकार कीट-कालिमा से रहित होकर सुवर्ण कान्ति को धारण करता हुआ अतिशय दीप्तिमान होता है, उसी प्रकार द्रव्यकर्म-भावकर्मरूपी कालिमा का अभाव हो जाने से यह आत्मा पूर्णरूप से निर्मल होता हुआ प्रकाशमान रहता है । ऐसे सिद्ध परमेष्ठी लोक के शिखर पर चूड़ामणि की शोभा को धारण करते हैं ।

+ सद्धर्म का फल -

**पूजार्थज्ञैश्वर्यैः, बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः  
अतिशयितभुवनमद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥**

**अन्वयार्थ :** [सद्धर्मः] सल्लेखना के द्वारा समुपार्जित समीचीन धर्म [बलपरिजनकामभोग भूयिष्ठैः] बल, परिवार तथा काम और भोगों से परिपूर्ण [पूजार्थज्ञैश्वर्यैः] प्रतिष्ठा, धन और आज्ञा के ऐश्वर्य तथा [अतिशयितभुवनं] संसार को आश्चर्ययुक्त करने वाले तथा स्वयं [अद्भुतं] आश्चर्यकारी [अभ्युदयं] स्वर्गादिरूप अभ्युदय को [फलति] फलता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

एवं सल्लेखनामनुतिष्ठतां निःश्रेयसलक्षणं फलं प्रतिपाद्य अभ्युदयलक्षणं फलं प्रतिपादयन्नाह-



अभ्युदयम् इन्द्रादिपदावाप्तिलक्षणम् । फलति अभ्युदयफलं ददाति । कोऽसौ ? सद्धर्मसल्लेखनानुष्ठानोपार्जितं विशिष्टं पुण्यम् । कथम्भूतमभ्युदयम् ? अद्भुतं साश्चर्यम् । कथम्भूतं तदद्भुतम् ? अतिशयितभुवनं यतः । कैः कृत्वा ? पूजार्थज्ञैश्वर्यैः ऐश्वर्यशब्दः पूजार्थाज्ञानां प्रत्येकं सम्बध्यते । किंविशिष्टैरेतैरित्याह- बलेत्यादि । बलं सामर्थ्यं परिजनः परिवारः कामभोगौ प्रसिद्धौ । एतद्भूयिष्ठा अतिशयेन बहवो येषु । एतैरुपलक्षितैः पूजादिभिरतिशयितभुवनमित्यर्थः ॥

### आर्यिका-आदिमति :

सल्लेखना धारण करने से उपार्जित हुआ विशिष्ट पुण्यरूप समीचीन धर्म उस आश्चर्यकारी अभ्युदय-इन्द्रादिकरूप फल को देता है, जो बल, परिजन, काम तथा भोगों से परिपूर्ण पूजा, अर्थ, आज्ञारूप ऐश्वर्य के द्वारा समस्त लोक को अभिभूत करता है ।

## श्रावकपद-अधिकार

+ ग्यारह प्रतिमा -

श्रावकपदानि देवै-रेकादश देशितानि येषु खलु  
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह, सन्तिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥

अन्वयार्थ : [देवैः] तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा [एकादश] ग्यारह [श्रावकपदानि] श्रावक की प्रतिमाएँ [देशितानि] कही गई हैं [येसु] जिनमें [खलु] वास्तव में [स्वगुणाः] अपनी-अपनी प्रतिमा सम्बन्धी गुण [पूर्वगुणैःसह] पूर्वपूर्व प्रतिमा सम्बन्धी गुणों के साथ [क्रमविवृद्धाः] क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए [सन्तिष्ठन्ते] स्थित होते हैं ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

साम्प्रतं योऽसौ सल्लेखनानुष्ठाता श्रावकस्तस्य कति प्रतिमा भवन्तीत्याशङ्क्याह --

देशितानि प्रतिपादितानि । कानि? श्रावकपदानि श्रावकगुणस्थानानि श्रावकप्रतिमा इत्यर्थः । कति ? एकादश । कैः ? देवैस्तीर्थङ्करैः । येषु श्रावकपदेषु खलु स्फुटं सन्तिष्ठन्तेऽवस्थितिं कुर्वन्ति । के ते ? स्वगुणाः स्वकीयगुणस्थानसम्बद्धाः गुणाः । कैः सह ? पूर्वगुणैः पूर्वगुणस्थानवर्तिगुणैः सह । कथम्भूताः ? क्रमविवृद्धाः सम्यग्दर्शनमादि कृत्वा एकादशपर्यन्तमेकोत्तरवृद्ध्या क्रमेण विशेषेण वर्धमानाः ॥

### आर्यिका-आदिमति :

श्रावक के जो पद—स्थान हैं, वे श्रावक की प्रतिमा कहलाती हैं । तीर्थङ्कर ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ कही हैं, उन प्रतिमाओं में अपनी-अपनी प्रतिमाओं से सम्बन्धित गुण पिछली प्रतिमाओं से सम्बन्ध रखकर क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए (सम्यग्दर्शन को आदि लेकर ग्यारह प्रतिमा तक) विशेषरूप से बढ़ जाते हैं । अर्थात् अगली प्रतिमाओं में स्थित पुरुष को पूर्व की प्रतिमा से सम्बन्धित गुणों का परिपालन करना अनिवार्य है ।

+ दर्शन प्रतिमा -

सम्यग्दर्शनशुद्धः, संसारशरीर-भोगनिर्विण्णः  
पञ्चगुरुचरणशरणो, दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥१३७॥

अन्वयार्थ : [सम्यग्दर्शनशुद्धः] जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, [संसारशरीर-भोगनिर्विण्णः] संसार शरीर और भोगों से विरक्त है, [पञ्चगुरुचरणशरणो] पञ्च परमेष्ठियों के चरणों की शरण जिसे प्राप्त हुई है तथा [तत्त्वपथगृह्यः] तत्त्व-पथ की ओर जो आकर्षित है, [दर्शनिकः] वह दार्शनिक श्रावक है ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

एतदेव दर्शयन्नाह --

दर्शनमस्यास्तीति दर्शनिको दर्शनिकश्रावको भवति । किंविशिष्टः? सम्यग्दर्शनशुद्धः सम्यग्दर्शनं शुद्धं निरतिचारं यस्य असंयतसम्यग्दृष्टेः । कोऽस्य विशेष इत्यत्राह- संसारशरीरभोगनिर्विण्ण इत्यनेनास्य लेशतो व्रतांशसम्भवात्ततो विशेषः प्रतिपादितः । एतदेवाह- तत्त्वपथगृह्याः तत्त्वानां व्रतानां पन्थानो मार्गा मद्यादिनिवृत्तिलक्षणा अष्टमूलगुणास्ते गृह्याः पक्षा यस्य । पञ्चगुरुचरणशरणः पञ्चगुरवः पञ्चपरमेष्ठिनस्तेषां चरणाः शरणमपायपरिरक्षणोपायो यस्य ॥

## आर्यिका-आदिमति :

'सम्यग्दर्शनं शुद्धं निरतिचारं यस्य सः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसका सम्यग्दर्शन शंकादि दोषों से रहित होने के कारण शुद्ध है, अतिचार रहित है । जो संसार, शरीर और भोगों से उदासीन है । 'तत्त्वानां व्रतानां पन्था मार्गो मद्यादिनिवृत्तिलक्षणा अष्टमूलगुणास्ते गृह्याः पक्षा यस्य' व्रतों के मार्गस्वरूप मद्यादि के त्यागरूप आठ मूलगुणों को जिसने ग्रहण किया है तथा पञ्च परमेष्ठियों के चरणों की जिसने शरण ग्रहण की है, जो दुःखों से रक्षा करने के उपायभूत हैं, ऐसा श्रद्धालु दार्शनिक श्रावक कहलाता है ।

+ व्रत प्रतिमा -

## निरतिक्रमणमणुव्रत-पञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि धारयते निःशल्यो, योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

अन्वयार्थ : [यः] जो [निःशल्यो] शल्यरहित होता हुआ [निरतिक्रमणम्] अतिचार रहित [अणुव्रत-पञ्चकम्] पाँचों अणुव्रतों को [च] और [शीलसप्तकं] सातों शीलों को [धारयते] धारण करता है, [असौ] वह [व्रतिनां] गणधर-देवादिक व्रतियों के मध्य में व्रतिक श्रावक [मतः] माना गया है ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

तस्येदानीं परिपूर्णदिशव्रतगुणसम्पन्नत्वमाह --

व्रतानि यस्य सन्तीति व्रतिको मतः । केषाम् ? व्रतिनां गणधरदेवादीनाम् । कोऽसौ ? निःशल्यो, माया-मिथ्या-निदानशल्येभ्यो निष्क्रान्तो निःशल्यः सन् योऽसौ धारयते । किं तत् ? निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि पञ्चाप्यणुव्रतानि निरतिचाराणि धारयते इत्यर्थः । न केवलमेतदेव धारयते अपि तु शीलसप्तकं चापि त्रिःप्रकारगुणव्रतचतुःप्रकारशिक्षाव्रतलक्षणं शीलम् ॥

## आर्यिका-आदिमति :

'व्रतानि यस्य सन्तीति व्रती' जिसके व्रत होते हैं, वह व्रती कहलाता है, ऐसा गणधरदेवादिकों ने कहा है । व्रती शब्द से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होकर व्रतिक शब्द बना है । माया-मिथ्या-निदान ये तीन शल्य हैं । इन तीनों शल्यों के निकलने पर ही व्रती हो सकता है, इन तीन शल्यों से रहित होता हुआ जो अतिचार रहित पाँच अणुव्रतों को धारण करता है तथा तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के भेद से सात शीलों को भी जो धारण करता है, वह व्रतिक श्रावक कहलाता है ।

+ सामायिक प्रतिमा -

## चतुरावर्तत्रितय-श्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः सामयिको द्विनिषद्य-स्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥१३९॥

अन्वयार्थ : जो [चतुरावर्तत्रितयः] चार बार तीन-तीन आवर्त करता है, [चतुःप्रणामः] चार प्रणाम करता है, [स्थितः] कायोत्सर्ग से खड़ा होता है, [यथाजातः] बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी होता है, [द्विनिषद्यः] दो बार बैठकर नमस्कार करता है, [त्रियोगशुद्धः] तीनों योगों को शुद्ध रखता है और [त्रिसन्ध्यम्] तीनों संध्याओं में [अभिवन्दी] वन्दना करता है, वह [सामयिकः] सामायिक प्रतिमाधारी है ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

अधुना सामायिकगुणसम्पन्नत्वं श्रावकस्य प्ररूपयन्नाह --

सामायिकः समयेन प्राक्प्रतिपादितप्रकारेण चरतीति सामायिकगुणोपेतः । किंविशिष्टः ? चतुरावर्तत्रितयः चतुरो वारानावर्तत्रितयं यस्य । एकैकस्य हि कायोत्सर्ग

## आर्यिका-आदिमति :

सामायिक का लक्षण पहले बता चुके हैं । उस प्रकार जो आचरण करता है, वह सामायिक गुण सहित कहलाता है । यहाँ पर सामायिक प्रतिमा का लक्षण बतलाते हुए उसकी विधि का भी निर्देश किया गया है । सामायिक करने वाला व्यक्ति एक-एक कायोत्सर्ग के बाद चार बार तीन-तीन आवर्त करता है । अर्थात् एक कायोत्सर्ग विधान में 'णमो अरहंताणं' इस आद्य सामायिक दण्डक और 'थोस्सामि हं' इस अन्तिम स्तव दण्डक के तीन-तीन आवर्त और एक-एक प्रणाम इस तरह बारह आवर्त और चार प्रणाम करता है । सामायिक करने वाला श्रावक इस क्रिया को खड़े होकर कायोत्सर्ग मुद्रा में करता है । सामायिक काल में नग्नमुद्राधारी के समान बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह की चिन्ता से परिमुक्त रहता है । देववन्दना करने वाले को प्रारम्भ में और अन्त में बैठकर प्रणाम करना चाहिए । इस विधि के अनुसार वह दो बार बैठकर प्रणाम करता है- मन-वचन-काय इन तीनों योगों को शुद्ध रखता है और सम्पूर्ण सावद्य व्यापार का त्याग करता हुआ तीनों संध्याकालों में देववन्दना करता है ।

+ प्रोषध प्रतिमा -

## पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि, मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य प्रोषधनियमविधायी, प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

अन्वयार्थ : जो [मासेमासे] प्रत्येक मास में [चतुर्षु] चारों [अपि] ही [पर्वदिनेषु] पर्व के दिनों में [स्वशक्तिम्] अपनी शक्ति को [अनिगुह्य] न छिपाकर [प्रोषधनियमविधायी] प्रोषध सम्बन्धी नियम को करता हुआ [प्रणधिपरः] एकाग्रता में तत्पर रहता है, वह [प्रोषधानशनः] प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी है ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

साम्प्रतंप्रोषधोपवासगुणंश्रावकस्यप्रतिपादयन्नाह-

प्रोषधेनानशनमुपवासोयस्यासौप्रोषधानगशनः । किमनियमेनापियः प्रोषधोपकारीसोऽपिप्रोषधानशनव्रतसम्पन्नइत्याह-  
प्रोषधनियमविधायीप्रोषधस्यनियमोऽवश्यंभावस्तंविदधातीत्येवंशीलः । क्तत्रिनियमविधायी ?  
पर्वदिनेषुचतुर्ष्वपिद्वयोश्चतुर्दश्योद्रवयोश्चाष्टम्योरिति । किंचातुर्मासस्यादौतद्विधायीत्याह - मासेमासे । किंकृत्वा ?  
स्वशक्तिमनिगुह्यतद्विधानेआत्मसामर्थ्यमप्रच्छाद्य । किंविशिष्टः ? प्रणिधिपरः एकाग्रतांगतः शुभध्यानरतइत्यर्थः ॥

## आर्यिका-आदिमति :

'प्रोषधेनानशनमुपवासो यस्यासौ प्रोषधानशनः' इस विग्रह के अनुसार धारण-पारणा के दिन एकाशन और पर्व के दिन जो उपवास करता है, वह प्रोषधनियमविधायी कहलाता है । जो बिना नियम के प्रोषध-उपवास करता है, वह भी प्रोषधव्रत सम्पन्न कहलाता है । इसके उत्तरस्वरूप कहते हैं कि प्रोषधोपवास के नियम का परिपालन करने वाला तो अवश्य ही नियमपूर्वक पर्व के दिनों में अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशी के दिनों में प्रोषधोपवास व्रत का परिपालन करता है । तो क्या चातुर्मास के प्रारम्भ से इस व्रत का पालन किया जाता है? उत्तर देते हैं कि प्रत्येक माह की दो अष्टमी और दो चतुर्दशी इस प्रकार पर्व के चारों दिनों में अपनी शक्ति को न छिपाकर उपवास करना होता है । इस प्रतिमा का धारक एकाग्रता से शुभ ध्यान में तत्पर रहता है ।

+ सचित्त त्याग प्रतिमा -

## मूलफलशाकशाखा - करीरकन्दप्रसूनबीजानि नामानि योऽत्ति सोऽयं, सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥

अन्वयार्थ : [यः] जो [दयामूर्तिः] दया की मूर्ति होता हुआ [आमानि] अपक / कच्चे मूल, फल, शाक, [शाक] डाली, [शाखा] कोपलों, करीर, कन्द, [प्रसून] फूल और बीज को [न अत्ति] नहीं खाता है, वह यह [सचित्तविरतो] सचित्त त्यागी है ।

## प्रभाचन्द्राचार्य :

इदानीं श्रावकस्य सचित्तविरतिस्वरूपं प्ररूपयन्नाह-

सोऽयं श्रावकः सचित्तविरतिगुणसम्पन्नः । योनात्तिनभक्षयति । कानीत्याह- मूलेत्यादि- मूलं च फलं च शाकश्च शाखाश्च कोपलाः करीराश्च वंशकिरणाः कन्दाश्च प्रसूनानि च पुष्पाणि बीजानि च तान्येतानि आमानी अपक्वानि योनात्ति । कथम्भूतः सन् ? दयामूर्तिः दयास्वरूपः सकरुणचित्तइत्यर्थः ॥

### आर्यिका-आदिमति :

गाजर, मूली आदि मूल कहलाते हैं । आम, अमरूद आदि फल हैं, पत्ती वाले शाक भाजी कहलाते हैं । वृक्ष की नई कोपल शाखा कहलाती है । बाँस के अंकुर को करीर कहते हैं, जमीन में रहने वाले अंगीठा आदि को कन्द कहते हैं । गोभी आदि के फूल को प्रसून कहते हैं और गेहूँ आदि को बीज कहा जाता है । ये सब अपक्व अवस्था में सचित्त सजीव रहते हैं, अतः दयामूर्ति-दया का धारक श्रावक इन्हें नहीं खाता है ।

+ रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा -

## अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्राति यो विभावयाम् स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥

अन्वयार्थः [यः] जो [सत्त्वे] जीवों पर [अनुकम्पमानमनाः] दयालुचित्त होता हुआ [विभावयाम्] रात्रि में अन्न, [पानं] पेय, खाद्य और [लेह्यम्] चाटने योग्य पदार्थ को [ण अश्राति] नहीं खाता है, [सः] वह रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी श्रावक [कथ्यते] कहलाता है ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

अधुनारात्रिभुक्तिविरतिगुणं श्रावकस्य व्याचक्षाणः प्राह-

सचश्रावको । रात्रिभुक्तिविरतोऽभिधीयते । योविभावयारात्रौ । नाश्रातिनभुक्ते । कितदित्याह - अन्नमित्यादि - अन्नं भक्तमुद्रादि, पानं द्राक्षादिपानकं, खाद्यं मोदकादि, लेह्यं रत्नादि । किंविशिष्टः ? अनुकम्पमानमनाः सकरुणहृदयः । केषु ? सत्त्वेषु प्राणिषु ॥

### आर्यिका-आदिमति :

वह श्रावक रात्रि भोजन त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है, जो अन्न, भात, दाल आदि, पान-दाख आदि का रस, खाद्य—लड्डू आदि और लेह्य-रबड़ी आदि पदार्थों को जीवों पर अनुकम्पा दया करता हुआ रात्रि में नहीं खाता है ।

+ ब्रह्मचर्य प्रतिमा -

## मलबीजं मलयोनिं, गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं पश्यन्नङ्गमनङ्गा-द्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

अन्वयार्थः [मलबीजं] शुक्र-शोणित-रूप मल से उत्पन्न, [मलयोनिं] मलिनता का कारण, [गलन्मलं] मलमूत्रादि को झराने वाले [पूतिगन्धि] दुर्गन्ध से सहित [च] और [बीभत्सं] ग्लानि को उत्पन्न करने वाले शरीर को [पश्यन्] देखता हुआ [यः] जो [अनङ्गात्] कामसेवन से [विरमति] विरत होता है, [सः] वह ब्रह्मचारी अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारक [कथ्यते] कहलाता है ।

### प्रभाचन्द्राचार्य :

साम्प्रतंब्रह्मविरतत्वगुणं श्रावकस्य दर्शयन्नाह-

अनङ्गात्कामाद्यो विरमतिव्यावर्तते स ब्रह्मचारी । किं कुर्वन् ? पश्यन् । कितत् ? अङ्गं शरीरम् । कथम्भूतमित्याह- मलेत्यादिमलं शुक्रशोणितं बीजं कारणं यस्य । मलयोनिं मलस्य मलिनतायाः अपवित्रत्वस्य योनिः कारणम् । गलन्मलं गलन्स्रवन्मलो मूत्रपुरीषस्वेदादिलक्षणेयस्मात् । पूतिगन्धिदुर्गन्धोपेतम् । बीभत्सं सर्वावयवेषु पश्यतां बीभत्सभावोत्पादकम् ॥

### आर्यिका-आदिमति :

जो स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के शरीर को देखकर कामादिक से विरक्त होते हैं, वे ब्रह्मचारी हैं। यह शरीर कैसा है? मल / शुक्र / शोणितरूप मल का कारण है। मलयोनि / अपवित्रता का कारण है। इस शरीर से मल, मूत्र, पसीना आदि झरते रहते हैं। यह दुर्गन्ध से सहित है। इसके सभी अङ्गों को देखकर ग्लानि ही उत्पन्न होती है।

+ आरम्भ त्याग प्रतिमा -

## सेवाकृषिवाणिज्य-प्रमुखादारम्भतो व्युपरमति प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भ-विनिवृत्तः ॥१४४॥

**अन्वयार्थ :** [यः] जो [प्राणातिपातहेतोः] जीव-हिंसा के कारण सेवा, [कृषि] खेती तथा [वाणिज्य] व्यापार आदि आरम्भ से [व्युपरमति] निवृत्त होता है, [असौ] वह [आरम्भ-विनिवृत्तः] आरम्भत्याग प्रतिमा का धारक है।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानीमारम्भविनिवृत्तिगुणंश्रावकस्यप्रतिपादयन्नाह --

योव्युपरमतिविशेषणउपरतः व्यापारेभ्यः आसमन्तात्जायतेअसावारम्भविनिवृत्तोभवति । कस्मात् ? आरम्भतः । कथम्भूतात् ? सेवाकृषिवाणिज्याः प्रमुखाआद्यायस्यतस्मात् । कथम्भूतात् ? प्राणातिपातहेतोः प्राणानामतिपातोवियोजनंतस्यहेतोः कारणभूतात् ।  
अनेनस्रपनदानपूजादिविधानाद्वारभादुपरतिर्निराकृतातस्यप्राणातिपातहेतुत्वाभावात्प्राणिपीडापरिहारेणैवतत्सम्भवात् ।  
वाणिज्याद्वारम्भादपितथासम्भवस्तर्हिविनिवृत्तिर्नस्यादित्यपिप्राणिपीडाहेतोरिवतदारम्भान्वितस्यश्रावकस्यारम्भविनिवृत्तगुणसम्पन्नतोप ॥

**आर्थिका-आदिमति :**

जो आरम्भादि से सब ओर से निवृत्त होता है, वह आरम्भनिवृत्त कहलाता है। आरम्भ में नौकरी खेती तथा व्यापार आदि प्रमुख हैं। आरम्भादि का त्याग क्यों किया जाता है ? इसके समाधान में 'प्राणातिपातहेतोः' यह हेतुवर्क विशेषण दिया है कि जो आरम्भ प्राणघात का कारण है, इसलिए इससे निवृत्त होना चाहिए। इस विशेषण के देने से यह सिद्ध हो जाता है कि आरम्भत्याग प्रतिमाधारी श्रावक अभिषेक, दान-पूजन आदि के लिए आरम्भ कर सकता है। उससे निवृत्त नहीं हो सकता, क्योंकि यह प्राणघात का कारण नहीं है, यह कार्य प्राणिहिंसा को बचाकर ही किया जाता है। यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि जिस व्यापारादि में हिंसा नहीं होती, उसे वह कर सकता है क्या ? इसके उत्तर में कहा है कि ऐसे आरम्भ से उसकी निवृत्ति न हो, यह हमें अनिष्ट नहीं है, क्योंकि जो आरम्भ प्राणिपीडा का हेतु है, उससे निवृत्त होने वाले श्रावक के यह आरम्भत्याग प्रतिमा होती है।

+ परिग्रह त्याग प्रतिमा -

## बाह्येषु दशसु वस्तुषु, ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः स्वस्थः सन्तोषपरः, परिचितपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥

**अन्वयार्थ :** [दशसु] दश [बाह्येषु] बाह्य [वस्तुषु] वस्तुओं में [ममत्वम्] ममताभाव को [उत्सृज्य] छोड़कर [निर्ममत्वरतः] निर्मोही होता हुआ [यः] जो [स्वस्थः] आत्मस्वरूप में स्थित [च] तथा [सन्तोषपरः] सन्तोष में तत्पर रहता है, [सः] वह [परिचितपरिग्रहात्] सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से [विरतः] विरत होता है।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

अधुनापरिग्रहनिवृत्तिगुणंश्रावकस्यप्ररूपयन्नाह-

परिसमन्तात्, चित्तस्थः परिग्रहोहिपरिचितपरिग्रहस्तस्माद्विरतः श्रावकोभवति।किंविशिष्टः सन् ? स्वस्थोमायादिरहितः । तथासन्तोषपरः परिग्रहाकाङ्क्षाव्यावृत्त्यासन्तुष्टः तथा।निर्ममत्वरतः । किंकृत्वा ? उत्सृज्यपरित्यज्य । कितत् ? ममत्वंमूच्छा । क ? बाह्येषुदशसुवस्तुषु । एतदेवदशधापरिगणनंबाह्यवस्तूनांदश्र्यते ।  
क्षेत्रंवास्तुधनंधान्यंद्विपदंचचतुष्पदम्  
शयनासनेचयानंकुप्यंभाण्डमितिदश ॥  
क्षेत्रंसस्याधिकरणंचडोहलिकादि । वास्तुगृहादि । धनंसुवर्णादि । धान्यंब्रीह्यादि । द्विपदंदासीदासादि । चतुष्पदंगवादि । शयनंखट्वादि । आसनंविष्टरादि । यानंडोलिकादि । कुप्यंक्षौमकापसिकौशेयादि । भाण्डंश्रीखण्डमंजिष्टाकांस्यताम्रादि ॥



## आर्यिका-आदिमति :

'परिसमन्तात् चित्तस्थः परिग्रहो हि परिचित्परिग्रहः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो परिग्रह निरन्तर चित्त में स्थित रहता है, ऐसा ममकाररूप परिग्रह परिचित्परिग्रह कहलाता है । ऐसे परिग्रह से विरत वही श्रावक हो सकता है, जो स्वस्थ—मायाचारादि से रहित हो तथा सन्तोष धारण में तत्पर हो, परिग्रह की आकाङ्क्षा से निवृत्त हो, निर्ममत्व हो अर्थात् जिसने दश प्रकार के बाह्य परिग्रह के ममत्व का त्याग कर दिया है ।

अब दस प्रकार का बाह्य परिग्रह बतलाते हैं --

क्षेत्र- धान्य की उत्पत्ति का स्थान, ऐसे डोहलिका आदि स्थानों को खेत कहते हैं । (जिस खेत में चारों ओर से बांध बाँधकर पानी रोक लेते हैं, ऐसे धान्य के छोटे-छोटे खेतों को डोहलिका कहते हैं ।) वास्तु—मकान आदि । धन—सोना-चाँदी आदि । धान्य—चावल आदि । द्विपद—दासी-दासादि । चतुष्पद—गाय आदि । शयन—पलंगादि और आसन—बिस्तर आदि । यान—पालकी आदि । कुप्य—रेशमी-सूती कोशादि के वस्त्र । भाण्ड- चन्दन, मजीठ, कांसा तथा तांबे आदि के बर्तन । यह दस प्रकार का परिग्रह है । इसका त्यागी परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी होता है ।

+ अनुमति त्याग प्रतिमा -

**अनुमतिरारम्भे वा, परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसु वा  
नास्ति खलु यस्य समधी-रनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥**

**अन्वयार्थ :** निश्चय से [आरम्भे] आरम्भ के कार्यों में अथवा [परिग्रहे] परिग्रह में [वा] अथवा [ऐहिकेषु] इस लोक सम्बन्धी [कर्मसु] कार्यों में [यस्य] जिसके [अनुमति] अनुमोदना [न] नहीं है, [सः] वह [समधीः] समान बुद्धि का धारक [अनुमतिविरतः] अनुमतित्याग प्रतिमाधारी [मन्तव्यः] माना जाना चाहिए ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

साम्प्रतमनुमतिविरतिगुणंश्रावकस्यप्ररूपयन्नाह -

सोऽनुमतिविरतोमन्तव्यः यस्यखलुस्फुटं नास्ति । काऽसौ ? अनुमतिरभ्युपगमः । क ? आरम्भेकृष्यादौ । वाशब्दः सर्वत्रपरस्परसमुच्चयार्थः । परिग्रहेवाधान्यदासीदासादौ । ऐहिकेषुकर्मसुवाविवाहादिषु । किंविशिष्टः समधीः रागादिरहितबुद्धिः ममत्वरहितबुद्धिर्वा ॥

**आर्यिका-आदिमति :**

जो खेती आदि आरम्भ और धन-धान्य-दासी-दास आदि परिग्रह तथा इस लोक सम्बन्धी विवाह आदि कार्यों में अनुमति नहीं देता है तथा इष्ट, अनिष्ट पदार्थों में समभाव रखता हुआ रागादि रहित होता है, उसे अनुमतित्याग प्रतिमा का धारक जानना चाहिए ।

+ उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा -

**गृहतो मुनिवनमित्वा, गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य  
भैक्ष्याशनस्तपस्य-त्रुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥**

**अन्वयार्थ :** जो [गृहतो] घर से [मुनिवनम्] मुनियों के वन को [इत्वा] जाकर [गुरूपकण्ठे] गुरु के पास [व्रतानिपरिगृह्य] व्रत ग्रहण कर [भैक्ष्याशनः] भिक्षा भोजन करता हुआ [तपस्यन्] तपश्चरण करता है, [चेलखण्डधरः] तथा एक वस्त्रखण्ड को धारण करता है, वह उत्कृष्ट श्रावक [कथ्यते] कहलाता है ।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानीमुद्दिष्टविरतिलक्षणगुणयुक्तत्वंश्रावकस्यदर्शयन्नाह-

उत्कृष्टउद्दिष्टविरतिलक्षणैकादशगुणस्थानयुक्तः श्रावकोभवति।कथम्भूतः ? चेलखण्डधरः कौपीनमात्रवस्त्रखण्डधारकः आर्यलिङ्गधारीत्यर्थः । तथाभैक्ष्याशनोभिक्षाणांसमूहोभैक्ष्यंतदश्रातीतिभैक्ष्याशनः । किं कुर्वन् ? तपस्यन्तपः कुर्वन् । किं कृत्वा ? परिगृह्यगृहीत्वा । कानि ? व्रतानि । क ? गुरूपकण्ठेगुरुसमीपे । किं कृत्वा ? इत्वागत्वा । किंतत् ? मुनिवनंमुन्याश्रमं । कस्मात् ? गृहतः ॥२६॥

## आर्यिका-आदिमति :

उद्दिष्ट्याग नामक ग्यारहवीं प्रतिमा का धारी श्रावक उत्कृष्ट कहलाता है। यह कौपीन / लंगोट, मात्र खण्डवस्त्र का धारक होता है। 'भिक्षाणां समहो भैक्ष्यं' इस प्रकार समूह अर्थ में अण् प्रत्यय होने से भैक्ष्य शब्द बना है। इस प्रतिमा का धारी भिक्षा से भोजन करता है। अर्थात् मुनियों की तरह गोचरी के लिए निकलता है। अथवा किसी पात्र में गृहस्थों के घरों से उदरपूर्ति के योग्य भोजन एकत्र करता है और अन्त में एक श्रावक के घर में जलादि लेकर भोजन करता है। इस प्रतिमा का धारक घर छोड़कर मुनियों के पास मुनि आश्रम में चला जाता है और व्रतों को धारण करता है।

+ श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है ? -

## पाप-मरातिर्धर्मो, बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् समयं यदि जानीते, श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

**अन्वयार्थ :** [पापम्] पाप ही [जीवस्य] जीव का [मरातिः] शत्रु है [च] और [धर्मः] धर्म ही जीव का [बन्धु] हितकारी है, [इति] इस प्रकार [निश्चिन्वन्] निश्चय करता हुआ वह श्रावक [समयम्] आगम / आत्मा को [जानीते] जानता है, [तर्हि] तो वह [ध्रुवं] निश्चय से [श्रेयोज्ञाता] श्रेष्ठज्ञाता अथवा कल्याण का ज्ञाता [भवति] होता है।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

तपः कुर्वन्नपियोह्यागमज्ञः सन्नेवंमन्यतेतदाश्रेयोज्ञाताभवतीत्याह --

यदिसमयम्आगमंजानीतेआगमज्ञोयदिभवतितदाध्रुवंनिश्चयेनश्रेयोज्ञाताउत्कृष्टज्ञातासभवति । किंकुर्वन् ? निश्चिन्वन् ।  
कथमित्याह - पापमित्यादि - पापमधर्मोऽरातिः  
शत्रुर्जीवस्यानेकापकारकत्वात्धर्मश्चबन्धुर्जीवस्यानेकोपकारकत्वादित्येवंनिश्चिन्वन् ॥

## आर्यिका-आदिमति :

यदि श्रावक आगम को जानने वाला है तो उसको यह निश्चय है कि पाप / अधर्म / मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र जीव का शत्रु है, क्योंकि यह अनेक प्रकार से अपकार करने वाला है और धर्म-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप परिणति अनेक उपकार का कारण होने से जीव की बन्धु है। तब वह श्रेष्ठ ज्ञाता होता है।

+ रत्नत्रय का फल -

## येन स्वयं वीतकलंकविद्या-दृष्टिक्रिया-रत्नकरण्डभावम् नीतस्तमायाति-पतीच्छयेव, सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु-विष्टपेषु ॥१४९॥

**अन्वयार्थ :** [येन] जिसने [स्वयं] अपने आत्मा को [वीतकलंक] निर्दोष [विद्या] ज्ञान, [दृष्टि] दर्शन और [क्रिया] चारित्ररूप [रत्नकरण्डभावम्] रत्नों के करण्डभाव-पिटारापने को [नीतः] प्राप्त कराया है, [तं] उसे [त्रिषुविष्टपेषु] तीनों लोकों में [पतीच्छयेव] पति की इच्छा से ही मानों [सर्वार्थसिद्धिः] धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों की सिद्धि [आयाति] प्राप्त होती है।

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

इदानींशास्त्रार्थानुष्ठातुः फलंदर्शयन्नाह --

येनभवेनस्वयम्आत्मास्वयंशब्दोऽत्रात्मवाचकः नीतः प्रापितः । कमित्याह- वीतेत्यादि, विशेषेणइतोगतो नष्टः कलङ्कोदोषोयासांताश्चताविद्यादृष्टिक्रियाश्चज्ञानदर्शनचारित्राणितासांकरण्डभावतंभव्यम्आयातिआगच्छति । कासौ ? सर्वार्थसिद्धिः धर्मार्थकाममोक्षलक्षणार्थानांसिद्धिर्निष्पत्तिः कर्त्री । कयेवायाति ? पतीच्छयेवस्वयम्बरविधानेच्छयेव । क ? त्रिषुविष्टपेषुत्रिभुनवेषु ॥

## आर्यिका-आदिमति :

यहाँ पर स्वयं शब्द आत्मा का वाचक है। जिसके कलंकदोष विशेषरूप से नष्ट हो गये हैं, उसे वीतकलंक कहते हैं। यह वीतकलङ्क विशेषण विद्या / ज्ञान, दृष्टि / दर्शन और क्रिया / चारित्र इन तीनों के साथ लगता है। जिस भव्य ने अपनी आत्मा

को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्यरूपी रत्नों का करण्ड-पिटारा बनाया है अर्थात् जिसकी आत्मा में ये प्रकट हो गये हैं, उसे सर्व **अर्थ** — धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप समस्त अर्थों की सिद्धि उस प्रकार हो जाती है, जिस प्रकार पति की इच्छा रखने वाली कन्या स्वयंवर विधान में अपनी इच्छा से पति को प्राप्त करती है ।

+ इष्ट प्रार्थना -

**सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,  
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु  
कुलमिव गुणभूषा, कन्यका सम्पुनीतात्-  
जिनपतिपदपद्म-प्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०॥**

**अन्वयार्थ :** [जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी] जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों का अवलोकन करने वाली ऐसी यह [दृष्टिलक्ष्मीः] सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी [सुखभूमिः] सुख की भूमि ऐसी कामिनी के सदृश [मां] मुझे [सुखयतु] सुखी करे जैसे [कामिनी] स्त्री [कामिनमिव] कामी पुरुष को, [भुनक्तु] रक्षित करे, जिस तरह की [शुद्धशीला जननी] शुद्ध शीलवती माता जैसे [सुतमिव] अपने पुत्र का [सम्पुनीतात्] पालन करती है तथा [गुणभूषाकन्यका] गुणों से भूषित कन्या जैसे अपने [कुलम्] कुल को पवित्र करती है वैसे ही वह मुझे पवित्र करे ॥

**प्रभाचन्द्राचार्य :**

रत्नकरण्डकंकुर्वतश्चममयासौसम्यक्त्वसम्पत्तिर्वृद्धिगतासाएतदेवकुर्यादित्याह --

मांसुखयतुसुखिनंकरोतु । कासौ ? दृष्टिलक्ष्मीः सम्यग्दर्शनसम्पत्ति । किंविशिष्टेत्याह -- जिनेत्यादिजिनानांदेशतः कर्मोन्मूलकानांगणधरदेवादीनांपतयस्तीर्थङ्करास्तेषांपदानिसुबन्ततिङन्तानिपदावातान्येवपद्मानितानिप्रेक्षतेश्रद्धातीत्येवंशीला । अयमर्थ :- लक्ष्मीः पद्मावलोकनशीलाभवति, दृष्टिलक्ष्मीस्तुजिनोक्तपदपदार्थप्रेक्षणशीलेति । कथम्भूतासा ? सुखभूमिः । सुखोत्पत्तिस्थानम् । केवकम् ? कामिनंकामिनीवयथाकामिनीकामभूमिः कामिनंसुखयतितथामांदृष्टिलक्ष्मीः सुखयतु । तथासामांभुनक्तुरक्षतु । केव ? सुतमिवजननी । किंविशिष्टा ? शुद्धशीलाजननीहिशुद्धशीलासुतरक्षतिनाशुद्धशीलादुश्चारिणी । दृष्टिलक्ष्मीस्तुगुणव्रतशिक्षाव्रतलक्षणशुद्ध-सप्तशीलसमन्वितामांभुनक्तु । तथासामांसम्पुनीतात्सकलदोषकलङ्कनिराकृत्यपवित्रयतु । किमिव ? कुलमिवगुणभूषाकन्यका । अयमर्थः कुलंयथागुणभूषागुणाऽलङ्कारोपेताकन्यापवित्रयतिशङ्काध्यतानयतितथादृष्टिलक्ष्मीरपिगुणभूषाअष्टमूलगुणैरलङ्कृतामांसम्यक्पुनीताति ॥२९॥

येनाज्ञानतमोविनाश्यनिखिलंभव्यात्मचेतोगतम्,  
सम्यग्ज्ञानमहांशुभिः प्रकटितः सागारमार्गोऽखिलः  
सश्रीरत्नकरण्डकामलरविः संसृत्सरिच्छोषको,  
जीयादेषसमन्तभद्रमुनियः श्रीमान्प्रभेन्दुर्जिनः ॥१॥

इतिप्रभाचन्द्रविरचितायांसमन्तभद्रस्वामीविरचितोपासकाध्ययनटीकायांपञ्चमः परिच्छेदः।

**आर्यिका-आदिमति :**

'जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी' इस शब्द में जो पद शब्द है, उसके दो अर्थ हैं -- एक सुबन्त, तिङन्तरूप पद शब्द समूह और दूसरा चरणकमल । वह अर्थ इस प्रकार है- तीर्थङ्करभगवन्त के शब्द रूप कमलों का श्रद्धान करने वाली, अथवा तीर्थङ्कर भगवान् के चरणकमलों का अवलोकन करने वाली अर्थात् उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा रखने वाली सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी मुझे सुखी करे । जिस प्रकार विषयसुख की भूमि कामिनी कामी पुरुष को सुखी करती है, उसी प्रकार आत्मोत्थसुख की भूमि सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी मुझे सुखी करे । जिस प्रकार शुद्धशीला-निर्दोष सदाचारिणी माता अपने निर्दोष पुत्र की रक्षा करती है, किन्तु दुराचारिणी माता नहीं । उसी प्रकार शुद्धशीला / निरतिचार गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप सप्तशील से युक्त सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी मेरी रक्षा करे । तथा जिस प्रकार गुणभूषा—शील, अलंकारों आदि से विभूषित कन्या अपने कुल को पवित्र एवं प्रशंसनीय बनाती है, उसी प्रकार गुणभूषा-अष्टांग आदि से युक्त सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी मुझे अच्छी तरह पवित्र करे, मुझे कर्मकलंक से रहित करे ।

येनाज्ञानतमो इति- जिन्होंने भव्य जीवों के चित्त में स्थित समस्त अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट कर दिया है तथा सम्यग्ज्ञानरूपी किरणों के द्वारा समस्त गृहस्थ धर्मरूप मार्ग को प्रकट किया है, जो श्री रत्नत्रयरूप पिटारे को प्रकाशित करने के लिए सूर्य हैं, पक्ष में भाव से कर्ता होने के कारण रत्नकरण्ड नामक ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिए सूर्य हैं । संसाररूपी नदी को सुखाने वाले हैं । समन्तभद्र-कल्याणों से परिपूर्ण मुनियों की रक्षा करने वाले हैं । पक्ष में इस ग्रन्थ के

कत्रा समन्तभद्रस्वामी के रक्षक हैं । अनन्तचतुष्टयरूप श्री से सहित हैं तथा प्रभा-कान्ति से जो चन्द्रमा हैं, ऐसे जिनेन्द्र देव जयवन्त रहें ।

इस प्रकार प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित, समन्तभद्रस्वामी द्वारा विरचित उपासकाध्ययन की टीका में पञ्चम परिच्छेद सल्लेखना प्रतिमाधिकार पूर्ण हुआ ॥ ५॥

---